नलेकव्रतवैदर्भ्याश्चारित्रैः को न रज्यते

अनर्घनलचरित्र

श्रीः

पंचनदीयपंडितसुदर्शनाचार्यशास्त्रिप्रणीत

अनर्घनलचरित्र

महानाटक

इसमें भारतोक्तनलदमयंतीकी समग्र कथा लिखीहै।

" कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् " ॥

इसको

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासने

अपने " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापेखानेमें

छापकर प्रसिद्ध किया।

शके १८३०, संवत् १९६५.

कल्याण-मुंबई.

भूमिका

श्रीः

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अये विद्यावासितांतःकरण उदाराशय महाशय पाठकप्रवर ।

मैंने भाषामें अल्वारचरितामृत अष्टादशरहस्यभाषादि और संस्कृतमें .शिष्टाद्वैताधिकरणमाला अद्वैतचंद्रिकादि कईएक ग्रंथ परमार्थवेदांत- ाषयके बनाए और छपवाए भी और बहुत लोगोंको भेजे भी तथापि न समयमें शृंगार (रति) रसिकता सत्य पूछो तो शृंगाराभास (रत्या- ास) रसिकता इतनी चारोंओर फैलगईहै कि मेरे उक्तग्रंथोंसे रसिक- ोगोंके हृदय संतुष्ट न हुए क्योंकि उक्त ग्रंथ शृंगारसे संबंध नहीं रखते। ेदका स्थान है कि रत्याभासने कुछ पामरजनोंकेही हृदयपर आसन हीं जमाया किं तु कलिके साहाय्यसे आचार्यलोगोंके भी हृदयपर दृढ- ासे आसन जमाया है। इन रसिकजनोंको संतुष्ट करनेकेलिए मैंने एक त्तम पुण्यश्लोक नायिकानायकके शृंगारका यह महानाटक लिखाहै ाशा है कि रसिकजन इससे अवश्य संतुष्ट होंगे। यद्यपि मैं कुछ त्तम कवि नहीं हूं इस हेतु मेरी कवितासे तो रसिकजनोंका संतुष्ट ोना असंभवही है किं तु पुण्यश्लोकमहाराजनलकी इस कथामात्रसे माशा है कि रसिकलोग अवश्य संतुष्ट होंगे।

हमारे संस्कृतके नाट्यशास्त्रानुसार नाटक लिखना बडा कठिन काम लिखना छोड समझना भी कठिन काम है। और प्राचीन कवि कृतमें ऐसे उत्तमोत्तमनाटकोंको लिखगएहैं कि उनके संमुख आज- हके निर्मितनाटकोंका जचना सर्वथा असंभव है। इसलिए मैं पने लेखका कुछ अभिमान नहीं करता किं तु नलमहाराजकी कथा नेकेहेतु आशा है कि लोग आदर करें। प्रतीत होताहै कि भाषाके चीन कविओंने नाटककी ओर ध्यान नहीं दिआ उसमें कोई लोगोंने ु कहा कि भाषामें नांदी नहीं बन सकती ऐसे कहनेवाले प्राचीन ाविओंने कुछ ठीक नहीं कहा क्यों कि भाषाछंदोंमेंभी नांदी बन कती है। भाषामें नांदी नहीं बनसकती कहनेवालेने यही समझा है

---

१ वास्तवमें इस नाटकको बनाए मुझे १० वर्ष बीतगए किन्तु आलस्यवश छप- ेका उद्योग नहीं होसका। इस समय इसे औरभी ठीक करदिआहै।

कि नांदीमें कोई बडा छंद होना चाहिए और उसमें १२ किंवा १८ पद होने चाहिए भाषामें तो बडे छंदके पद बहुत बढ जाएंगे इस हेतु उनने जो चाहा सो लिख दिआ इसी हेतुसे भाषामें प्राचीन नाटक प्राप्त नहीं होता। प्रतीत होता है कि भाषामें सभसे पहिले बाबूहरिचंदजीने ही नाटक लिखना आरंभ किआहै। और उक्तबाबूजीने एक दो नाटक (रूपक) अछे भी लिखेहैं।

जैसे ही भाषाके प्राचीन कविओंने नाटकका लिखना अतिकठिन समझाथा वैसा ही आजकल्हके भाषावालोंने नाटकका लिखना सभसे सहज समझलिआहै। आजकल्ह भाषावाले यही समझतेहैं कि कई एक अंकोंमे पात्रोंका नाम लिखकर जो उनका संभाषण लिखनाहै यही नाटक कहाताहै। और कुछ मनमानी शैलीभी चलादी है एक अंकमें अनेक गर्भांक भरदेतेहैं। आजकल्हके भाषावालोंने यह नहीं जाना कि गर्भांक क्या पदार्थ है केवल इतनाही समझलिआहै कि अंकके भीतरी जो अवांतर अवयव हैं उन्हींका नाम गर्भांक है वस्तुगत्या नाटकके भीतर किसी एक अंकमें जो नाटक दिखायाजाए तो उसका नाम गर्भांक है कहा भी है " अङ्कोऽपरः स गर्भाङ्कः सबीजः फलवानपि " इति। यद्यपि श्रव्यकाव्यका भी लिखना बडा कठिन है क्यों कि श्रव्यकाव्यमें भी संध्यादिकाव्यपदार्थोंकी अपेक्षा है तथापि नाटकका लिखना बहुत ही कठिन है।

मैने यथाशक्ति नलदमयंतीकी कथाके दो नाटक लिखेहैं एक संस्कृतमें और एक भाषामें, संस्कृतका नाटक अभी छपकर तयार नहीं हुआ आशा है कुछ कालतक वह भी आपके सम्मुख उपस्थित होगा। द्वितीय यह भाषाका नाटक है जिसका नाम अनर्घनलचरित्र है नलमहाराजका चरित्र अनर्घ (बेकीमत) होनेसे इसका नाम अनर्घनलचरित्र किआहै। इसमें महाराजनल और दमयंतीकी कथा है। दमयंती दक्षिणमें होनेवाले विदर्भदेशके राजा भीमकी कन्या थी। अतिशयित रूप और सद्गुणोंसे संपन्न थी। ऐसेही महाराजनल भी अतिशयित रूप और गुणोंसे संपन्न थे उसपर भी उस समय अश्वविद्याको महाराज नल जैसा कोई नहीं जानताथा। द्यूतमें राज्यको हारकर जब गुप्तरीतिसे नल अयोध्यामें ऋतुपर्णराजाके नौकर रहे तब दमयंतीने नलके खोज-

नेको जो लोग भेजेथे उनमेंसे एकने आकर कहा कि जैसे चिह्न आपने बताएथे वैसे चिह्नोंवाला श्यामरंगका पुरुष अयोध्यामें है वह आपके श्लोक सुनकर रोपडा और कुछ श्लोक उसने उत्तरमें पढे, यह बात दूत-मुखसे सुनकर अपनी मातासे परामर्श करके दमयंतीने ऋतुपर्णके पास अयोध्यामें आदमी भेजा उसने ऋतुपर्णसे कहा कि कल्ह दमयंतीका दुबारा स्वयंवर होगा यदि आपको स्वयंवरमें पहुंचनाहो तो शीघ्र कुंडिन-पुर पहुंचो यहांपर यह भी जान लेना कि कुंडिनपुरमें दमयंतीके स्वयं-वरकी चर्चा भी न थी तथापि दमयंतीने जो मिथ्या ही स्वयंवरकी बात ऋतुपर्णको कहा भेजी उसका यही अभिप्राय था कि यदि नल ऋतुपर्णके पास हैं तबी ऋतुपर्ण इतना शीघ्र कुंडिनपुरमें आसकतेहैं। उस समय ४ प्रहरके भीतर नलने ऋतुपर्णके रथको अयोध्यासे कुंडिनपुरमें पहुंचाया ऐसे नलमहाराज अश्वविद्याके विद्वान् थे और अयोध्यासे कुंडिनपुर सौ योजन (४०० कोस) से भी अधिक था। ४०० कोस ४ प्रहरके भीतर पहुंचना सहजकी बात नहीं उसपर भी मार्ग टूटा फूटा ही होगा।

महाराजनल[1] निषधके राजा थे अब यह विचारना चाहिए कि निषध किस देशका नाम है। यद्यपि आजकल्हके युवजन हमारी शास्त्रीय भूगोलकी प्रथाको नहीं मानते क्यों कि जैसे आत्माके इच्छा ज्ञानादि गुण उत्तरोत्तर गुणसे बाधित होतेजातेहैं ऐसेही भारतीययुवजनोंके सिद्धांत भी उतरोत्तर सिद्धांतोंसे बाधित होतेजातेहैं इस हेतु वे प्राचीन शास्त्रीयरीतिको नहीं मानते किंतु एक छोटीसीगेंदके तुल्य पृथ्वीको मानते हैं और ऐसा माननेमें कुछ तर्काभास भी करते कहतेहैं उन्ही तर्काभासोंसे पृथ्वीको गेंदसा मानकर अपने आपमें मस्त भी रहतेहैं। किंतु शास्त्रीयरीतिसे पृथ्वी चक्कीके पुट जैसी है जिसमें सात समुद्र और सातही द्वीप भी हैं। उस पृथ्वीके बीचमें सुमेरु पर्वत है उसके चारों ओर इलावृत वर्ष है इलावृतवर्षकी आठों दिशामें माल्यवान् प्रभृति ८ पर्वत हैं उन आठों पर्वतोंसे समुद्रकी ओरको भद्राश्ववर्ष प्रभृति ८ वर्ष है उन्हींमेंसे इलावृतवर्षके नैर्ऋतकोणमें हिमालयपर्वत और भारतवर्ष है। हिमालयसे

---

१ मैं यह भी संभावना करताहूं कि नलका नाम नलसेन होगा क्यों कि इनके पिता तथा पुत्रका नाम सेन शब्दांत वीरसेन इंद्रसेन था किंतु ये बडे गुणी होनेके कारण केवल नल शब्दसे पुकारेगये।

पूर्व और इलावृतवर्षसे दक्षिणमें हेमकूटपर्वत है हेमकूटपर्वतसे भी पूर्वमें इलावृतवर्षके अग्निकोणमें निषधपर्वत है मैने एवं रूपसे प्राचीनरीतिका भूगोलका चित्र (नकशा) बनाया भी है। इस भूगोलकी रीतिसे प्रतीत होताहै कि कदाचित् नलमहाराज पूर्वोक्त निषधपर्वतके ही राजा हों और भारतवर्षमें निषध नामसे कोई भी देश प्रसिद्ध भी नहीं। किंतु नलमहाराज राज्य हारकर जितने शीघ्र अयोध्यामें पहुंचगए और दमयंती चंदेलीमें पहुंचगई इससे पायाजाताहै कि निषध कोई भारतवर्षका ही प्रदेश है अन्यथा पूर्वोक्त निषधपर्वतसे हेमकूटपर्वतको निकलकर भारतमें इतने शीघ्र पायनसे आपहुंचना असंभवसा प्रतीत होताहै। भारतवर्षके किस प्रदेशका नाम निषध है इसका बहुत लोगोंने यत्न किआ कुछ निश्चय नहीं हुआ परंतु कथासरित्सागरके १३ लंबक १ तरंग ८० श्लोकमें लिखाहै कि " अस्तीह निषधो नाम देशो हिमवदाश्रयः " इससे यह तो निश्चय हुआ कि निषधदेश भारतवर्षमें है और वह हिमालयके ऊपर है यथा शिमला चंबा प्रभृति किंवा हिमालयके साथ सटाहुआ पृथ्वीपर है किंतु विशेषरूपेण निश्चय नहीं होता कि इस समय उस निषधका क्या नाम है कौन मार्ग है। शोकका स्थान है कि नलमहाराजके समयके अयोध्या मथुरा प्रभृति नगरोंका भी निश्चय होताहै और निषधदेशका नाम भी नष्ट होगया। और यह भारी खेदका स्थान है कि नलदमयंतीके ऐसे उत्तमचरित्रका किसी प्राचीन कविने नाटक नहीं बनाया किंवा बनाया हो तो वह उपलब्ध नहीं होता। इस समयपर मेरे गुरु महामहोपाध्याय सी आई ई श्रीगंगाधरशास्त्रीजी महाराज यदि इस कथाका नाटक बनाते तो अवश्य वह इस कथाके योग्य बनता।

उक्त नलमहाराजके समीप बहुत लोगोंने दमयंतीके रूपकी प्रशंसा कीथी और दमयंतीने भी नलके गुण सुने इस श्रवणमात्रसे ही इन दोनोंका परस्पर प्रेम होगयाथा, दमयंतीके विरहसे नल बागमें रहतेथे

---

१ यद्यपि पंजाबमें होनेवाले मंडीराज्यके राजाओंका अभीतक नाम सेनशब्दांत ही है तथापि इस कहनेका साहस नहीं होता कि नलमहाराज मंडीके राजा थे। और मंडी भी यद्यपि पहाडी राज्य है तथापि निषध नामके साथ मिलाप न होनेसे मंडीको निषध देश कहनेका भी साहस नहीं होता। २ यह नलदमयंतीके परस्पर प्रेमकी कथा इस नाटकके प्रथम और द्वितीय अंकमें है तथा ३।४ में भी है।

उस बागमें एकदिन हंस आए उनमेंसे नलने एकहंसको पकडलिआ हंसने आकाशवाणीसे कहा कि मुझे पकडो मत मैं तुम्हारेलिए दमयंतीको जाकर कहूंगा तब नलने हंसको छोडदिआ हंस भी दमयंतीके बागमें पहुंचा दमयंती जब उसे पकडने लगी तो हंसने[1] नलकी प्रशंसा की जिससे दमयंतीने निश्चय करलिआ कि नलके विना औरके साथ विवाह नहीं कराऊंगी। कुछ दिनके बाद भीमने दमयंतीका स्वयंवर किआ सभ राजालोग आए नल भी आरहेथे कि नारदजीने इंद्रके पास जाकर दमयंतीके अतुलरूपकी प्रशंसा की और स्वयंवरकी बात कही यह सुनते ही इंद्र वरुण अग्नि और यम ये चारों देवता कुंडिनपुरको चलदिए मार्गमें नल मिले[2] देवताओंने नलको कहा कि हमारे दूत बनकर आप दमयंतीके पास जाओ, चारों देवताओंने अपने अपने वरणकेलिए दमयंतीको प्रेरणा करनेको नलको दूत बनाया। नल भी परमधर्मात्मा थे कुंडिनपुरमें जाकर देवप्रभावसे अदृश्य होकर दमयंतीके पास गए और देवताओंकेलिए हृदयसे बहुत कुछ दमयंतीको कहा[3] किंतु दमयंतीने एक न मानी तब नलने दमयंतीको कहा कि यदि तुम चारोंमेंसे किसी एक देवको न वरोगी तो यह दोष मुझपर लगेगा देवता इसमें मेरा दोष समझेंगे तब दमयंतीने कहा कि आप और देवतालोग स्वयंवरमें आएं मैं देवताओंके सम्मुख आपको वरूंगी तब आपको दोष नहीं लगेगा। तदनंतर यह सभ वृत्तांत लौटकर नलने देवताओंसे कहा। [4]स्वयंवर हुआ स्वयंवरमें उक्त चारों देवता भी नलका रूप धारण करके बैठगए एवं ५ नलोंको देख दमयंती घबरागई और बहुत कुछ देवताओंसे विनय किआ तब चारों देवताओंने अपना रूप धारण किआ तब दमयंतीने नलके कंठमें स्वयंवरमाला पहिरादी। देवता भी दमयंतीके पातिव्रत्यसे बहुत प्रसन्न हुए नलसे भी बडे प्रसन्न हुए नलको चारों देवताओंने दो दो वर दिए (पंचमांकमें देखो) नल दमयंतीका विवाह होगया स्वयंवरके अनंतर देवता स्वर्गको जारहेथे मार्गमें कलि मिला देवताओंने कलिसे पूछा कहां जातेहो ? कलिने कहा दमयंतीके स्वयंवरमें, देवताओंने कहा स्वयंवर होगया दमयंतीने नलको वरलिआ नलवरणकी बात

१ यह हंससंदेशकी कथा प्रथम विष्कंभकमें जताई है। २ यह कथा चतुर्थ अंकमें है। ३ यह कथा पंचमांकमें है। ४ यह स्वयंवरकी कथा पंचमांकमें गर्भांकके द्वारा दिखाईहै।

सुन कलिको निष्कारण ही बडा क्रोध[1] हुआ देवताओंके समझानेसे तथा नलकी प्रशंसा करनेसे नलवरणको युक्त बतानेसे भी कलि माना नहीं किंतु कलिने नलको नष्ट भ्रष्ट करनेकी प्रतिज्ञा ठान ही ली ।

तदनंतर दमयंती नलके घर आई कुछ काल पीछे दमयंतीके एक पुत्र और पुत्री हुई । नलको भ्रष्ट करनेकेलिए कलि भी निषधमें रहनेलगा किंतु नलमें प्रवेश करनेको कोई काल न मिला, १२ वर्षके अनंतर एक दिन नलने मूत्र करके पैर नहीं धोए वही अशुचिसमय कलिको स्वमनोरथसिद्धिकेलिए मिला उसी समय कलि नलके शरीरमें घुसगया नलकी मति भ्रष्ट होगई । कलिने नलके भ्राता पुष्करको नलसे द्यूत करनेकी प्रेरणा की कलिकी बहुत प्रेरणासे पुष्करने राज्यलोभमें फसकर कलिकी बात मानली कलि वृषभ बनगया पुष्कर उस वृषभको साथ लेकर नलके पासगया द्यूत करनेको बडा आग्रह किया उस आग्रहा-क्षेपसे नल तंग होगए तब नल और पुष्करका द्यूत[2] चला पुष्करने अपनी ओरसे उसी वृषभको दावपर लगाया उस वृषभको देखनेसे नलकी मति भ्रष्ट होतीजातीथी इसीसे कई मासतक द्यूत होतारहा नल बराबर हारतेथे किंतु द्यूतसे हटे नहीं । दमयंती अमात्य तथा प्रजाने नलको द्यूतसे रोका नलने एक न मानी तब भावी अनिष्टको सोचकर दमयंतीने पुत्र और पुत्रीको रथमें बिठाकर अपनी माताके निकट भेंज[3]दिआ ।

तदनंतर अल्प ही कालमें नल समग्रराज्यको हारगए तब पुष्करने कहा कि अब आपके पास दमयंती शेष बचीहै उसका भी दाव लगाना हो लगाओ. इस वचनसे नलको बहुत दुःख हुआ परंतु धीरताके कारण कुछ बोले नहीं समग्रवस्त्रभूषणोंको भी उतारके पुष्करके आगे पटक एक वस्त्रसे राज्यसे निकलगए दमयंती भी साथ ही एक वस्त्रसे निकल-गई दोनो नगरके बाहिर ३ दिन रहे किंतु पुष्करने डिंडिमा करादी कि यदि कोई नलका सत्कार करेगा तो उसका वध किआजाएगा इस प्राणदंडभयसे किसीने भी नलका सत्कार न किआ तब नल वहांसे वनको निकलगए कहींसे भी भोज्यपदार्थ मिला नहीं, कई दिनसे उपवास था इस कालमें नलने वनमें पक्षी देखे उनको पकडनेके लोभसे

---

१ यह कलिके क्रोधकी कथा सप्तमांकमें विष्कंभकमें दिखाईहै । २ यह द्यूतकथा षष्ठ अंकमें है । ३ यह कथा भी षष्ठ अंकमें है । ४ यह सभ कथा सप्तमांकमें है ।

उनपर अपना वस्त्र डाला वे पक्षी वस्त्रको भी लेकर उडगए और कहा कि हम वही पासे हैं जिनसे तुमने चौपड खेलाथा तेरा वस्त्र हरण करनेको पक्षी बनेहैं। तदनंतर नलने दमयंतीको कुंडिनपुर जानेकेलिए बहुत कहा किंतु दमयंतीने एक न मानी किंतु यह कहा कि आप भी कुंडिनपुरको चलो वहां कुछ दिन सुखसे रहना फिर देखी जायगी इस बातको नलने भी नहीं माना क्योंकि ऐसी दशामें श्वशुरगृह जाना नलने उचित नहीं समझा। आगे जाकर एक स्थानमें श्रमके हेतु दोनों सोगए दमयंती तो गहरी सोगई नल झट जागगए विपत्तिको बहुत सोचने लगे और तो कुछ न सूझा यही सूझा कि भीमसुताको सोई पडीको छोड जानेसे यह उठकर रोपीटकर मातृगृहका मार्ग लेगी और वहां सुखसे रहेगी मेरे साथ यह दुःख पाएगी सो सोईपडी दमयंतीका आधा वस्त्र फाडकर उसे ओढकर नल दमयंतीको सोईपडीको छोडकर चलदिए। आगे कुछ दूर जाकर देखा वनको अग्नि लगीहै उसमेंसे शब्द आताथा–' हे पुण्यश्लोक नल दौडकर मुझे बचा ' यह सुन ' डरो मत आताहूं ' यह कह नल आकाशमार्गसे अग्निके बीच जा पहुंचे वहां एक नागको देखा नागने कहा मैं नारदशापके कारण चल नहीं सकता मेरा नाम कर्कोटक है मैं छोटासा होजाताहूं तू मुझे अग्निसे बाहिर लेचल तब मेरा शाप भी मुक्त होजाएगा। यह सुन नल नागको आकाशमार्गसे अग्निरहित देशमें लाए। नागने कहा मुझे उठाए हां कुछ पैर गिनते हुए आगे चलो। नल १० पैर आगे चले तो नागने नलको डसा नल नागदंशसे काले पडगए बडे दुःखी हुए नाग भी स्वरूप धारण करके बोला कि उस रूपसे तुमको लोग पहचानलेते इससे मैंने दंशसे आपका रूप हराहै, जबी तुमको अपने रूपकी इच्छा हो तब मेरा स्मरण करना और यह वस्त्र मैं आपको देताहूं इसे जब ओढोगे तो आपका वही रूप होजायगा, और आप फिर अपनी संपत्तिको प्राप्त होगे। अब अयोध्याके राजाके पास बाहुक अपना नाम कहकर नौकर रहो कुछ कालमें उस राजासे आपको अक्षविद्या (संख्याशास्त्र) प्राप्त होगी और वह राजा आपका मित्र होजाएगा। तदनंतर नागराज अदृश्य होगया। नल भी अयोध्याको चलेगए वहां ऋतुपर्णराजासे बातचीत हुई

१ यह कथा सप्तमांकमें विष्कंभकमें जताईहै। २ यह कथा सप्तमांकमें है।

ऋतुपर्णने नलको अपनी अश्वशालाका प्रधानपुरुष (अफसर) बनादिआ। नलके नीचे वार्ष्णेय और जीवल ये दो अश्वशालाके अध्यक्ष थे। वार्ष्णेय प्रथम नलका ही सूत था नलकी संतानको कुंडिनपुर पहुंचाकर नलका राज्य नष्ट होजानेसे अयोध्यामें ऋतुपर्णका नौकर होगयाथा।

नलमहाराज पाकशास्त्रमें भी अद्वितीय निपुण थे अभीतक नलपाकका नाम चलाआताहै।

पाठक महाशय! नलके अतिशयित साहसका यह कृत्य है नल बडे कष्टसे दमयंतीको छोडकर गए महाभारतमें इस कथाको पढनेसे वज्रसा हृदय भी पिघल जाताहै।

तदनंतर दमयंती जागी तो नलको न देखकर बहुत घबराई और बहुत रोई नलको बहुत पुकारा और ढूंढा किंतु नलका पता न लगा नितांत तपस्विनी निराश होकर बोली–

यस्याभिशापाद्दुःखार्तो दुःखं विन्दति नैषधः।
तस्य भूतस्य नो दुःखाद् दुःखमभ्यधिकं भवेत् ॥ १ ॥
अपापचेतसं पापो य एवं कृतवान्नलम्।
तस्माद्दुःखतरं प्राप्य जीवत्वऽसुखजीविकाम् ॥ २ ॥ इति।

अर्थात् जिसने महात्मा नलको यह दुःख दिआहै वह नलसे भी अधिक दुःखको प्राप्त हो। तदनंतर नलकी खोजमें आगे बढी तो एक अजगरने दमयंतीको मुँहमें डाललिआ तब फिर आर्तस्वरसे स्वरक्षणार्थ नलको पुकारा इतनेमें एक भील भागकर आया उसने अजगरके मुखको शस्त्रसे चीरकर दमयंतीका प्राण बचाया और दमयंतीके स्वस्थ होनेपर नाम कुलादि पूछे दमयंतीने भी सभ वृत्तांत सुनाया दमयंतीकी रूपछटासे भील कामार्त होकर दमयंतीपर बलात्कार करनाचाहताथा कि दमयंतीने शाप दिआ उसी समय वह भील गतप्राण होकर गिरगया। दमयंती नलकी खोजमें आगे बढी, खोजती खोजती एक वनमें ऋषिओंके आश्रममें जापहुंची ऋषिओंको प्रणाम किआ ऋषिओंने भी इसे सत्कारपूर्वक बिठाया। दमयंतीने पूर्वावस्थाके स्वभावसे ऋषिओंका

१।२ यह कथा भी कुछ सप्तमांकमें दिखाईहै तथा ८ में। ३ यह कथा अष्टमांकके विष्कंभकमें जताईहै। ४ यह कथा अष्टमांकमें दिखाईहै।

सभतरह कुशल पूछा। ऋषिओंने भी इसके नामकुलादि पूछे दमयंतीने भी सभ वृत्तांत कह सुनाया और कहा कि यदि कुछ दिनमें भी मुझे नल नहीं मिलेंगे तो इस शरीरको त्याग दूंगी इत्यादि आर्तवचन सुनकर ऋषि बोले तुम अवश्य नलको देखोगी तुम्हारा अभ्युदय होनेवाला है घबराओ मत इतने कालमें वह आश्रम और ऋषि सभ अंतर्हित होगए और दमयंती बडे आश्चर्यको प्राप्त होकर इस विस्मयजनक वृत्तांतको सोचती और रोती हुई आगे बढकर एक महाशून्य वनमें जापहुंची। उससे आगे बढी तो एक सेठका भारी डेरा दृष्टि पडा डेरेके कुछ लोगोंने इसके नामकुलादि पूछे इसने सभ सुनाकर नलका पता पूछा अधिपतिने कहा हमने नल नामका कोई पुरुष नहीं देखा तब दमयंतीने पूछा कि यह डेरा कहांको जाएगा? अधिपतिने कहा यह डेरा चंदेलीको जायगा यह सुन दमयंती उसी डेरेके पीछे पीछे चलपडी। आगे जाकर एक स्थानपर तालावके किनारे डेरा ठहरा जब सभ लोग सोगए तब अर्धरात्रमें उस तालावके समीप नदीपर जलपानार्थ वनके हस्ती आए वे डेरेके हस्तिओंपर मारनेको टूटपडे नितांत उन वनहस्तिओंने समग्र डेरेको नष्ट भ्रष्ट करदिआ कुछ लोग पिसगए कुछ भागगए। उपद्रव शांत होनेके अनंतर हतशेष लोग इकट्ठे होकर इस उपद्रवका कारण सोचने लगे किसीने कुछ कहा किसीने कुछ कहा, कुछ लोग दमयंतीको उद्देश्य करके बोले कि जो वह राक्षसी इस डेरेमें मिलगईहै उसने इस उपद्रवको किआहै वह कहीं मिलजाए तो उसे पीटे यह वचन भयसे कहीं छिपी दमयंतीने सुना सुनते ही छिपी हुई भागकर कहीं वनमें जा छिपी। तदनंतर डेरा जब चला तो उसके पीछे पीछे चलपडी कुछ हतशेष विद्वान ब्राह्मणोंने दमयंतीकी रक्षा की अन्यथा और लोग दमयंतीको अवश्य पीटते।

डेरा चलते चलते सायंकालके समय चंदेलीमें पहुंचा दमयंती भी नगरमें घुसी इसकी विक्षिप्तावस्थाको देखकर नगरके बालक इसके पीछे लगगए यह और भी घबरागई इतनेमें राजमहलके नीचे पहुंची महलपर राजमाताने इसकी दुःखावस्थाको देख इसे बुलवाया और इसके नाम कुलादि पूछे दमयंतीने राजकुलमें अपना सत्यवृत्तांत कहना उचित न

१२ यह कथा अधिक दर्शनीय न होनेसे न कहीं जताईहै न दिखाईहै।

समझकर कहा कि मैं शिल्पिनी (दस्तकार) हूं जहां उचित होताहै वहां नौकरी करतीहूं मेरा भर्ता अतिगुणी तथा मुझपर बडा प्रेम रखनेवालाहै वह द्यूतमें सर्वस्व हारकर वनको निकलदिआ मैं भी उसके साथ चलपडी बहुत दिन अन्न विन बीतगए एक दिन मुझे सोईपडीको छोडकर न जाने कहां चलागया मैं उस अपने भर्ताको खोजतीफिरतीहूं। राजमाता बोली कि तू मेरे घरमें वास कर मेरे भृत्य तेरे भर्ताका अन्वेषण करेंगे। दमयंती बोली कि मैं उच्छिष्ट नहीं खाऊंगी पुरुषसे संभाषण नहीं करूंगी और पादसंवाहन (पाऊं दबाना) नहीं करूंगी और मुझपर यदि कोई कामदृष्टि करेगा तो उसे आपको दंड देना होगा। राजमाताने यह सभ स्वीकार किआ और दमयंती भी वहां राजकन्या सुनंदाके पास रहने लगी।

इधर[1] भीमने भी नलवृत्तांत सुनकर नल और दमयंतीके खोजनेको ब्राह्मणोंको भेजा। उनमेंसे सुदेवनामका ब्राह्मण चंदेलीमें पहुंचा वहां राजभवनमें उसने दमयंतीको पहचानलिआ और दमयंतीसे कहा कि मेरा नाम सुदेव है मुझे तुम्हारे मातापिताने तुम्हारी खोजकेलिए भेजाहै। दमयंती भी सुदेवको पहचानकर मातापिताके कुशल पूछकर नलको स्मरण कर बहुत रोने लगी। सुनंदाने दमयंतीके रोनेकी बात मातासे कही राजमाता दमयंतीके निकट आकर सुदेवसे दमयंतीकी बाबत पूछने लगे कि यह कौन है किसकी कन्या है किसकी पत्नी है सुदेवने सभ सत्य वृत्तांत कहा सुदेवसे इसे दमयंती जान पहचान कर राजमाता तथा सुनंदा (राजकन्या) रोने लगीं क्यों कि यह राजमाता दमयंतीकी संबंधमें माउसी (मातृभग्नी) थी। और गुप्तरीतिसे रहनेका दमयंतीको बहुतसा उराहना दिआ कहा कि यह तो तेरा घर है फिर तू छिपकर क्यों रही। दमयंतीने भी राजमाताको बहुतसा धन्यवाद देकर कहा कि मैने गुप्तरीतिसे रहकर भी बहुत सुख पाया कोई दुःख नहीं पाया। अब आप कृपा कर कुंडिनपुर जानेकेलिए किसी वाहनकी व्यवस्था करदो। राजमाताने कुछ सेनाके सहित पीनसमें दमयंतीको कुंडिनपुरको भेजदिआ जो शीघ्र ही दमयंती कुंडिनपुर पहुंचगई। वहां सभको सकुशल देखकर संतुष्ट हुई और बहुत कुछ दान किआ। महा-

---

१ यह कथा नवमांकमें जताईहै। २ यह कथा भी नवमांकमें जताईहै।

राजभीमने भी दमयंतीके आनेके हर्षमें बहुत दान किआ उक्त सुदेवको बहुत कुछ मिला।

तदनंतर नलान्वेषणकेलिए बहुत यत्न आरंभ हुआ। जो[१] ब्राह्मण नलकी खोजमें चले उनको दमयंतीने कुछ श्लोक बनादिए कि इन श्लोकोंको आपलोग पढते फिरो इन्हे सुनकर जिसका चित्त विकृत हो उसका पूरा पता लगाकर आओ और अपना सभ भेद गुप्त रक्खो यदि वह कुछ मेरे श्लोकोंका उत्तर दे तो उस उत्तरको मुझे सुनाना। उन ब्राह्मणोंमेंसे पर्णाद नामका एक ब्राह्मण अयोध्यामें पहुंचा दैवात् उसकी नलसे भेट हुई उस ब्राह्मणने दूरसे ही दमयंतीके बताए श्लोक पढे उन श्लोकोंको सुन नल रोपडे और पर्णादका कुशल पूछकर दमयंतीके श्लोकोंके उत्तरमें नलने भी कुछ श्लोक पढे। नलके श्लोकोंको स्मरण कर पर्णादने कुंडिनपुर पहुंच सभ वृत्तांत दमयंतीसे कहा और नलके श्लोक सुनाए। दमयंतीको निश्चय होगया कि नल अयोध्यामें हैं। पर्णादको बहुतसा कुछ देकर मातासे विनय किआ कि मैं नलमहाराजके बुलानेको एक कूटनीतिका प्रयोग करनाचाहतीहूं यदि पितातक इस बातकी सूचना भी न पहुंचसके। माताने भी स्वीकार किआ तब दमयंतीने पूर्वोक्त सुदेवको माताके संमुख कहा कि तुम अयोध्यामें जाकर ऋतुपर्णको कहना कि कल्ह प्रातः ही दमयंतीका द्वितीयस्वयंवर है सभ राजालोग जारहेहैं आप भी जानाचाहतेहों तो शीघ्र जाइए। नलका कुछ पता नहीं लगता इससे दमयंतीका द्वितीयस्वयंवर होनाहै।

उक्त संदेशको लेकर सुदेव अयोध्या पहुंचा और ऋतुपर्णसे वैसे ही कहा। दमयंतीके रूपलोभसे ऋतुपर्णका हृदय चलगया और नलको कहा कि कल्ह प्रातः दमयंतीका द्वितीयस्वयंवर[२] है यदि आज मुझे तुम कुंडिनपुर पहुंचादो तो मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूंगा। दमयंतीके

---

१ यह कथा नवमांकमें है। २ यह कथा दशमांकके आरंभमें ही जताईहै। इस कपटनीतिके प्रयोगमात्रको ही भारतमें देखकर आजकल्हके पुनर्विवाहाग्रही लोग अपने आग्रहको शास्त्रीय बतातेहैं उन्हें यह भी सोचनाचाहिये कि यदि उस समय पुनर्विवाहका प्रचार होता तो दमयंती इस कूटनीतिको पितासे क्यों छिपाती दमयंतीने मिथ्या पुनर्विवाहका नाम भी पितासे छिपायाहै इससे पायाजाताहै कि उस समय पुनर्विवाहका कहीं नाम भी न था विशेष कहांतक लिखूं विस्तरसे डरताहूं।

द्वितीयस्वयंवरकी बात सुन नलका इकदम हृदय टूटगया बहुत दुःख पाया पीछे मन ही मनमें अपनी कठोरताकी ओर ध्यान देकर दमयंतीको निरपराध समझा फिर दमयंतीके पातिव्रत्यकी ओर ध्यान देकर जाना कि यह बात मिथ्या है। किंतु नलको भी कुंडिनपुर जाकर इस बातके सार जाननेकी इच्छा हुई इस हेतु ऋतुपर्णकी आज्ञा स्वीकारकी । उक्तकार्यकेलिए नलने सभ अश्वोंको देखकर जो दो अश्व पसंद किए वे देखनेमें बडे दुर्बल प्रतीत होतेथे इस हेतु ऋतुपर्ण कुछ रुष्ट होने लगे तब नलने उनके लक्षण सुनाकर ऋतुपर्णके रोषको शांत किआ और जब ऋतुपर्ण और उनका सारथी रथमें बैठे तो घोडे गिरगए तब नलने फिर उनकी पीठ ठोकठाक कर जो चलाया तो अश्व पवनसे बातें करने लगे रथके वेगको देखकर ऋतुपर्ण और उनका सारथी विस्मित होगए और सोचने लगे कि यह क्या मातलि है किंवा शालिहोत्र है किंवा नल है। कुछ दूर जाकर ऋतुपर्णने भी अपने संख्याशास्त्रकी बात कहकर चलते चलते एक बहेडेके वृक्षके फल और पत्र गिन दिए। नलने परीक्षाकेलिए झट रथ रोका ऋतुपर्णने कहा कि यह समय परीक्षाका नहीं चले चलो, नलने कहा कि मैं तो परीक्षा किए विना न चलूंगा आपको त्वरा है तो अपने सारथीके साथ चलेजाओ ऋतुपर्णने विवश होकर परीक्षा दी। नलने परीक्षा सत्य पाकर कहा कि आप अपनी विद्या मुझे बतादो और मुझसे अश्वविद्या सीखलो विवश होकर वहां ही ऋतुपर्णने नलको संख्याविद्या बतादी किंतु जानेकी त्वरासे नलसे अश्वविद्या वहां नहीं सीखी। संख्याविद्या प्राप्त होते ही नलके शरीरसे कलि पृथक् होगया नल क्रोधसे शाप देने लगे कलिने कहा मुझे दमयंती शाप देचुकी है अब आप शाप न दीजिए। नलने निजक्रोधको रोकलिआ। तब कलिने कहा कि राजन् जो आपका कीर्तन करेंगे उनको कलिका भय न होगा यह कह उस बहेडेमें कलि घुस गया नल भी कुछ कालमें कुंडिनपुरमें जापहुंचे।

तदनंतर भीमसे और ऋतुपर्णसे भेट हुई भीमने आगमनका कारण पूछा ऋतुपर्णने स्वयंवरकी बात मिथ्या जानकर कह दिआ कि आपसे केवल भेट करनेको आयाहूं।

---

१ यह कथा दशमांकके विष्कंभकमें जताईहै।

इधर दमयंतीने छतपरसे नलको देख अपनी टहलिन केशिनीको परीक्षाकेलिए भेजा केशिनीने नलकी और आगमनकी बात पूछी नलने कहा दमयंतीका स्वयंवर सुनकर आएहैं और नल कहां है यह कोई नहीं जानता यह कह नल रोदिए। सभ बातचीत करके केशिनी दमयंतीके समीप गई तब दमयंतीने केशिनीके साथ अपने पुत्र और पुत्रीको भेजा नल उनसे लिपट गए और केशिनीसे कहा कि मेरे पास जादा मत आओ। और अग्नि और जलको स्वयं प्रकट करलिआ इत्यादि हेतुओंसे नलको जानकर दमयंतीने मातासे कहा कि यह सारथी नल प्रतीत होतेहैं यदि आप आज्ञा दें तो मैं इसको बुलाकर कुछ पूछूं। एवं मातापिताकी आज्ञा पाकर दमयंतीने उक्त सारथीको बुलाकर नलकी कठोरताकी बातें कहकर और अपने असीम प्रेमकी बात कहकर नलका पता पूछा। नल रोदिए और कहा कि राज्यनाश तथा तुम्हारे त्यागमें मेरा अपराध नहीं यह सभ कलिका अपराध है। तदनंतर नलने भी दमयंतीको द्वितीयस्वयंवरका उराहना सुनाया। दमयंती भीत होकर हाथ बांधकर बोली कि आपके बुलानेकेलिए ही मैंने ऐसी कूटनीति कीहै और कोई तरहकी आप शंका न करें और दमयंतीके सत्य पातिव्रत्यकी साक्षिताकेलिए आकाशवाणी हुई नलका भी संदेह दूर होगया। नलने कर्कोटक नागका स्मरण किया नाग प्रकट होकर नलके रूपको देगया तब तो निःसंदेह होकर चतुर्थवर्षमें नल और दमयंती मिले और बहुतरोए। नलके आनेकी भीमको भी सूचना दी सभलोग हर्षमें होगए बहुत कुछ दान किआगया। वह रात्रि नल और दमयंतीने वार्तालापमें बिताई।

अगले दिन यह वृत्तांत ऋतुपर्णने भी सुनकर हर्ष माना और नलसे मिलकर ज्ञाताज्ञात अपराधकी क्षमा मांगकर गुप्तभावसे रहनेका उराहना दिआ नलने भी ऋतुपर्णको बहुत धन्यवाद दिआ और अश्वविद्या दी परस्पर बडा प्रेम होगया। ऋतुपर्ण अयोध्याको चलेगए नल कुछ दिन कुंडिनपुरमें रहकर निषधमें आये फिर पुष्करके साथ द्यूत खेला अब तो नल संख्याशास्त्र जानगएथे इससे पुष्करसे सभ राज्य जीतलिआ

१ यह सभ कथा दशमांकमें है। यहांपर नल तो छिपेहुएथे इससे केशिनीने नलसे ही नलकी बात पूछीहै और ऋतुपर्णके आगमनका कारण पूछाहै।

पुष्करको स्वापराधसे बहुत भय हुआ किंतु नलने कुछ दंड न दिआ प्रत्युत पुष्करके जो कुछ ग्रामादि प्रथम थे वे पुष्करको देदिए क्यों न हो महानुभावपुरुषोंका यही काम है। पुनः नलका राज्य होनेसे देश-भरमें लोगोंने स्वयं भारी उत्सव मनाया। तदनंतर नलने कुंडिनपुरसे दमयंतीको और संतानको मँगाया अपने पूर्ववत् सुखसे रहने लगे महती कीर्तिको प्राप्त होगए, विना संकट पाए कोई कीर्तिको प्राप्त नहीं होता। नलमहाराज पुण्यश्लोकोंमें गणनीय राजा हुएहैं ऐसी विपत्ति दूसरेने नहीं झेली। यही नलदमयंतीकी भारतानुसार मूलकथा है इसी कथाको भारतमें बहुत विस्तरसे लिखाहै। इसी कथाको मैंने भी यथामति यथायोग्य यथोचितरीतिसे इस नाटकमें भरा है। वृद्धलोगोंने कहाहै कि–
" मर्त्यैरसर्वविदुरैर्विहिते क्व नाम ग्रन्थेस्ति दोषविरहः सुचिरन्तनेपि "
" आत्मनः प्रियतया तनुभाजां नात्मनः कृतिषु दूषणदृष्टिः " इत्यादि इससे सिद्ध है कि किसी भी निर्मितग्रंथमें दोषका अत्यंताभाव नहीं होता और अपनी रचना अपनेको बड़ी प्रिय और गुणमयी प्रतीत होतीहै तथापि यह नहीं किंतु वस्तुगत्या गुण होनेसे ही सगुण होसकतीहै और उस विषयके विद्वान् ही यदि प्रशंसा करें तभी रचना प्रशस्त कहासकतीहै इससे मेरे इस नाटककी निंदा स्तुति साहित्य विद्वानोंके ही अधीन है।

नाटकमें नाटकीय नियमोंकी कठिनता तथा रसपुष्टिके प्राधान्यके कारणसे शास्त्रकारोंने कविको अधिकार दिआहै कि कवि अनुचित कथाको छोड भी सकताहै तथा कथाको इधर विधर भी करसकताहै और उचित हो तो अप्रधान कथाकी स्वयं भी कल्पना करसकताहै किंतु नाटककी प्रधान कथा अवश्य प्रसिद्ध होनीचाहिए और नायक राजर्षि होनाचाहिए तथा नायिका भी राजसजातीय होनीचाहिए। यह सभ नलकथामें है। हंसका संदेश, नल और कर्कोटककी कथा, दमयंतीकाशुकभीलकी मृत्यु, सार्थवाहके डेरेका नाश, ये कथा नाटकमें दिखानी कठिन हैं इससे इन कथाओंको मैंने नहीं लिखा। दमयंतीका चंदेलीमें प्रवेश, अश्वपरीक्षा, अयोध्यासे कुंडिनपुरको चलना, तथा मार्गमें ऋतुपर्णसे नलका संख्याशास्त्र सीखना कलिनलसंवाद इत्यादि कई कथाएं अधिक चमत्कारिणी नहीं हैं और स्थानका

संकोच होनेसे इन कथाओंको भी मैंने छोड दिआहै क्यों कि नाटकके १० अंक हैं वे प्रधानप्रदर्शनीयकथाओंमें ही समाप्त होगए। और द्वितीयांकमें नारदजीका आना मैंने कल्पनासे चमत्कारकेलिए लिखाहै तथा इंद्रके पाससे फलोंका आना दौत्यकेलिए नलके प्रलोभनार्थ कल्पना किआहै। तृतीयांकमें इंद्रादिदेवोंकी ओरसे जो अप्सरा दमयंतीके निकट आईहैं यह कथा दमयंतीके पातिव्रत्यदृढताके जतानेको कल्पना की है। पंचममें दमयंती स्वयंवरका गर्भांक दिखायाहै। यद्यपि प्रधानांकोंमें स्वयंवरका दिखाना शास्त्रमें निषिद्ध है तथापि गर्भांकमें निषिद्ध नहीं प्रतीत होता इसीलिए बालरामायणनाटकके तृतीयांकमें कविने सीतास्वयंवर गर्भांक दिखायाहै। बालरामायणमें वास्तव सीतास्वयंवर होनेसे प्रथम ही कविने सीतास्वयंवरको गर्भांकमें दिखायाहै इस हेतु इस नाटकके उक्त गर्भांकपर यह शंका नहीं उठानीचाहिए कि नाटकके भीतर जो नाटक दिखायाजाताहै उसका नाम गर्भांक है और नाटक तो भूतकथाका ही होताहै यहां दमयंतीके भावी स्वयंवरका गर्भांक क्योंकर दिखाया। यदि बालरामायणका गर्भांक दूषित है तो मुझे भी इस नाटकके गर्भांकको दूषित स्वीकार करनेमें मात्रया भी अरुचि नहीं। षष्ठ अंकमें मैंने द्यूत दिखायाहै मैं द्यूतमें अत्यंत अनभिज्ञ हूं इस हेतु द्यूतमर्यादाकी अशुद्धि कदाचित् रहगईहो यह मुझे भी संभावनाहै। सप्तममें नलदमयंतीकी शांतप्रवणताको दिखायाहै आशा है इसे सहृदयलोग अनुचित नहीं समझेंगे क्यों कि उक्त शांत अंगभूत है और विपद्ग्रस्त उत्तमनायिकानायकका संपत्त्यर्थ विलाप दिखाना मैंने उचित नहीं समझा उनका हरिचर्चा करना कुछ अनुचित भी प्रतीत नहीं होता यद्यपि कुंडिनपुरसे निषधमें जाकर पुष्करसे राज्य जीताहै तथापि आगे अंक बढानेकी मर्यादा न होनेसे और उस कथामें अधिक चमत्कार न होनेसे कुंडिनपुरमें ही पुष्करसे द्यूतसे राज्य जीतनेकी कथा लिखीहै। और नलके माहात्म्य जतानेको अंतमें इंद्रका आना भी लिखाहै।

इस नाटकमें यद्यपि समग्र पद्य भाषाका ही चाहिएथा तथापि मैंने बहुतकर संस्कृतपद्य लिखेहैं क्यों कि एक तो नवीनरीति दरसानेको आजतक भाषा और संस्कृतका मिश्रित नाटक कोई न होगा और इस

नाटकके पढनेमें भाषावालोंको भी रुचि होगी क्यों कि समग्र गद्य भाषामें है और संस्कृतज्ञोंको भी रुचि होगी क्यों कि पद्य अधिकतर संस्कृतमें है। मैं स्वयं लिखताहूं कि मेरा बनाया यह नाटक उत्तम विद्वानोंके पढनेयोग्य नहीं तथापि नलदमयंतीका चरित्र अवश्य पढनेयोग्य है इस हेतु विद्वान्लोग भी इसे पढें तो आश्चर्य नहीं।

पाठकवर शास्त्रमें सच्चरित्रोपदेश ही नाट्कादि काव्योंका प्रयोजन लिखाहै–" कान्तासंभिततयोपदेशयुजे " इत्यादि अर्थात् जो सुकुमार-मति राजकुमारादिलोग वेदादिशास्त्र पढनेसे विमुख हैं उनको गुडजिह्विका न्यायसे रसप्रधाननाट्कादिकाव्योंसे सत् उपदेश दिआ जाताहै और उन लोगोंकी रसके लोभसे काव्यमें सहज ही प्रवृत्ति होजातीहै। काव्यमें दुर्योधनादिकी अवनति और युधिष्ठिरादिकी उन्नतिको देख वे समझजातेहैं कि दुर्योधनादिकी चालसे नहीं चलना-चाहिए किंतु युधिष्ठिरादिकी चालसे चलनाचाहिए। धीरे धीरे कालपरिवर्तनसे अब लोग काव्यसे सच्चरित्रका ग्रहण न करके प्रत्युत असच्चरित्रोंका ही ग्रहण करनेलगेहैं यथा लोग लैलामजनूंका प्रेम सुन जिस स्त्रीपर चाहें प्रेम कर बैठतेहैं वे यह नहीं सोचते कि लैला कन्या थी कोईके साथ उसका विवाह नहीं हुआथा और उसका जातिमर्या-दासे मजनूंके साथ विवाह होसकताथा इस हेतु लैलापर मजनूंका प्रेम करना कुछ भला नहीं तो बुरा भी नहीं होसकता। और आजकल्ह परस्त्रिओंपर जो प्रेम किआजाताहै वह सभतरह निषिद्ध है इस बातपर लोग ध्यान नहीं देते। इसी हेतुसे यद्यपि साहित्यमें परकीया भी नायिका कहीहै तथापि परकीया नायिकाका उत्तम नाट्कादि काव्योंमें निबंध करना निषिद्ध है। एवं स्त्रिओंका परपुरुषप्रेम निषिद्ध है स्त्रीलोग न तो दमयंतीके पातिव्रत्यकीओर ध्यान देंगी और न यह ही सोचेंगी कि दमयंतीने जो नलपर प्रेम किआ तो कन्या होनेके कारण प्रथम मनसे नलको अपना पति बनालिआ तब नलमें प्रेम किआ और नलसे दमयंतीका जातिमर्यादासे विवाह भी होसकताथा किंतु यही सोचेंगी कि जैसे दमयंतीने नलमें प्रेम किआ ऐसे हम भी हरपुरुषसे प्रेम कर सकती हैं, वह पर पुरुष चाहे घरका मजूरा हो चाहे भंगी हो चाहे चमार हो इन्हे तो प्रेमसे काम है।

स्त्रीलोगोंका तो परपुरुषसे गुप्त प्रेमतकका ही उत्साह था आजकल्हके किशोर लोग तो स्त्रिओंके परपुरुषसे पुनर्विवाहकेलिए भी कमर कस बैठे हैं। ये लोग भारतवर्षकी उन्नति कररहेहैं आशा है कि इन लोगोंके इन उद्योगोंसे किसी दिन भारतकी भूमि (जमीन) सुवर्णमयी होजायगी। शोकका स्थान है कि ये लोग यह भी नहीं सोचते कि यदि विलायतसे दिआसिलाई न आए तो भारतमें दिआ भी जल नहीं सकता। विलायती मोमबत्तिओंके प्रकाशमें विधवाओंके पुनर्विवाहद्वारा जो लोग भारतकी भूमिको सुवर्णमयी बनारहेहैं इसकेलिए कोई यथोचित उदाहरण भी प्राप्त नहीं होता। यही प्रतीत होताहै कि जो धर्माभास शेष है वह भी इन लोगोंको अच्छा नही लगता उसे भी विदा करना चाहतेहैं। यदि कहो कि विधवाविवाहमें दोष ही क्या है तो यदि आप आस्तिक हैं तो इन विधर्मी छोकडे पंडिताभासोंका संग छोडकर श्रुतिस्मृतिको देखिए एक छोड अनेक प्रमाण मिलेंगे यथा- " नैका बहून् पतीन् " इत्यादि श्रुति। यदि आप कहें कि विधवा स्त्रिएं व्यभिचार करतीहैं इससे उनका विवाह करादेना ही अच्छा है, यह भी उचित नहीं क्यों कि जो व्यभिचार करनेवालीहैं वे हजार पुनर्विवाह छोड एक कालमें भी हजार भर्ताके रहनेपर व्यभिचार करेंगी ही तब तो व्यभिचारका पाप लगा ही और पुनर्विवाहका भी पाप लगा। यदि आप इस दुहरे पापको भी इष्टापत्ति मानेंगे तो भी और दोष देताहूं कि एक विधवा व्यभिचार करतीहै किंतु पुनर्विवाह नहीं कराती एकने पुनर्विवाह कराया उन दोनोंको द्वितीयपुरुषसंगका पाप आपके मतमें समान ही लगा दोनोंका एकसा ही परलोक बिगडा किंतु जिसने पुनर्विवाह नहीं कराया उसका लोक नहीं बिगडा पुनर्विवाह करानेवालीका लोक भी बिगडगया। यदि आप पुनर्वि- वाहके पक्षपातसे द्वितीयपुरुषसंगमें दोष नहीं मानते तो व्यभिचारमें भी दोष नहीं प्राप्त होगा फिर क्यों विधवा विचारिओंको पुनर्विवाहके जालमें फँसातेहो। एतावता यह मत जानों कि मेरा पक्ष व्यभिचारपर है, किंतु स्त्रीको व्यभिचारसे भी पुनर्विवाहकी तरह अवश्य निवृत्त होना चाहिए। हां पापपक्षमें पुनर्विवाहकी अपेक्षा व्यभिचारकी शक्ति कम है। यदि कहो कि व्यभिचारिणीको और पुनर्विवाहवालीको भी पाप लगना ही है तो पुनर्विवाहसे विशेष द्वेष क्यों है यह भी ठीक

नहीं क्यों कि व्यभिचारापेक्षया पुनर्विवाहमें अधिक पाप लगेगा। यदि आप कहतेहैं कि विधवालोग व्यभिचारके कारण अनेक गर्भ तथा संतानको मार देती हैं विवाह करा देनेसे यह पाप न होगा तो लालजी कीचडसे कीचडको क्यों धोते हो उलटे मार्ग क्यों चालते हो सीधे चलकर विधवाओंके व्यभिचारको रोको जिससे उनका परलोक सुधरे और आप भी आस्तिकसमाजमें लालबुझक्कड न कहाएं। यदि कहो कि यह कैसे हो तो विधवाओंको सत्संग दीजिए सदुपदेश दीजिए कुसंगसे बचाइए आप जितेंद्रिय बनिए आपकी बहिन बेटी भी अवश्य जितेंद्रिया होंगी। यह कभी न होगा कि आप तो चाहें जितना विलास करें और आपकी बहिन बेटी जितेंद्रिय हों। यादि आप पर-स्त्रीके पास जाएंगे तो आपकी स्त्रिएं भी परपुरुषसे अवश्य संग करेंगी। यदि आप कोट बूट पहरेंगे तो आपकी स्त्रिएं भी अवश्य ही शरट और गुरगावी पहिरेंगी क्यों कि उनका भी आपसा ही मन है। यदि आप भारतकी उन्नति करना चाहतेहैं तो भारतके धर्म धन शिल्प विद्या तथा खानपानादिव्यवहारकी रक्षा कीजिए जिस मार्गसे आप चलेहैं उस मार्गसे भारतकी उन्नति तो न होगी हां विलायतकी उन्नति अवश्य होगी और होरहीहै। शोकका स्थान है कि अंगरेजी भाषाके प्यारसे आप अपनी मातृभाषाको भी छोडतेजातेहैं और कहतेहैं कि हम भारतकी उन्नति करतेहैं, नजाने आपने! देशोन्नति किस चिडिआको समझाहै। जिस समय भारत परमोन्नत था उस समयके लोगोंके चरित्रपरभी कुछ ध्यान दीजिए। यदि विदेशीयजनोंपर ध्यान देनाहै तो उनके गुणोंपर ध्यान दो उनके दोषोंका संग्रह मतकरो। उनका हमारा धर्म एक नहीं होसकता। भारतकी उन्नति धर्मके हाथ है धर्मपर ध्यान दीजिए विलासवश होकर अधर्मसमुद्रमें मत पैरो मैं आशाकरताहूं कि आप मेरे इस कठोर लेखसे रुष्ट न होकर प्रत्युत हितसूचकतासे संतुष्ट होंगे। मेरे इस नाटकको पढनेवालोंमेंसे पुरुष नलचरित्रकी ओर ध्यान दें और स्त्रीलोग दमयंतीके पातिव्रत्यकी ओर ध्यान दें.

मैं यही चाहनेवालाहूं

पंडित सुदर्शनाचार्यशास्त्री पंजाबी.

काशी.

अनर्घनलनाटक पढौ चलौ धर्मकी रीति ।
नलदमयंतीप्रेमसम हरिचरणन कर प्रीति ॥

॥ श्रीः ॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

अथ

अनर्घनलचरित्र

प्रथमांक

अव्याद्वः श्रुतिपाठपूतवदनैर्यं वक्ति सेव्यं विधि-
यं जिज्ञास्यतया वदन्ति सगुणं वेदान्तसूत्राणि च ।
यत्सागुण्यवशात् समाहितमलं प्रौढैः प्रमाणैः समं
यन्नैर्गुण्यविधेऽभ्यवेत मिततः कृत्स्नं स नारायणः ॥ १ ॥
शक्रेऽप्येकत्र संस्थे वृषवति गिरिशे चित्रभानौ स्थिते च
ब्रध्नेऽप्याश्चर्यबद्धे वलयति वरुणे पूर्णबिम्बे च चन्द्रे ।
एवं गीर्वाणचक्रे सरसिजवदनं विश्वविख्यातवीर्यं
दृष्ट्वा नारायणं तं तरलितहृदया प्रीयतामिन्दिरा नः ॥ २ ॥

१ अव्यादिति, जिस श्रीनारायणको ब्रह्माभी वेदपाठपवित्र निज मुखोंसे सेव्य कहताहै, तथा जिस श्रीनारायणको वेदांतसूत्र जिज्ञास्य (जानने योग्य) बतातेहैं, जिस श्रीनारायणकी सगुणता (सविशेषता) से प्रौढपुरुषों (आचार्यों) ने प्रमाणोंसे सम=सर्व पदार्थका समाधान कियाहै, तथा जिस श्रीनारायणकी निर्गुणतासे कोईभी पदार्थ प्रामाण्यको प्राप्त नहीं होसकता क्योंकि जब श्रीनारायण ब्रह्म निर्विशेष है तब सृष्ट्यादिक उपपन्न नहीं होसकते क्योंकि सृष्ट्यादिको श्रीनारायणकी इच्छाके अधीन कहनाहोगा, इच्छादि धर्म तो निर्विशेषमें रह नहीं सकते इस हेतु अवश्य उसे सविशेष कहनापड़ेगा, वह श्रीनारायण आपकी रक्षा करे ॥

इस पद्यका संक्षेपसे ही अर्थ लिखाहै विस्तर कियाजाय तो समग्र अद्वैतशास्त्र पूर्वपक्षमें आसकताहै और समग्र विशिष्टाद्वैत सिद्धांतपक्षमें आसकताहै । एवं आगेभी संक्षेपसेही अर्थ लिखूंगा क्योंकि स्वनिर्मितपद्योंकी मैं स्वयं सविस्तर व्याख्या लिखना उचित नहीं समझता ।

२ शक्र इति, लक्ष्मीके स्वयंवरका वर्णन है । इंद्र महादेव अग्नि सूर्य वरुण तथा चंद्र इत्यादि देवसमाजमें विख्यात है सर्वत्र कीर्ति जिसकी ऐसे कमलमुख श्रीनारायणको देखकर चंचल (प्रीतिबद्ध) होगयाहै हृदय जिसका वह इंदिरा=श्रीलक्ष्मी हम लोगोंके लिये प्रसन्न हो ॥

प्रसूनगुच्छच्छदनाऽऽवृता ये
महीरुहास्तेऽपि गता ध्रुवत्वम् ।
पुनर्वसन्ते विकचा भवन्ति
त्रैविक्रमी रीतिरियं मुदेऽस्तु ॥ ३ ॥

(नांदीके अंतमें मुक्ताफलपरिपूर्ण पात्र (चषक) को हस्तपर लिये सूत्रधार आताहै)

सूत्रधार—वाह ! वाह ! अतिसुंदर कहा, उस अघटितघटनानिपुण परमेश्वरका यही स्वभाव है । और आपके इन अक्षरामृतबिंदुओंसेभी किसका मन है जो विमुख हो तथापि समय संकुचित होनेसे निवेदन है कि विशेष विस्तरको स्थान नहीं । (समाजिकोंकी ओर देखकर)

आः किं पौरजनाः सुदर्शनकृतेरालोकनायोत्सुकाः
यात्राऽऽयस्तमनोविनोदनकृते तिष्ठन्ति वैदेशिकाः ।
वैदर्भ्याश्च नलस्य लोकसुखदा प्रेम्णः पवित्रा कथा
सर्वं ह्यद्य तदस्ति येन निपुणं रङ्गे नटेयुर्नटाः ॥ ४ ॥

तस्मात् अब विलंब उचित नहीं (घूमकर) सहधर्मिणीको पुकारता हूं । आर्ये ! (पुनः) आर्ये, आः रूपगर्विते ! क्या प्रतिवचनप्रदान भी भूल गया । (आकाशकी ओर कान लगाकर) क्या कहती हो ? मैं एक अनर्घलीला देखतीहूं । प्रिये ! कौन लीला देखतीहो ? क्या कहा कि जैसे संयोगवियोगोंको एकओर पुस्तकमें पढतीहूं वैसे ही उन्हें प्रतिवेशगृहमें देखतीहूं । आर्ये !

---

३ प्रसूनेति, पुष्पगुच्छ तथा पत्रोंसे आवृत (भरेहुए) भी जो वृक्ष वसंतसे पूर्वकालमें पुष्पपत्रोंसे हीन होकर फिर वसंतकालमें पुष्पपत्रोंसे पूर्ण होजातेहैं ऐसी जो घटाने बढानेवाली श्रीत्रिविक्रमभगवान्की रीति (लीला) है वह सबके हर्षके लिये पर्याप्त हो । त्रिविक्रमपदसे बलिकथा भी व्यंजित है । इस श्लोकसे भाविकथाका भी सूचन कियाहै कि नलमहाराज सर्वात्मनासंपन्नभी विपत्तिको प्राप्त होकर फिर उसी संपत्तिको प्राप्त होंगे । एवं उक्त इन तीन पद्योंसे नांदी समाप्त हुई ॥

४ आः किमिति, पुरवासी लोग सुदर्शनकृत अनर्घनल महानाटकके देखनेकेलिये उत्सुक होरहेहैं और वैदेशिक लोग भी यात्रासे श्रांतमनके विनोदार्थ नाटक देखनेको आबैठेहैं यह बडी हर्षकी बात है. और अनर्घनलचरित्रनाटकमें नल और दमयंतीके पवित्र प्रेमकी कथा है इस हेतु आज ऐसी सामग्री जमी है कि हम लोगोंको निपुणतासे जी खोलकर नाटक खेलना चाहिये ॥

संयुक्तानां वियोगोऽपि वियुक्तानां च सङ्गमः।
भवत्येव सदा लोके विधिलीला ह्यतर्किता॥ ५॥

प्रिये यह देखनेका समय नहीं किंतु अनर्धलीला दिखानेका समय है इससे शीघ्र आओ। (नटी आतीहै)

नटी–आपको अपना काम तो कभी नहीं भूलता।

सूत्रधार–मैं आपके कामको भी भूल नहीं गया।

नटी–भूले नहीं तो स्मरण ही क्या है ?।

सूत्रधार–यह देखो, (मुक्तापूर्ण पात्रको दिखाताहै)

मुक्ता विगुम्फय ललने क्रमरिक्तरीत्या
ज्ञात्वापरापरविधां च वियोजयित्वा। ६
तत्तत्क्रमेण रचनां च विधाय तासां
कण्ठे प्रिये तव निधाय कृतीभवामि॥ ६॥

नटी–अच्छा, इस चाटुकारिताको रहने दो, यह कहो कि किस लीलाका विचार है ?।

सूत्रधार–अनर्घनलकी लीलाका।

नटी–कुछ विचारकर तो कहाकीजिये।

सूत्रधार–क्या ?।

नटी–यह कि एक तो यह महानाटक उसपरभी इसकी भूमिकाएं इतनी क्लिष्ट हैं कि उनका पूर्णभावसे दरसाना दुःसाध्य प्रतीत होताहै।

---

५ संयुक्तेति, संयुक्तोंका वियोगभी होताहै तथा वियुक्तोंका संयोगभी होताहै क्योंकि भगवान्‌की लीलाका कुछ पारावार नहीं। इस पद्यमें बीज अर्थप्रकृति है, बीज कविके एक चातुर्यका स्थान है और बीजही नाटककी नीम कहातीहै कहाभी है–" बीजं स्वल्पं फले हेतुरुक्तं विस्तार्यऽनेकधा " इति। इस पद्यमें यह सूचित कियाहै कि नल और दमयंती वियुक्त होकर फिर संयुक्त होंगे। नल और दमयंतीका संयोग वियोग और पुनः संयोगही कथाका सार है॥

६ मुक्तेति, हे ललने! प्रथम साधारण रीतिसे इन मुक्ताओंको पोकर तब इनकी हार बनाने योग्य क्रमपरंपराको जानकर और उस लडीको तोडकर पुनः क्रमसे भलीभांति पोकर तेरे कंठमें पहिराकर अपने आपको कृतकृत्य मानूंगा। इस पद्यमेंभी नाटककथाकी सूचना कीहै।

सूत्रधार–यह सब सत्य है किंतु दर्शकलोग इसी लीलाके देखनेको उत्सुक हैं।

नटी–अब तो आप दिनोंदिन हठी होतेजातेहैं।

सूत्रधार–अयि आलस्यैकमूर्ते!

गुणार्जनात्पाण्डुरकीर्तिभाजां
सतां मनःखेदनिवर्तनाय।
स्वकीयचातुर्यनिदर्शनाय
श्रमेण तावत्सुजना यतन्ते ॥ ७ ॥

(नेपथ्यमें कोमलस्वरसे)

क्या संदेह है 'गुणार्जनात्पाण्डुरकीर्तिभाजाम्' (इत्यादि सुनाई देता है)

सूत्रधार–(सुनकर हर्षसे) आर्ये! यह देखो तुम्हारी लडकी अमात्यकन्या मालिकाका वेश किये चलीआतीहै चलो अपने भी निज कृत्यमें तत्पर होयँ।

नटी–जो आज्ञा। (दोनों जातेहैं)

इति प्रस्तावना।

(किशोरावस्थासे मालिका आतीहै)

मालिका–क्या संदेह है ऐसे ही चाहिये–

गुणार्जनात् पाण्डुरकीर्तिभाजां
सतां मनःखेदनिवर्तनाय।
स्वकीयचातुर्यनिदर्शनाय
श्रमेण तावत्सुजना यतन्ते ॥

मदनिकाने कहा है कि भर्तृदारिका[१] श्रीमती दमयंती आज उदासीन हैं, क्या हेतु है, क्या कल्ह उपवनमें उस हंसने जो संदेश दियाथा उसके स्मरणसे तो उदास नहीं, तथापि उदासीनताकी आज क्यों

७ गुणेति, गुणोपार्जनसे शुक्लकीर्तिवाले सत्पुरुषोंके मनका खेद (उदासीनता) दूर करनेको और उनके प्रति स्वकीय चातुर्य दिखानेको सज्जनलोग श्रमपूर्वक यत्न कियाकरतेहैं॥

१ नाट्यशास्त्रकी रीति है कि राजाकी लडकीको भर्तृदारिका कहना किंतु नाम लेनेकाभी कुछ दोष नहीं।

विशेषता है ? किसीने कुछ कहा हो यह भी संभव नहीं, क्या कारण है कुछ भी तर्क नहीं चलता, जो हो बिना गये निश्चय नहीं होगा।

(चंदनलता दासी आतीहै)

दासी–जय जय।

मालिका–चंदनलते ! क्या है ?।

दासी–भर्तृदारिका आपको स्मरण करती हैं।

मालिका–कहां हैं और क्या करती हैं ?।

दासी–अपने ही भवनमें उदासीनसी बैठीहैं।

मालिका–अच्छा पालकी आतीहै तो चलतीहूं।

दासी–पालकी तो आगईहै द्वारपर लगीहै।

मालिका–हां, चलो तो। (दोनों जातीहैं)

इति विष्कंभक।

(अपने भवनमें तकियेके आश्रय दमयंती बैठीहै बांईओर मदनिका बैठीहै)

दमयंती–मदनिके ! शिरोवेदनाके कारण आज मैं तातपादवंदनको नहीं जासकती इस हेतु तुम जाकर मेरी ओरसे तातपादोंपर प्रणाम निवेदन करो और मेरे न जानेकी क्षमा मांगो।

मदनिका–सखि। आप इतनी उदास क्यों हो कुछ तो कहो क्या मुझसे भी कपट है ?।

दमयंती–मदनिके ! क्या बधिरा होगई है ? मैं कहतीहूं कि तातके पास जा, तू प्रहरभरसे कुछ और ही गीतगारहीहै।

मदनिका–कुपित न हूजिये जाती हूं। (जातीहै)

दमयंती–(चारों ओर देखकर) हाय ! अरे मन ! तेरी यह लघुता कि जो एक पक्षीके संदेशसे और एक ही बेरके स्वप्नसे तेरी यह दशा होगई। हाय ! इस मनको क्या हो गया ?

सदा यदासीद्विकचारविन्द-
प्रभं ममैतत् किल निर्वृतं हृत्।

८ सदेति, जो मेरा मन सदा प्रफुल्लित कमलसा सहर्ष रहता था वही मेरा मन प्रियरूपामृतलाभकेलिये ही क्या चिंतासमुद्रमें डूब रहा है ?। उत्प्रेक्षालंकार है॥

तदेव रूपामृतलाभबुद्धे-
श्चिन्तार्णवं संप्रति गाहते किम् ॥ ८ ॥

आः कष्टं ! बहुत चाहतीहूं कि उधरसे चित्त रुके किंतु यह तो और भी उसीओरको जाताहै ।

स्वप्नार्थसौन्दर्यविलुब्धचेतो
मुधैव किं धावसि संभ्रमेण ।
विस्रम्भयोग्यं नु रुतं तिरश्चां
संवेशदृष्टं वितथं न वस्तु ? ॥ ९ ॥

क्या उस मनोहर मूर्तिका फिरभी दर्शन होगा ? अहो उसकी रूपसंपदा–

भुजिष्यभावाय मुखस्य यस्य
भ्रमत्यजस्रं दिवि यामिनीशः ।
ददात्यलभ्यं निजपल्लवेन
करानुकाराय सुरद्रुमोऽपि ॥ १० ॥

प्राणनाथ ! क्या रूठकर चले गये ? प्यारे ! पुनरपि अपना मुखेंदु दरसाओगे ? धन्य हैं वे नयन जो आपकी माधुरी मूर्तिको निहारतेहैं, धन्य है वह नगर जिसमें आप निवास करते हैं । अरे मन ! तू तो इतने संकल्प विकल्प करताहै उस सुंदरको तो यह भी विदित न होगा कि मुझे किसीने स्वप्नमें देखा है । क्या कोई ऐसाभी दिन आयगा कि जिस दिन मैं साक्षात् उस प्यारेको निहारूं (वामनेत्रस्फुरण होताहै) अहो वामनेत्र ! स्वस्फुरणसे मेरे भावी सौभाग्यकी सूचना देता है । क्या आश्चर्य है–

---

९ स्वप्नेति, हे स्वप्नदृष्टपदार्थके सौंदर्यसे विलुब्ध चित्त वृथा क्यों इधर उधर दौडताहै=क्यों व्यर्थ मनोरथ करताहै, क्या पक्षीका कहा वचन विश्वासयोग्य होताहै ? तथा स्वप्नमें देखी वस्तु क्या मिथ्या नहीं होती ? ॥

१० भुजिष्येति, उस प्यारेके मुखकी दासताकेलिये ही मानो चंद्रमा अहर्निश अंतरिक्षमें घूमताहै । कल्पवृक्षभी अपने पत्रसे उस प्यारेके हस्तकी समता पानेके लिये ही मानो याचकोंको अलभ्य पदार्थोंका दान देताहै । इस पद्यमें मुखसंधिका विलोभननामक अंग है ॥

दूरं स्मृतेर्यच्च मनोरथानां
तथैव तर्कैरपि गम्यते नो।
संविद्यते तच्च जनैरयेन
लब्धः पुरारिर्न हि किं भवान्या ॥ ११ ॥

(मृदंगवालीके साथ तुंबूरा लिये वासंती आतीहै)

दोनों–जय जय (प्रणाम करतीहै)

दमयंती–आओ बैठो।

दोनों–जो आज्ञा (बैठतीहैं) (मालिका आतीहैं)

दमयंती–अहा मालिका आतीहै।

मालिका–हमारी राजदुलारीको त्रिभुवनचूडामणि नवराजकुमार प्राप्त हो। (दमयंतीके पास बैठतीहै)

वासंती–(मृदंगपर थाप देकर) एवमस्तु।

दमयंती–मेरे आशीर्वचनसे आपको चतुर्दशभुवनचूडामणि प्राप्त हो।

वासंती–(मृदंगपर थाप देकर) एवमस्तु।

मालिका–(धीरेसे दमयंतीसे) आज किस शोचमें हो, किस नवयुवाके सौभाग्यका प्रभात हुआचाहताहै ?।

दमयंती–आप भी तो आज फूली अंग नहीं समातीं, इसमें कुछ हेतु होगा ही।

मालिका–जी हां, जो मनमें होतीहै वह कभी छिपतीहै ?

चौर्यं चौरैः कृतं तत्र दण्डपातस्तु यामिके।

दमयंती–अहो हो बडी तपस्विनी मानो निर्बीज समाधिमें लगी है।

मालिका–आपके अमात्योंको सबीजसमाधि क्या विशेष वस्तु है ?। यह कहो कि आपका क्या डौल है ?।

---

११ दूरमिति, जिस पदार्थतक मनोरथभी नहीं पहुंचसकता तथा जिस पदार्थकी प्राप्तिका तर्कभी नहीं होसकता वह भी पदार्थ सौभाग्यवश जीवको प्राप्त होजाता है यथा पार्वतीने पुरारिको पाया ॥ आगेका जयपद इस पद्यके अर्थको पुष्ट करता है ॥

---

१ जबतक गानेवाली बैठी है तबतक आगेभी दमयंती और मालिकाका वार्तालाप धीरे धीरे समझना। २ चोरी करे चोर और दंड मिले पहरेवालेको।

दमयंती–अच्छा तो है ।

मालिका–दर्पणमें मुख देखकर कहिये ।

दमयंती–मुख देखाहै, चुप होकर गान सुनो । (वासंतीकी ओर देखकर) हां ।

वासंती–जो आज्ञा ।(तुंबुरेके साथ टोडी आलापतीहै) ता ए नने नने री तने नने री तनों (इत्यादि) ।

दमयंती मालिका–वाह वाह ! (वासंती प्रणाम करतीहै)

वासंती–तने री नान्हे तने ने री तनों (इत्यादि) ।

मालिका–बहुत सुंदर गातीहो । (वासंती प्रणाम करतीहै)

वासंती–(टीपपर) री.... ता ए नने नने री तनों इत्यदि ।

सभ–अहा हा हा ! वाह वाह !

(पुनः वाद्योंको मिलाकर वासंती तिताला धुरपत गातीहै)

वासंती–भज मन श्री ... हरिचरणम् । (मालिका ताल देतीहै)

मालिका–(समपर) अहा हा हा !

वासंती–मुनि नर लेखन वंदित–भव सब आस्त्रवहरणम् । भज.... ।

दमयंती–वाह वाह ! बहुत अच्छा पद गातीहो । (वासंती प्रणाम करतीहै)

वासंती–भक्तसुमानससकलमनोरथ–सभविधिपूरणकरणम् । भज मन श्री.... ।

दमयंती–(मनमें) क्या भगवान् श्रीनारायण मेरे भी इस मनोरथकी ओर दृष्टि देंगे, आह ऐसे भाग्य कहां ? ।

वासंती–(तृतीय सप्तकसे) विविध कर्मकी जालयंत्रिका यंत्रितत्रिभुवनशरणम् । भज मन श्री....॥ १२ ॥ (मदनिका आतीहै)

मदनिका–(समपर ताल देकर) अहा हा हा ।

सभ–बहुत अच्छा गाया । (वासंती प्रणाम करतीहै)

दमयंती–(मदनिकासे) क्या तातपादोंसे विनय कर आई ? ।

---

१ गायकलोगोंकी मर्यादा है कि यदि कोई अपने बराबरका किंवा अपनेसे ऊंच प्रशंसा करे तो उसे प्रणाम करना ।

२ वासंतीके इस गीतपर जो अंक हैं वे तालके अंक हैं गायक अपनी इच्छानुसार तालको आगे पीछे भी करसकताहै ।

मदनिका–जी हां। (एक ओर बैठतीहै)

दमयंती–तातपाद कुछ बोले तो नहीं ?।

मदनिका–पूछतेथे कि क्यों शिरोवेदना है।

दमयंती–तुमने क्या कहा ?।

मदनिका–मैंने कहा कि कुछ चिंताकी बात नहीं साधारणही है।

दमयंती–अच्छा कहा।

मालिका–(धीरेसे मदनिकासे) सखि ! साधारण क्यों कहतीहो मुझे तो विशेषही प्रतीत होताहै, कहो तो भर्तृदारिका आज उदास क्यों हैं ?।

मदनिका–(धीरेसे) मैंने तो बहुत पूछा कुछ नहीं बतातीं, आप पूछो।

दमयंती–सखि ! क्या विचार करती हो ?।

मालिका–वासंतीको पारितोषिक देनेका।

दमयंती–क्यों न हो–

मनोवृत्तिरुदाराणां विद्यापितसमुत्सुका।
अल्पतोऽपि भवेत्तुष्टा का कथा गुणदर्शनात्॥ १३॥

मदनिका–हां हां ! (दमयंती और मालिका कंठका हार देतीहैं)

वासंती–(हार लेकर) हमारी लाडिली जोडी हरी भरी रहै।

मदनिका–(वासंतीसे) क्या हमनेही कुछ बिगाडाहै।

वासंती–(मदनिकासे) नहीं नहीं आप सदा जरी रहैं।

मदनिका–छीः क्या बकती है, जरी रहे तू।

वासंती–क्षमा कीजिये, मुझसे भूलकर कहा गया, तुम ही तो अनेक युवजनचकोरोंकी चंद्रकला हो, यदि जर जाओगी तो कैसे काम चलेगा।

मदनिका–बस बक मत।

दमयंती–(वासंतीसे) तुम आज कई दिन पीछे आई हो कहां रहीं ?।

वासंती–मैं तो आई थी, पहिरेवालीने यहां आने नहीं दिया।

दमयंती–कोई बात नहीं।

---

१३ मन इति, उदार जनोंकी चित्तवृत्ति सदा दानप्रिय होनेसे अल्प हेतुसे भी तुष्ट होजातीहै फिर क्या कथा जो गुणसे तुष्ट होतीहै॥

वासंती–अब मुझे जानेकी आज्ञा हो तो श्रीमहारानीजिके जाना चाहती हूं।

दमयंती–जाओ। (प्रणाम करके मृदंगवाली और वासंती जातीहै)

मालिका–(दमयंतीसे) कहो प्यारी सखि आज क्या बात है ?।

दमयंती–क्यों ?।

मालिका–यह कि–

मुक्ताकान्तिहरं मुखं तव तमीमात्रेण पीतं सखि
तन्वी तापयुता तनुश्च शिथिला दृष्टिः परं शङ्किता।
चित्तं शून्यमिवेक्ष्यतेऽथ तरलं संलापके मौनता
प्रश्वासा अनुमापयन्ति विकृतिं चेतोभवां कामपि ॥१४॥

दमयंती–अयि अन्यशंकिते ! तर्ककेलिये तो कोईभी अवधि नहीं।

मालिका–मदनिके ! तुमही बताओ क्या वार्ता है ?।

मदनिका–सखि ! जब तुमसे ही इतना कपट है तो मेरी क्या चलाई।

मालिका–(दमयंतीसे) सखि ! कुछ तो कहो।

दमयंती–मालिके ! कुछ भी नहीं।

मालिका–कुछ भी नहीं तो तुम्हारी यह दशा क्यों होरहीहै ?।

दमयंती–सखि ! भ्रमकी तो औषधि प्रजापतिके भी घर नहीं।

मालिका–अत्यंत कष्ट है जो मुझे भ्रम बतातीहो।

दमयंती–और नहीं तो क्या बताऊं ?।

मालिका–यह बताओ कि आपकी इस दशाका हेतु क्या है ?।

दमयंती–शिरोवेदना।

मालिका–वाह वाह !।

दमयंती–वाह वाह क्यों ?।

---

१४ मुक्तेति, मोतीकी दमककोभी तिरस्कृत करनेवाला तुमारा मुख एक रातमें पीला पडगया, तुमारी काय तप्त दुबली और शिथिल होगईहै, दृष्टि शंकित है, तुमारा चित्त उदास तथा तरल होरहाहै, वार्तालाप भी करना नहीं चाहतीहो, और ठंढी सांस भरतीहो, इन हेतुओंसे पायाजाताहै कि तुम्हारा चित्त विकृत होरहाहै ॥

मालिका—यों कि आज आपने सब जगत्को ऐसा मूर्ख समझ लिया है कि हमारी विशेषताको कोई नहीं समझसकता।

दमयंती—आपने विशेष समझ ही लियाहै तो फिर क्या पूछतीहो ?।

मालिका—सौख्यप्रदं भवेन्मुग्धे सर्वं स्थाने नियोजितम्।
किंतु युक्ता स्वकीयेषु जनेषु कुसृतिर्मुधा॥ १५॥

दमयंती—मालिके! क्या आज आप मुझे कपटिनी बताने लगीं ?
कृता दैवेन मूढेन प्रभिन्ना तनुरावयोः।
तथापि त्वं मम प्राणाः का पुनः कुसृतिस्त्वयि॥ १६॥

मालिका—अहो वैषम्य, सौहार्द तो यह कि प्राण समझतीहो, निठुराई यह कि एक बात भी पूछी नहीं बतातीहो।

दमयंती—सखि! तुमसे कपट ?।

मदनिका—यदि मुझसे कपट हो तो मैं चली जाऊं ?।

दमयंती—हाय रे दैव!
चित चाहत है मौन धरि इकली बैठों जाय।
तू कछु शंका और करि मन माने तस गाय॥ १७॥

मालिका—सखि! क्यों इतना मान दिखाती हो ?।

दमयंती—अच्छा मैं मान नहीं दिखाती किंतु पूछनेसे भी क्या बनेगा?।

मालिका—जो बनेगा देखा जायगा, और यदि बतानेसे नहीं बनेगा तो कहो छिपानेसे भी क्या बनेगा ?।

मदनिका—(दमयंतीसे) यदि बताओगी तो सब कुछ बनेगा।

दमयंती—सखि! छोडो इस झगडेको।

मालिका मदनिका—झगडा तो विना बताये न छूटेगा।

दमयंती—न जाने आज तुम दोनों कौनसी हठकी पुस्तक पढकर आईहो।

---

१५ सौख्येति, हे मुग्धे! सभी बात उचित स्थानपर सुखप्रद होती है। अपने जनोंसे कपट करना उचित नहीं अत एव सुखप्रद नहीं होता॥

१६ कृतेति, हे सखि! दैवने मूढतासे तुमारी और मेरी देहको भिन्न भिन्न बनादियाहै तथापि तुम मेरी प्राण हो फिर तुमसे कपट कैसा ?॥

मालिका–अयि प्यारी ! ज्यों ज्यों विलंब करती हो त्यों त्यों मन अकुलाताहै ।

दमयंती–सखि ! (लज्जासे मुख नीचा करतीहै)

मालिका–कहिये कहिये, किससे लजातीहैं ? ।

दमयंती–सखि ! मेरा ऐसा सौभाग्य ही कहां जो लज्जाको निबाह सकूं । (अश्रु भरकर)

दमयन्त्या अयं देहो दुःखभोगाय केवलम् ।
तत् किं हृद्गतं पृष्ट्वा हास्यपात्रं करोषि माम् ॥ १८ ॥

मालिका–अयि मुग्धे ! यहां द्वितीय ही कौन है जिसकी आप हास्यपात्र बनोगी ।

गोपयिता रुक् तु भृशं क्षिणोति
विलज्जसे धार्ष्ट्यनिकेतने किम् ।
निशां समालभ्य चकास्ति किं नो
कलावतः कान्तिरपत्रपं सा ॥ १९ ॥

दमयंती–तुमसे न कहूंगी तो और किससे कहूंगी ? ।

मालिका–(दमयंतीके तनुपर रोमांच देखकर)

प्रकम्पितां कण्टकितां तनुं ते
भङ्गं गिरां क्षीणतरां च कान्तिम् ।
चेतो मदीयं समवेक्ष्य मुग्धे
चिन्तासृतौ त्वाऽनुकरोति मन्ये ॥ २० ॥

---

१८ दमयंत्येति, सखि ! दमयंतीका तो यह देह केवल दुःखभोगकेही लियेहै फिर हृदयकी बात पूछकर क्यों मुझे हास्यपात्र बनातीहो ? ॥

१९ गोपायितेति, रोग छिपाया हुआ औरभी अधिक दुःख देताहै, तुम निःसंकोचताकी जगामें व्यर्थ लज्जा करती हो, क्या रात्रिके साथ चंद्रमाकी चांदनी अधिकतर प्रकाशित नहीं होती ? अर्थात् यथा चांदनी रात्रिसे नहीं लजाती तथा तुमको मुझसे लजाना नहीं चाहिये ॥

२० प्रकम्पितामिति, हे सखि ! तुमारी कंपित तथा रोमांचित तनुको वाणीके भंग (गद्गदस्वर) को और कांतिकी क्षीणताको देखकर मेरा चित्त जो चिंतामें निमग्न है वह मानो तुम्हारा अनुकरण करता है क्योंकि तुमभी चिंताग्रस्त हो इधर मेरा चित्तभी चिंताग्रस्त है ॥

दमयंती–अच्छा कहतीहूं, किंतु मेरी लाज रखनी, किसी औरसे न कहदेना ।

दोनों–प्यारी ! क्या बातें करती हो, निःशंक होकर कहो ।

दमयंती–(मनमें) अरे मन ! इन दोनोंसे क्या लज्जा, और इनको कहे विना उस प्यारेकी प्राप्तिका उपाय भी क्योंकर बनेगा ? (प्रकट) सखि ! कल्ह दिनमें तो उस हंसने वह कथा सुनाई, रात्रिको तुम्हारे जानेके अनंतर मैं सो गई तब एक प्रहररात्रि शेष रहनेपर मैंने स्वप्नमें एक नवराजकुमारको देखा ।

दोनों–फिर ? ।

दमयंती–फिर क्या सखि !

> **मलिम्लुचोऽनर्घमवेक्ष्य रत्नं**
> **हरेद् यथा पुष्परसं द्विरेफः ।**
> **तथैव यूना प्रसभं नृपेण**
> **प्रचोरितं तद् हृदयं मदीयम् ॥ २१ ॥**

मालिका–तुमने उसे कहां देखा ? ।

दमयंती–मानो मैं एक उपवनमें खडी थी इतनेमें भ्रमरगुंजार सुना देखा तो जैसे मूर्तिमान् कंदर्प हो वैसा एक नवकिशोर सन्मुख खडाहै ।

मालिका–फिर ? ।

दमयंती–फिर सखि ! सितस्मितसे दशोंदिशोंको धवलित करताहुआ कमलव्यजनसे निजसौरभासक्तमधुकरनिकरको हटाताहुआ निर्निमेषनलिनदलनयनोंसे निरखताहुआ स्वकीय पदक्रमसे गजेंद्रगतिको पराजित करताहुआ कमनीयनिजकपोलयुगलसे मुकुरकांतिको तिरस्कृत करताहुआ मेरी ओर झुका ।

मालिका–फिर ? ।

दमयंती–फिर क्या मैं उसी क्षण दूर हट गई ।

मालिका–क्यों दूर हट गई ? ।

---

२१ मलीति, जैसे अमूल्य रत्नको चोर झट चुरालेताहै और जैसे भ्रमर मकरंदको हरलेताहै वैसे उस कुमारनरेशने मेरे हृदयको चुरालिया ॥

दमयंती–दूर न हटती तो क्या करती ? सखि !

रक्षा तनूनां कुलबालिकाभिः
कार्याऽवधानेन कुलानुसंस्थम् ।
यदेति चेतो लघुतां वशः कः
करेऽपि भर्तुर्न चलं द्युपत्रम् ॥ २२ ॥

मालिका–अच्छा फिर ? ।

दमयंती–फिर जब लौटकर देखा तो कुछ भी नहीं, तब तो निद्राही टूट गई ।

मालिका–फिर ? ।

दमयंती–फिर क्या सखि !

वित्तापहारशुगऽमर्षविहीनसत्त्व-
श्चिन्ताहतश्च विनिभाति यथा दरिद्रः ।
एवं मनोनलिनवद्विकचं यदासी-
न्नाराचविद्धमिव शून्यदिशं तदास्ते ॥ २३ ॥

मालिका–सखि ! क्या कहीं स्वप्नके पदार्थोंपर भी रति कीजातीहै ? ।

दमयंती–मैंने तो प्रथम ही कहाथा कि तुम हँसोगी ।

मालिका–हास्ययोग्य वार्तापर हँसें न तो क्या करें ? ।

मन प्रेमके दाम बँध्यो तुमरो कछु नाहिंनै आलि विलोकती है
सुपने माधि देख सुरूपके सागर छाकिगई पीरूप रती है ।
तनकी गति लाज गली दउ भूलि मनों मनकौं नहिं रोकतीहै
सुन मानि लै मेरो कह्यो इन बातनि पगहूं पग माइ हती है ॥२४॥

---

२२ रक्षेति, बालिकाओंको निज कुल नुरूप अपने शरीरकी सावधानतासे रक्षा करनी चाहिये अर्थात् पुरुषस्पर्शसे बचानाचाहिये उसपरभी मेरा चित्त जो स्वप्न देखकर लघु (चंचल) होगयाहै इसमें मेरा कुछ वश नहीं, यथा गुडी उडानेवालेके हाथमेंभी रहकर आकाशमें चंचल होतीहै एवं मैं पिताके आधीन होकरभी जो तरल होगई इसमें मेरा कुछ दोष तथा वश नहीं ॥

२३ वित्तेति, यथा किसी निर्धनको बहुतसा धन मिले फिर वह खोजाय तो उस धनहानिके शोक तथा क्रोधसे सत्त्वहीन होकर चितामें मग्न हुआ हुआ जैसे प्रतीत होता है वैसेही मेरा यह मन जो प्रथम कमलसा प्रफुल्लित था वह बाणविद्धवत् उदासीन होरहाहै ॥

दमयंती–

दृग माधुरी मूरति देखी जबै तबतौं अकुलान हिये तन चैन न ।
सुनि माधुरे बोल बिहाल भई सखि चाहत कान सुनै उनि बैनन ॥
नहिं भावै कछु सगरे जगमें सुन रावरे रूप विना इन नैनन ।
समुझाय रही इह मानैं नहीं हिय ह्वां अटक्यो ज्युं बँध्यो उन्हि सैनन२५

मालिका–आपको अपने हृदयको समझाना चाहिये कुछ बडी बात नहीं ।

दमयंती–प्रेम बाण जिस मन लगै तिस कछु सूझत नाहिं ।
नीति कुशल निज रीतिसौं विरमसुमति समझाहिं ॥२६॥

मालिका–मदनिके ! सुनती हो ? (दमयंतीसे) सखि ! कैसा बाण कौनसा बाण क्या बातें करतीहो, ऐसे अनेक स्वप्न आयाकरतेहैं । कहां यह क्षुद्रजनक्षुण्णमार्ग कहां तुम्हारा चंद्रकिरणसा उज्ज्वल कुल और यश, आपका ऐसा शील ऐसी विद्या ऐसा धैर्य जिनके कारण आज आप विदर्भललनानिकरनिटलकी मुकुटमणि बन रही हैं इस प्रतिष्ठाको धूलमें क्यों मिलातीहो ? ।

दमयंती–मालिके ! स्वप्नपर ही यह बात नहीं ।

मालिका–तो ? ।

दमयंती–क्या आपको उस हंसका संदेश भूल गया ? ।

मालिका–क्या आपने स्वप्नमें भी महाराज नलको ही देखाहै ? ।

दमयंती–मैं यह निश्चित तो नहीं कहसकती किंतु–

पतिव्रताधर्मधुरन्धरं मे
सांवेशिके सक्तमिदं हि चित्तम् ।
मन्ये मयाऽतो नल एव दृष्टो
वाच्यो गिरां यः खलु हंसराजः ॥ २७ ॥

मालिका–यह तो उचित कहती हो किंतु इसका निश्चय कैसे हो ? ।

---

२७ पतीति, सखि ! पतिव्रताधर्मयुत मेरा चित्त जो स्वप्नदृष्ट राजकुमारमें आसक्त है इससे मैं जानतीहूं कि हंसने जिस नलका संदेश दिया था वही नल मैंने स्वप्नमें देखाहै । अर्थात् यदि स्वप्नमें मैंने नलको न देखा होता तो स्वप्नदृष्टमें मेरा चित्त आसक्त न होता क्यों कि मै तो नलको वरचुकीहूं ॥

दमयंती–मैं क्या बताऊं? सखि! मुझे तो कुछ सूझता नहीं।

नाहिं भावै कछू अब वा पियके विन बैनहू बोलिबेमें रुचि नाहिं रहाई।
सखि गान सुहाय न ना गलमाल न भूषण ना अंगना घरबार सुहाई॥
इक टेक लगी हिय रावरेकी सखि ऐसी मनौं चहुं ओर अँधार महाई।
हग देखि सुहावनी मूरतिको तज काज सभै सगरी मन लाज बहाई२८॥

मदनिका–सखि मालिके! इनसे स्वप्नदृष्ट व्यक्तिका चित्र लिखाओ।

मालिका–चित्र लिखानेसे क्या तुम जानसकोगी कि यह अमुक राजकुमारका चित्र है?।

मदनिका–यह तो कठिन है।

मालिका–हां ऐसे करो कि चित्रकारके यहांसे सभ चित्र उठालाओ तब कदाचित् कुछ पता लगजाय तो लगजाय।

मदनिका–वाह वाह अच्छा सोचा मैं चित्रकारके घर जाती हूं (जातीहै) (दमयंती अश्रु भरकर मुख नीचा करतीहै)।

मालिका–(दमयंतीके कंठमें भुजा देकर हाथसे चिबुक उठाकर) क्या प्यारी! उदास होतीहो? (आंचलसे दमयंतीके अश्रु पोंछतीहै)

दमयंती–मैं विशेष इससे उदास होतीहूं कि मुझ मंदभाग्याकेलिये तुम्हेंभी दुःख उठाना पड़गया।

मालिका–सखि! हमारी तो कुछ बात नहीं, हां यह अवश्य कष्टकी बात है कि तुम इस प्रेमके रोगमें फँस गई जिससे तुम्हारा मुख भी म्लान होगया।

जिन इन नैनानि लगन लगै।
बँधे प्रेमकी डोरनि सजनी निसि दिन रहैं जगै।
करनि अकरनि कछू ना सूझैं रावरे रूप पगै॥
जित देखैं उत प्रीतम दीखै रूप ठगौरि ठगै।
लोकलाज मर्यादा तोडैं प्रीतम रँग रँगै॥ २९॥

दमयंती–(मनमें) मदनिका अबतक नहीं आई। ऐसे मेरे भाग्य कहां जो चित्र मिलें।

(एक स्त्री मंजूषा लिये आतीहै)

मंजूषावाली–राजकुमारीकी जय।

मालिका-क्या है ?।

मंजूषावाली-मदनिकाने यह मंजूषा भेजीहै।

मालिका-रखदो (रखतीहै) मदनिका कहां रही ?।

मंजूषावाली-पीछे आतीहै। मुझे आज्ञा है ?।

मालिका-हां (प्रणाम करके मंजूषावाली जातीहै। मदनिका आतीहै)

मालिका-(मंजूषाको बंद देखकर) मदनिके! ताला खोलो।

मदनिका-बहुत अच्छा। (ताला खोलकर चित्र दिखातीहै)

मालिका-(दमयंतीसे) सखि! क्या कोई रुचिकर है ?।

दमयंती-' अग्रे अग्रे ब्राह्मणः '।

मदनिका-यह देखो अयोध्यानरेशका चित्र है, यह उनके कुमारका चित्र है।

दमयंती-यह नहीं।

मालिका-यह देखो काशीनरेशका चित्र है।

दमयंती-यह भी नहीं।

मदनिका-यह देखो उज्जयनके राजकुमारका चित्र है।

दमयंती-यह भी नहीं। (मनमें) मेरे ऐसे भाग्य कहां जो उस प्यारेका चित्र निकले। (एवं बहुतसे चित्र देखनेके अनंतर)

मालिका-यह देखो मानो साक्षात् कुसुमशर ही है। (दमयंती चित्र देखतेही सिर झुकातीहै) क्या सखि यह उसीका चित्र है ?।

दमयंती-हूं।

मदनिका-मालिके देखो तो यह किसका चित्र है।

मालिका-(चित्र उलटकर पीछे लिखा श्लोक पढतीहै)

यत्कीर्तिः सिन्धुशुक्त्यन्तर्गता मुक्तात्वमिष्यति।
स एष लिखितः श्रीमान् वीरसेनसुतो नलः॥ १०॥

मदनिका-सखि! बधाई।

---

१० यदिति, जिस नलकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण सागरीय सीपमें जाकर मानों मुक्तारूपेण परिणत होगईहै वह नल यहां लिखा है॥

मालिका–क्यों न हो–

सङ्गतिः सदृशानां हि क्रियते विधिना सदा ।
निम्बं गच्छति काकोलः कोकिलः सहकारकम् ॥ ३१ ॥

मदनिका–सखि ! यह तो निश्चय होगया कि हंसवचनकी वाच्य तथा स्वप्नमें दृष्ट यही मूर्ति है । अब कुछ उपाय सोचो ।

मालिका–सखि ! यह कार्य कुछ कठिन नहीं मैंने अपने पितृपादोंसे सुनाहै कि महाराज स्वयंवरकी तयारीमें हैं, और स्वयंवरका निमंत्रणपत्र महाराजनलको भी जायगा ही, आशा है वे स्वयंवरमें पधारेंगे भी तथापि मैं जाकर और भी अपनी ओरसे स्वयंवर शीघ्र होनेकेलिये पितृचरणोंको प्रेरणा करतीहूं, और महाराजनलके समीप जो कोई निमंत्रणपत्र लेकर जायगा उसके साथके किसी पुरुषको कुछ समझाऊंगी जो महाराजनल का भी हृदय इस ओर अनुरक्त हो । और भर्तृदारिकाको संदेश देनेवाले हंसने यहांसे जाकर महाराजनलसे भी तो कुछ न कुछ कहा ही होगा ।

मदनिका–बहुत अच्छा सोचा, आप सब करसकतीहैं ।

कर्तुमिच्छन्ति यत्कार्यं त्वद्विधा निपुणा जनाः ।
सीमतोऽधिकरूपेण तत्सर्वं खलु सिद्ध्यति ॥ ३२ ॥

मालिका–(कानमें) मदनिके ! तुम भर्तृदारिकाका एक चित्र लिखकर आज ही मुझे दो ।

मदनिका–(मालिकाके कानमें) जो आज्ञा, चित्रको क्या करोगी ? ।

मालिका–(धीरेसे) इससे तुम्हें क्या, देखो तो क्या होताहै ।

(प्रतीहारी आतीहै)

प्रतिहारी–जयतु भर्तृदारिका, भर्तृदारिके ! श्रीमहारानी आपको देखना चाहतीहैं ।

दमयंती–चलो । (जाना चाहतीहै)

---

३१ संगेति, विधाता सदृशोंका ही संग बनाताहै यथा काक निंबपर बैठताहै कोयल आम्रपर बैठतीहै । अर्थात् तुम्हारा हृदय नलमें जो अनुरक्त हुआ यह उचित ही है ।

३२ कर्तुमिति, तुमारेसे चतुर लोग जिस कामको करना चाहतेहैं वह काम संभावनासे भी अधिकरूपसे सिद्ध होताहै ॥ इति ॥

मालिका–(दमयंतीसे) सखि ! मैं भी जाताहूं ।

दमयंती–माताके पास होकर जाना !

मालिका–अच्छा चली । (सब जातीहैं)

इति अनर्घनलनाटकका प्रथमांक समाप्त हुआ ।

अथ

द्वितीयांक ।

(छोटीसी बगियाकी तिबारीमें बैठा एक युवा धीरेधीरे सितार बजाताहै)

युवा–अहा यह प्रातःकाल कैसा रमणीय समय है, मंद सुगंध शीतल समीर चलरहीहै, कमलनियांके मुख प्रियदिवाकरको देख प्रफुल्लित होरहेहैं, भ्रमर अपने गुंजारसे मानो रतिक्रीडाश्रांत सुप्त स्मरको जगारहेहैं ।

नक्तं वल्लभविप्रलम्भवशतः संप्राप्य कामव्यथां
प्रातर्लब्धवती प्रियं निधुवने कोकाङ्गना चुम्बति ।
बालो व्योमगतो विकर्तन इति ज्ञात्वा नलिन्या रसः
क्रीडासक्तविलोलमत्तमधुपैः सांगविर्णलुण्ठ्यते ॥ १ ॥

(नेपथ्यमें)

सखे वाह वाह (श्लोक पढताहुआ एक युवा आताहै)

द्वितीय–भास्वान् रक्त उदेति रक्तहृदयां श्रुत्वा द्विरेफे प्रियां
चद्गद्गशब्दमुखेन कोरकवरैः कष्टं तदाऽऽन्यते ।
अस्तं याति समस्ततारकपतिर्द्रष्टुं न शक्नोति यत्
मित्रप्रेमवधूं मधुव्रतविटैः क्रीडापरां पद्मिनीम् ॥ २ ॥

---

१ नक्तमिति, रात्रिमें प्यारेके वियोगसे कामदुःख भोगकर प्रातः प्यारेको प्राप्त होकर सुरतव्यापारमें चकवेकी पत्नी चकवेका चुंबन करतीहै । रात्रिमें चकवा चकवी बिछुडजातेहैं यह कविसंप्रदाय है । और सूर्य प्रातःकालमें बालक है और बहुत दूर है यह जान सूर्यकी प्रिया कमलिनीके रसको गुंगुंकरते हुए भ्रमर लूटतेहैं ॥

२ भास्वानिति, प्रातः सूर्य जो रक्त होकर उदय होरहाहै वह मानो अपनी प्रिया कमलिनीको भ्रमररूपी जारके साथ आसक्त सुनकर ही रक्त उदयहोरहाहै । प्रातः जो

प्रथम–वाह वाह प्यारे आओ एक और नूतन बात सुनाऊं।

द्वितीय–सुनाओ।

प्रथम–विदर्भदेशसे मदननामका एक अत्युत्तम गायक आयाहै।

द्वितीय–कहां है ?।

प्रथम–अपने महाराजनलकी सेवामें गयाहै।

द्वितीय–आशा है कि राजभवनमें उसका गाना हो।

प्रथम–होना तो चाहिये किन्तु महाराजनल कछ दिनोंसे उदाससे रहतेहैं सुनाहै कि राजकार्यको भी बहुत अल्प देखतेहैं इससे कुछ संदेह होताहै।

द्वितीय–चलो तो सखे अपने भी चलें राजभवनमें गाना होगा तो जैसे कैसे सुनेंगे नहीं तो मदनके डेरे पर ही चलकर सुनेंगे।

प्रथम–जैसे तुमारी इच्छा। (दोनों जातेहैं)

॥ इति विष्कंभक ॥

(राजभवनमें एकले नल उदाससे बैठेहैं)

नल–जबसे उस हंसने दमयंतीकी बात सुनाईहै और यह स्वप्न देखाहै तबसे किसीओर भी चित्त नहीं लगता क्या आर्यसालंकायन मेरे इस भावको समझ तो नहीं गये ?। हे मन जब तू इस लघुतापर आरूढ है तो अमात्य सालंकायन क्या मूढ भी तेरे इस भावको समझ जाएंगे। क्या करूं–

योषां शुभ्रनिवीतसंवृततनूं मुक्तास्रजा शोभितां
ज्योत्स्नाजालनिचोलक्षालिततरां रम्यामिवेन्दोः कलाम्।
संवेशे समवेक्ष्यशून्यभुवनं चेतो मदीयं स्थितं
किं वा रूपसुधाधितो धृतमति प्राप्तं तदीयान्तिके ॥ ३ ॥

कली चटकरहीहैं वह भी उक्तवृत्तांतके कष्टको मानो सूचन करतीहैं। प्रातः चंद्रमा जो अस्त होरहाहै वह भी मानो मित्र=सूर्यकी प्रेमवधू जो कमलिनी उसको भ्रमरके साथ क्रीडा करतीको नहीं देखसकता इसीसे अस्ताचलको जारहाहै। उक्त दोनों पद्य प्रातःकालवर्णनके हैं॥

३ योषामिति, चंद्रिकासे यथा चंद्रमाकी कला आच्छादित होती है तथा सफेद दुपट्टेसे आच्छादित (सफेद दुपट्टा ओढेहुई) मुक्तामालासे शोभायमान स्त्रीको स्वप्नमें

अहो कामकी अनालोचितकारिता-

वेदार्थभावनापूतं शास्त्रालोचनसंस्कृतम् ।
सर्वतो विमुखीकृत्य येन चित्तं नियन्त्रितम् ॥ ४ ॥

विदूषक-(आकर) भो वयस्य (मनमें) आज तो कुछ उत्तर ही नहीं मिलता (फिर प्रकट) भो वयस्य ।

नल-कुछ बात भी ? ।

विदूषक-उदास मत होइए भोजन बनरहाहै । हम तो जातेहैं दूध भात सिखरन उडातेहैं ।

नल-अच्छा (विदूषक जाताहै) क्या जिस विदर्भसुंदरीका हंसने वृत्तांत सुनायाथा उसीको तो मैंने स्वप्नमें नहीं देखा ? ।

लज्जामुग्धविलोकनैरवयवैः प्रत्यग्रसान्द्रैः शुभैः
किंचिल्लोलपदक्रमैर्मुखरुचा मुक्ताच्छविस्वच्छया ।
कर्पूरप्रतिमेव मानसभुवो जीवातुरब्जानना
मन्ये सैव नवीनयौवनवती स्वप्नेपि दृष्टा मया ॥ ५ ॥

क्या फिर भी कभी इन तृषितविलोचनोंको वह रूपसुधा प्राप्त होगी ? । हाय आज मन ऐसा मूढ होगया कि जिन स्वाप्निकपदार्थोंका जलबुद्बुदसमान भी प्रमाण नहीं उनकी अभिलाषा करताहै, कामबाणोंसे विद्ध कुछ भी नहीं सोचता हाय-

---

देखकर मेरा चित्त तन्मय होकर और सभओरसे ऐसा उदास होगयाहै मानो मेरा चित्त है ही नहीं किंवा रूपसुधाके पानकेलिये स्वप्नदृष्टप्यारीके पास पहुंचगयाहै । उत्प्रेक्षालंकार है । यहां मुखसंधिका विलोभननामक अंग है “ गुणाख्यानं विलोभनम् ” इति ॥

४ वेदार्थेति, वेदार्थभावनासे पवित्र और शास्त्रविचारसे संस्कृत मेरा मन कामने सभओरसे विमुख करके एक उस प्यारीमें नियंत्रित करदियाहै । यहां विधाननामक अंग है ॥

५ लज्जेति, उसका अवलोकन लज्जासे सुंदर था उसके अंग कठोर और नवीन थे उसकी चाल चंचल थी मुखकी कांति मोतीजैसी थी वह स्वयं कपूरकी मानो मूर्ति थी और कामको संजीवन करनेवाली थी इन हेतुओंसे प्रतीत होताहै कि सैव नाम जिसकी कथा हंसने सुनाईथी उसीको मैंने स्वप्नमें देखाहै । यहांभी विलोभन अंग है ॥

अन्यत्रासक्तवृत्तीदमलभ्यैकार्थदोहदम् ।
स्रस्तधैर्यं मदीयं हृदौचित्यं नावलोकते ॥ ६ ॥

अहो विधाताका मात्सर्य जो निद्रा भी उसी समय टूटगई यदि कुछ काल निद्रा और रहती तो मैं उसके मुखेंदुका दर्शनामृत कुछ तो और पान करता । अथवा–

मनोनुकूलं रमणीयताप्रियं
न लभ्यते प्राक्तनकर्मदोषतः ।
कदापि लब्धं यदि यात्यऽदृश्यतां
सुधाघटीवोरगवश्यतां गता ॥ ७ ॥

हाय इस स्वप्नको देख मेरा वह धैर्य नामसे भी नष्ट होगया, वह शास्त्रपर्यालोचन वह वृद्धसमागम इस समय कुछ भी काम नहीं देत । हे नल तैंने उस इंद्रियविषयवैमुख्याभिमानका फल देखा ? अहो भगवान्‌की दर्पहंतृता–

विदूष्य चित्तं समयदोषतस्तत-
स्तनोति यत्स्वात्मनि दर्पहन्तृताम् ।
स्वनाममाहात्म्यविकासनं प्रभो
रिदं हि, किं मृष्यति कोऽप्यपावृतः ॥ ८ ॥

हाय हाय हृदय फिर फिर उसीओर जाताहै उसी प्यारीके दर्शनके मनोरथ करताहै । अरे मूढ मन क्यों वृथा मनोरथसोपानपर आरोहण

---

६ अन्यत्रेति, अन्यत्र उस प्यारीमें आसक्त है वृत्ति जिसकी अलभ्यपदार्थविषयक मनोरथ है जिसका और टूटगयाहै धैर्य जिसका ऐसा मेरा मन औचित्यकी ओर ध्यान नहीं देता ॥

७ मन इति, प्रथम तो मनके अनुकूल तथा सुंदर पदार्थ प्रारब्धदोषसे प्राप्त ही नहीं होता यदि कदाचित् प्राप्त भी होताहै तो वह खोजाताहै यथा सर्पोंको प्राप्त हुआ अमृतकलश खोगया ॥

८ विदूष्येति, भगवान् पहिले अभिमान देतेहैं फिर उसको तोड भी देतेहैं इससे मानों भगवान् अपने " दर्पहा दर्पदो दृप्तः " इस नामकी महिमाको प्रकट करतेहैं । और स्वतंत्र कोई भी अभिमानको सहा नहीं करता । अर्थात् नल कहतेहैं कि मुझे स्त्रीपराङ्मुखताका जो अभिमान था उसे भगवान्‌ने तोडदिया ॥

करताहै जिसके कुलगोत्रनामादि कुछ भी विदित नहीं उसकी प्राप्त्याशा क्या ?। किंतु यदि दैव अनुकूल हो तो उसका प्राप्त होना असंभव भी नहीं। यथा-

क्व वैकुण्ठः क्व विन्धुश्च क्व मुकुन्दः क्व सिन्धुजा।
तयोस्तथापि संजातः संगमः सिन्धुमन्थने॥ ९॥

अहो बडा आश्चर्य है-

रूपउजागर नागर ओर चहूं मनु चंद्रकलासम दीखतीहै।
हाय तऊ इन नैनचकोरनकी नहिं गोचरताइ बिलोडतीहै॥
बैठिरही हियमाहँ छिपीसि तऊ भुजबंधनबाच न आवतीहै।
जानिपरै न किधौं विधिमौं इह नीति अनोखि पढी मनभाँवतीहै १०

विदूषक (आकर) भो वयस्य क्या घुनघुनारहेहो।

नल-तुम तो भोजन करनेगएथे कैसे लौटआए ?।

विदूषक-भूख नहीं रही।

नल-भूखको क्या हुआ ?।

विदूषक-यहांसे जाते समय आपके रसोईघरके पाससे जो निकला तो लड्डुओंकी सुगंध आई और सुना भी कि आज लड्डू बनतेहैं इससे भूख उडगई।

नल-तो क्या आज व्रत करेगा ?।

विदूषक-हां लड्डुओंका।

नल-हमारे यहां तो रसोई होनेमें अभी बहुत विलंब है।

विदूषक-कभी तो तयार होगी।

नल-तबतक तू भूखका मार जीतारहेगा ?।

विदूषक-भला वसंतक तो चाहे जीए चाहे मरे कुछ बात नहीं, आप अपनी तो कहिए आपका दिनोदिन क्या डौल होताजाताहे ?।

नल-क्या डौल ?।

---

९ क्वेति, कहां वैकुंठ कहां सागर, कहां नारायण और कहां सिंधुकन्या तथापि उन दोनोंका क्षीरसागरमथनके समय समागम होगया। एवं भगवदनुग्रहसे मुझे भी दमयंती प्राप्त होसकतीहै॥

विदूषक–मुख पीला पडगयाहै, सूखकर लकडीसे हुएजातेहो ? ।

नल–तुमको इस बातसे क्या ? ।

विदूषक–आपको हमारी चिंता चाहे नहो हमको तो आपकी बातबातकी चिंता रहतीहै, हमारेसे ही पुरुषोंकेलिए तो शांसतरने कहाहै कि " अङ्गीकृतं सुकृतनः परिपालयन्तिः " ।

नल–आपकी क्या बात है ।

विदूषक–और नहीं तो ऐसे ही, यदि एक दिन वसंतक न आए तो आप भी और सालंकायन भी (वजीर) मुँह ताकते ही रहजाएं ।

नल–इसमें क्या संदेह है ? ।

विदूषक–अच्छा यह तो हुआ, अब हृदयकी बात बताओ जिससे पीले पडगएहो, यदि कपट ही रखनाहै तो यह लो प्रेमके तिनखे तोडतेहैं ।

नल–पूछकर क्या करोगे ।

विदूषक–जो कहोगे सो करेंगे, और तो क्या कहो पृथ्वीको फोड़डालें, कहो आकाशमें छेद करें, कहो चांदको तोडलाएं ? ।

नल–(मनमें) क्या उस मुखचंद्रका फिर भी दर्शन होगा ।

विदूषक–सोचते क्या हो जो मनमें है सो झट कहो, करें । (कुछ ध्यान करके) अच्छा कहो न कहो हमने आप ही आपके हृदयकी बात जानली ।

नल–क्या जानली ।

विदूषक–सच्ची बात बुरी लगाकरतीहै सो बुरा न मानों तो कहदें ।

नल–कहो कहो ।

विदूषक–उस दिन जो उस हंसने उस भीमसुताका वृत्तांत कहाथा है स्मरण ? उसीसे आपकी यह दशा हुईहै ।

नल–तुमसे क्या छिपानाहै है तो ऐसेही किंतु उससे पीछे मैने एक स्वप्न देखाहै उससे हृदय बहुत अधीर होगयाहै ।

---

१ विदूषकके संभाषणमें जानबूझकर कहीं कहीं अशुद्धि रखदीहै क्योंकि विदूषक प्रायः अल्पविद्यावाला ही होताहै । और विदूषकका नाम वसंतक है इसका आगे ध्यान रहे ।

विदूषक–स्वप्नमें और क्या देखाहै ? ।

नल– दृष्टा मया नवा नितम्बिनी ।
नक्तं रहो रतेर्विडम्बिनी ॥
शनैः शनैः पदक्रमेण हंसगामिनी ।
सुकौमुदीव तप्तनेत्रमोददायिनी ॥
वने प्रसूनसंचयं करैर्विचिन्वती ।
इतस्ततो मृगीव मञ्जुनेत्रपातिनी ॥
कलानिधेः करैः समं स्मितं विमुञ्चती ।
मदीयचारुचित्तपद्मसद्मवासिनी ॥ ११ ॥

विदूषक–मिलेगी मिलेगी मिलेगी (ताल देकर) अहा हा हा ।

नल–छीः मूर्ख, विना बकनेके और काम ही नहीं क्या इसी हल्ले करनेको पूछताथा ।

विदूषक–अच्छा यह तो कहो कि ऐसी सुंदरी कहां देखी ? ।

नल–मूर्ख कहा तो स्वप्नमें ।

विदूषक–अच्छा तो मेरी भी एक विनती सनलो माननी चाहे न माननी स्वप्नके पदार्थपर स्वप्नमें ही प्रीति करनी चाहिए इससे अब इस बातका ध्यान छोडदो ।

नल–सखे–

चोरिकै एकनिरंतरछनसों मन जाय दुरी उह कुंजनमें ।
बावरी वैरि भई अँखिआँ लखि डूबरही जलपुंजनमें ॥
देखनको चित चाव बढ्यौ नहिं धीर रहै अलिगुंजनमें ।
मानत नाहिं दियौ उरझ्यौ उहिं चीर फँस्यौ जिमि मुंजनमें १२

विदूषक–इस स्नेहमार्गपर पैर रखना अच्छी बात नहीं ।

---

११ दृष्टेति, रात स्वप्नमें रतिको भी तिरस्कृत करनेवाली मैंने एक नवीन स्त्री देखीहै, जो हंसके तुल्य मंद मंद चलतीथी और चंद्रिकाके सदृश तप्तनेत्रोंको सुख देतीथी, जो वनमें पुष्पोंको बीनतीथी और मृगीके तुल्य चकितसी इधर उधर देखतीथी, जो चंद्रिकासे स्मितको करतीथी और जो मेरे चित्तपद्मरूपी गृहमें वसगई ॥

रतेर्मार्गो मृदुर्दूरात् सुखदश्च विभाति यः ।
स एवारोहणाद्‌ मन्ये याति प्राणापहर्तृताम् ॥ १३ ॥

नल–सखे तुम यह सब ठीक कहतेहो किंतु क्या करूं–

रूप अनूपम मोय चहूं दिशिनमाधि दीखहीं ।
हरी हरी सब कोय जिमि वर्षाके अंधको ॥ १४ ॥

विदूषक–आपको ऐसे अधीर होना उचित नहीं ।

नल–सखे जिसके चोट लगतीहै वही जानाकरताहै ।

नेत्रत्रिभागीयविलोकनेन
निनीय कुत्रापि गतास्ति चेतः ।
ततोऽनु धैर्येण गतं तदैव,
मन्ये न धैर्यं सहतेऽभिलाषः ॥ १५ ॥

विदूषक–यह सब ठीक है तथापि आपको अपने धीरताके यशकी ओर ध्यान देना उचित है इन बातोंमें सुख नहीं निकलता ।

नल– शोच्यं मयेदं महदस्त्यसौ य-
न्मनो मदीयं बहु विक्षिपन्ती ।
हरत्यसौ धैर्यमहो तथागाद्‌
गन्धं यथा केतकजं समीरः ॥ १६ ॥

विदूषक–अब इस रसिकताको ढकलो चंद्रनिका आतीहै ।

---

१३ रतेरिति, प्रीतिका मार्ग दूरसे बहुत सुहावना प्रतीत होताहै किंतु उसपर चढनेसे वही प्राण लेनेवाला कठिन होजाताहै ॥

१५ नेत्रेति, नेत्रकटाक्षके विलोकनसे वह मेरे चित्तको चुरा ले गईहै चित्तके साथ हां मेरा धैर्य भी चलागया किंवा अभिलाषा धैर्यका सहन नहीं करती ॥

१६ शोच्यमिति, मुझे इस बातकी बडी शोच है कि वह मेरे मनको विक्षिप्त करतीहुई ऐसे मेरे धैर्यको दूर लजातीहै जैसे केओडेकी गंधको पवन दूर लेजाताहै, केओडेकी गंध समीपसे नहीं आती दूरसे आतीहै एवं धैर्य समीप नहीं रहा यह अभिप्राय है ॥

(प्रतिहारी चंदनिका आतीहै)

चंदनिका–(प्रणाम करके) श्रीमहाराज कुंडिनपुरसे स्वयंवरका निमंत्रणपत्र लेकर जो लोग आएहैं व पीछे लौटनेकी आज्ञा चाहतेहैं। और अमात्यप्रवर भी निवेदन करतेहैं कि इन्हें शीघ्र जानाहै इसलिए इनकी विदा होजानी चाहिए।

नल–मेरी ओरसे सालंकायनजी ही उनकी यथोचित विदा करदें।

चंदनिका–जो आज्ञा। (प्रणाम करके जातीहै)

विदूषक–मैं तो जानताहूं कि जिस विदर्भसुंदरीका वृत्तांत उस हंसने सुनायाथा उसीको आपने स्वप्नमें देखाहै ?।

नल–संभव है कि ऐसे ही हो

वस्तु चित्तानुकूलं यद् दृश्यते श्रूयतेपि वा।
बद्धवृत्तिर्जनस्तत्र तत्स्वप्नेप्यनुपश्यति ॥ १७ ॥

विदूषक–चंदनिका फिर आतीहै।

चंदनिका–(आकर) अमात्यप्रवर निवेदन करतेहैं कि कुंडिनपुर-वालोंके साथका एक पुरुष बहुत उत्तम गाताहै और वह श्रीमहाराजको गाना सुनाना भी चाहताहै इस हेतु श्रीमहाराजको उसका गाना सुनलेनाचाहिए।

नल–अच्छा, लिवालाओ।

चंदनिका–जो आज्ञा (जातीहै)

नल–यदेक्षिष्येहं तां कुचयुगभराऽऽनम्रवपुषीं
तदात्मानं मंस्ये पुनर्निषधराज्याभिकलितम्।
स्मरक्लान्तं स्वान्तं कुमुदवदने शीतय परं
प्रिये त्यक्त्वा किं मां व्रजसि सुहृदं दर्शय मुखम् ॥१८॥

विदूषक–भो वयस्य गवैयाराम आताहै।

---

१७ वस्त्विति, जो वस्तु देखने सुननेमें आतीहै वह यदि अनुकूल हो तो उसमें चित्त बद्ध होजानेके कारण पुरुष स्वप्नमें भी उसे देखताहै ॥

१८ यदेति, स्तनोंके भारसे झुके तनुवाली उस प्यारीको जब मैं देखूंगा तो मानूंगा कि मानों मैंने दूसरा निषधराज्य ही पाया। हे प्रिये ! कामवेदनासे मुझ दुःखितको शीतल करो और अपना मुख दिखाओ। मुझे छोड़कर क्यों जातीहो ॥

ये तो स्वयं वैदर्भी हैं।

मदन—श्रीमहाराज उनने साक्षात् सरस्वतीसे शिक्षा पाईहै।

विदूषक—क्या मदनजी तुम उनका चित्र भी लिख सकतेहो ?।

मदन—(मनमें) अवसर तो अच्छा मिलाहै (प्रकट) क्यों नहीं।

विदूषक—लिखो तो।

मदन—श्रीमहाराज देखना चाहें तो लिखदूंगा।

नल—(मनमें) क्या इस गायकके आगे भी अपनी लघुताके प्रकट करनेका समय प्राप्त हुआ (प्रकट मदनसे) तुम्हें कुछ आयास न हो तो भलें ही लिखो।

मदन—जो आज्ञा, मुझे चित्र लिखनेकी सामग्री मिलनी चाहिए और एकांतस्थान मिले जहां बैठकर लिखूं।

विदूषक—चलो (मदनको समीप ही एकांत स्थानपर ले जाताहै और चित्र लिखनेकी सामग्री देकर स्वयं लौट आताहै)

नल—मदन क्या कहताहोगा कि नलका भी हृदय तरलित है हाय प्रेमरोग कोईको न लगे।

जो विधिना विनती मम मनकर नेक सुनाय।
प्रेम निगोडो रोग इह काहूके न लगाय॥ २०॥

विदूषक—आप क्या सोचतेहैं ?।

नल—अपने हृदयकी लघुताको।

विदूषक—कन्याके चित्र लिखानेमें क्या दोष, आप पुरुष हैं स्त्री तो नहीं हैं, आपकी इस भीरुतासे तो प्रतीत होताहै कि आप स्वयंबरमें नेत्र मूंद बैठेंगे।

नल—चुप रहो मदन आताहै।

(मदन आकर मालिकाके दिए चित्रको अपना लिखा बताकर दिखाना चाहताहै)

विदूषक—(मदनसे) क्या हो चित्र लिखलिआ ?।

मदन—जी।

विदूषक—बडी फुरती की। (मदनके हाथसे चित्र लेकर नलको दिखाताहै)

नल—(इकटक चित्रको देखकर मनमें) यह तो वही मेरी प्राणप्रिया है जिसे मैंने स्वप्नमें देखाहै। (मदनसे) अत्यंत सुंदर है।

मदन–को नाम विलिखेच्चित्रे वैदर्भ्या रूपसंपदम्।
विधुकान्तिर्विधावेव नहि साऽन्यत्र लभ्यते ॥ २१ ॥

नल–(मनमें) कहो प्यारी अब कहां जाओगी ?। अहो इस चित्रके देखनेसे नयन शीतल हुएजातेहैं।

विदूषक–(नलसे) वयस्य क्या सोचतेहो ?।

नल–(विदूषकसे धीरेसे) सखे जिसे मैंने स्वप्नमें देखाहै उसीका यह चित्र है।

विदूषक–(धीरेसे) आपको बधाई बहुत ही सुंदरीसे प्रेम जुटा।

मदन–श्रीमहाराज अब चित्र मुझे मिलजानाचाहिए।

नल–यह चित्र तो नहीं मिलेगा।

मदन–क्यों ?।

नल– दातुं क्षमोऽहं निचयं धनस्य
ग्रामान् क्षमां सर्वमिदं च राज्यम्।
वाच्यं किमन्यत् त्वपि जीवमेतं
नचैव चित्रं करतः कदापि ॥ २२ ॥

मदन–श्रीमहाराज इन वस्तुओंमेंसे तो मुझे एक भी नहीं चाहिए।

नल–और जो चाहिए सो मांगो।

मदन–यदि मिले तो मांगूं।

नल–मदनजी–

उदयः स्यात्सहस्रांशोः पश्चिमायां तथापि तु।
वैरसेनिनलस्योक्तं न कदापि मुधा भवेत् ॥ २३ ॥

---

२१ को नामेति, यथा चंद्रमाकी कांति चंद्रमामें ही पाईजातीहै तथा दमयंतीकी रूपसंपदा दमयंतीमें ही है उसे चित्रमें कौन लिख सकताहै ?।

२२ दातुमिति, मैं धन देसकताहूं ग्राम देसकताहूं समग्र राज्यको भी देसकताहूं और तो क्या अपने जीवको भी देसकताहूं किंतु इस चित्रको लौटा नहीं सकता॥

२३ उदय इति, सूर्य चाहे पश्चिममें उदय हो परंतु मेरा कहा मिथ्या नहीं होसकता। यहां लोकोक्ति अलंकार है॥

मदन–इसमें क्या संदेह है।

पीयूषधारेव हिमांशुबिम्बतः श्रीकण्ठशीर्षादिव देवनिम्नगा।
सौरभ्यसंतान इवारविन्दतो वक्त्रादियं वागतिभाति चारु ते॥२४॥

नल–मांगो तो।

मदन–श्रीमहाराज इस चित्रका तो मूल्य यही है कि आप स्वयंवरमें अवश्य पधारें।

नल–मदनजी तुम लोगोंका यदि आग्रह है तो मैं अवश्य आऊंगा।

मदन–श्रीमहाराज अवश्य पधारें, हमारी तो यही आशा लगीहै–

मुक्ताफल विधिना रचे हंस करे उपभोग।
मणि कंचनके योगसम नलदमयंती योग॥ २५॥

विदूषक–मदनजी बात तो ऐसे ही है।

मदन–श्रीमहाराज अब मुझे आज्ञा दें हमलोग इसी समय पीछे लौट जाएंगे।

नल–हां अच्छा (नल मदन को पारितोषिक देतेहैं, मदन प्रणाम करके जाताहै)

विदूषक–वयस्य प्रथम तो आपके समीप उधरसे आनेवाले लोगोंने दमयंतीकी प्रशंसा की फिर हंसने वृत्तांत कहा फिर आपको स्वप्न आया फिर यह चित्र मिला यह तो अच्छा चक्कर बँधा, इससे यही जानपडताहै कि दमयंती आपकी होचुकी, हैं आप भाग्यवान्।

नल–(चित्रको देखतेहुए) अहो भगवान् चतुर्मुखका प्रावीण्य–

पाणिः पल्लव एव निर्जरतरोर्मुक्तास्रजाढ्यौ भुजौ
दृष्ट्वा नेत्रयुगं सरोवरजले लीनोऽरविन्दव्रजः।
राकाचन्द्रतुलाधृतं तु गुरुतां धत्ते मुखं सुभ्रुव-
श्चित्रं यन्निबिडं तमस्तदुपरि प्रावीण्यमेतद्विधेः॥ २६॥

---

२४ पीयूषेति, चंद्रमासे यथा सुधाधारा निकलती कमलसे यथा सुगंधि निकलती महादेवजीके शिरसे यथा गंगा निकलती शोभा देतीहै तथा आपके मुखसे निकलती यह वाणी शोभा देतीहै। यहां मालोपमा अलंकार है॥

२६ पाणिरिति, इसका हाथ तो कल्पवृक्षका पत्र ही है, भुजा मोतीकी लडीसेभी सुंदर हैं, इसके नेत्रको देखकर ही कमल जलमें डूबगए, पूर्णचंद्रमाकी ओर इसके

अहा-

तूणीरो मदनस्य जानु जघनं चक्रं शताङ्गस्य च

निम्ना नाभिरियं तिरश्च कुरुते मुग्धस्फुटं सारसम् ।

चाम्पेयी कलिका विलोक्य ललितां नासां विधूताऽलिभिः

श्रीकण्ठं शरणं गता विधुकला दृष्ट्वा द्युतिं नाखरीम् ॥ २७ ॥

अहो-

सौभाग्यं कनकस्य कृन्तति परं कान्तिस्तनोः काशिनी

किंचित्पीतपटं वरं तनु तनौ मग्नं न संलक्ष्यते ।

कण्ठे मौक्तिकदाम वामवदनाभाराय तत्केवलं

कर्पूरायत ईक्षणं नयनयोश्चित्रेपि तन्व्याश्चिरम् ॥ २८ ॥

अये कुसुमबाण-

एषाऽऽकृतिः क्षिपति मां कुतुकात्तमायां

चित्रार्पिता नयनयोर्हिमतां तनोति ।

उत्कण्ठितं तु विरहेण भृशं दुनोति

मन्ये मनः परिणतौ कुशलेयमारात् ॥ २९ ॥

मुखकी तुलना करनेसे इसका मुखही अधिक सुंदर ठहरताहै, उस चंद्रमुखपर भी जो अँधेरा लगरहाहै यह और भी आश्चर्यकी बात है। अँधेरा याने केश। प्रथमपादमें रूपक है। चतुर्थपादमें अतिशयोक्ति है ॥

२७ तूणीरेति, इसका जानु तो कामदेवका तूणीर (तीर रखनेका घर) ही है, इसका जघन रथका पहिया ही है, इसकी नाभि अर्धस्फुट कमलका भी तिरस्कृत करतीहै, इसकी नासाको ही देखकर मानो भ्रमरोने चंपककलीको त्याग दिया, इसकी नखकांतिको देखकर पराजित हुई ही मानो चंद्रकला महादेवजीके पास चलीगई। जघनको रथके पहिएकी उपमा दीजातीहै ॥

२८ सौभाग्यमिति, इसके तनुकी कांति सुवर्णकांतिको भी तिरस्कृत करतीहै, पीतपट जो इसने ओढाहै वह भी तनुमें समागयाहै पृथक् नहीं दीखता, इसके कंठमें जो मोतीमाला है वह केवल भार ही है अर्थात् यह स्वयं ही सुंदर है, इसका चित्रमें भी दर्शन नेत्रोंको ठंढा करताजाताहै ॥

२९ एषेति, यहही आकृति मुझे रातमें पीडित करतीहै चित्रमें लिखीहुई नेत्रोंमें ठंढक करतीहै और मुझ उत्कंठितको निरंतर दुःख देतीहै इससे प्रतीत होताहै कि दूरसे ही यह मनके अनेक प्रकारके परिणाम करनेमें बडी चतुर है। यहां मुखसंधिका विधाननामका अंग है " विधानं सुखदुःखकृत " इति ॥

कभी इस माधुरी मूर्तिके साक्षात् भी दर्शन होंगे ? मन तो चाहता-है कि यदि पक्ष लगजाएं तो अभी कुंडिनपुरको उडजाऊं। भीमराजने स्वयंवरका निमंत्रणपत्र भी भेजाहै तथापि बुद्धि बावरी यह भय दिखाती-है कि यदि भीमसुताने स्वयंवरमाला और किसी राजकुमारके कंठमें पहिरादी तो केवल निरादर ही हाथ लगेगा इस हेतु जानेसे चित्त रुकता भी है। इस समय क्या करनाचाहिए जाऊं अथवा न जाऊं यह कुछ हृदयपर निश्चित नहीं होता।

(इकाइक प्रकाश होताहै नारदजी आतेहैं)

विदूषक-(मनमें) लो भाई बाबाजी भी आगये।

नल-(झट उठकर सिर झुकाकर) भगवन् यह अनुचर नल श्रीपादपद्मोंपर अभिवादन करताहै।

नारदजी-धर्म और हरिभक्तिकी वृद्धि हो।

विदूषक-महाराजजी यह वसंतक भी डंडौत करताहै।

नारदजी-कल्याण हो।

नल-भगवन् विराजिए (नल अपनी गद्दीपर नारदजीको बिठातेहैं)

नारदजी-वत्स तुम भी बैठो।

नल-जो आज्ञा (नारदजीके पास गद्दीसे नीचे बैठतेहैं)

भवत्पादारविन्दस्य रजसः स्पर्शनान्मम।
पूतमद्य मुने सद्म दर्शनेन च लोचनम् ॥ ३० ॥

किंच भगवन्-

त्वद्विधेष्वत्यनीहेषु जगन्मङ्गलहेतुषु।
कुतोऽशं विष्णुभक्तेषु तथापि कुशलं त्वयि ? ॥ ३१ ॥

नारदजी-भगवदनुग्रहसे। तुम तो सकुशल हो ?।

---

३० भवदिति, आपके श्रीचरणकी रजसे आज मेरा घर पवित्र होगया और दर्शनसे नेत्र पवित्र होगया ॥

३१ त्वद्विधेष्विति, यद्यपि आपजैसे परमविरक्त तथा स्वयं सकलजगत्के मंगल करनेवाले विष्णुभक्तोंमें अकल्याणकी संभावना भी नहीं होसकती तथापि आप सकुशल तो हैं ? ॥

नल–इस श्रीचरणकी कृपासे।

आप्तकामेषु भक्तेषु प्रश्नस्यावसरो नहि।
तथाप्यागमहेतोर्मे श्रवणाय कुतूहलम् ॥ ३२ ॥

नारदजी–वत्स तुमारे पास दमयंतीके स्वयंवरका निमंत्रणपत्र आयाहै ?।

नल–(लज्जासे धीरेसे) जी।

नारदजी–वत्स दमयंतीका जन्म तुम्हारेलिए ही है तुम इसमें लजाना मत और शुभमुहूर्तमें कुंडिनपुरको शीघ्र प्रस्थान करदो यही कहनेको मैं आयाहूं।

नल–जैसे श्रीमहाराजकी आज्ञा।

नारदजी–अब मैं जाताहूं।

नल–जो इच्छा (प्रणाम करतेहैं)।

नारदजी–शुभ हों अभीष्ट सिद्ध हों।

विदूषक–डंडौत महाराज।

नारदजी–जीते रहो (जातेहैं)।

नल–द्वारपर कौन है।

प्रतीहारी–(आकर) आज्ञा ?।

नल–मैं अमात्य सालंकायन महाशयको देखना चाहताहूं।

प्रतीहारी–जो आज्ञा (जातीहै)।

नल–(विदूषकसे) सखे तुमने यह नारदजीका वृत्तांत अमात्यको सुनादेना।

विदूषक–बहुत अच्छा। यह तो कहो कब चलोगे ?।

नल–तुमे क्यों त्वरा है ?।

विदूषक–हम भी साथ चलेंगे।

नल–हां, साथ चलोगे तो तयारी करलो।

---

३२ आप्तेति, आपसदृश इच्छारहित विष्णुभक्तोंको 'आप कैसे पधारेहैं' यह पूछना योग्य नहीं क्यों कि आप आप्तकाम हैं तथापि आपके पधारनेका हेतु जाननाचाहताहूं ॥

विदूषक–तयारी ही है कुछ कंकड पत्थर लेने हैं सो मार्गसे लेलेंगे।

नल–पत्थरोंका क्या बनेगा ?।

विदूषक–आप तो समझते ही नहीं, जिसीसे हँसी करनी हुई आंख लडानी हुई उसीके सिरपर धीरेसे एक पत्थर लुढकादिआकरेंगे।

नल–आप यही चांद चढाएँगे ?।

विदूषक–यह लो बुढौ आ भी गए (डरता हुआ कुछ पीछे हटताहै)।

(श्वेतवेशले वृद्ध सालंकायन आतेहैं)

नल–(सालंकायनसे) प्रणाम करता हूं।

सालंकायन–आयुष्मान् हूजिए (आसनपर बैठतेहैं) मैने सुनाहै कि कुंडिनपुर जानेकी प्रेरणा करनेको श्रीनारदजी आएथे।

नल–जी हां।

विदूषक–(मनमें) नारदजीका आना बुढौने और ही कोईसे सुन-लिया चलो अच्छा हुआ नहीं तो यह पचडा अपनेको सुनानापडता।

सालंकायन–मैने मुहूर्त देखलिआहै आज ही तारकोदयसमयका मुहूर्त है आप इस स्थानसे आज ही कुंडिनपुरके लिए प्रस्थान करदें।

(विदूषक स्वयं हर्षकी चेष्टा करता है)

नल–मेरी इच्छा तो नहीं। (विदूषक नलको टेढी आंखसे देखताहै)।

सालंकायन–आप ऐसा विचार न करें महाराजके भारको आपने उठाया अब महारानीजीके भारको सम्हालनेवाली भी कोई चाहिए। और महाराज भीमने आपको बडे सन्मानसे बुलायाहै श्रीनारदजीकी भी आज्ञा है इसलिए आपको अवश्य जानाहोगा।

नल–जो आपकी इच्छा।

सालंकायन–द्वारपर कौन है ?।

प्रतिहारी–(आकर) आज्ञा।

सालंकायन–चंदनिके महाराजके प्रस्थानका तारकोदयमुहूर्त बहुत समीप आगयाहै प्रस्थानसामग्री सज्जित करा। और कोशाध्यक्षसेनाध्य-क्षादिसे कहो कि महाराजकी कुंडिनपुरको शुभ यात्रा कलह होगी समग्र सामग्री ठीक करें।

प्रतिहारी–जो आज्ञा (जातीहै)

विदूषक–मुझे कुछ आज्ञा हो तो मैं करूं ।

सालंकायन–तुम दीवानसाहेबसे कहो कि आपको महाराजके साथ जाना होगा । और साथमें जो वस्त्रभूषणादि लेजानेहैं तथा कुंडिनपुरमें शुभ समयोंपर जो जो कुछ कर्तव्य है वह सब आजरात्रिमें मुझसे समझलें ।

विदूषक–जो आज्ञा (त्वरासे जाता है) ।

प्रतिहारी–(आकर) श्रीमहाराज प्रस्थानकी सामग्री सुसज्जित है। तथा प्रस्थानमुहूर्त प्राप्त होगयाहै ।

(आम्र लिए स्वर्गसे गधर्व आताहै)

गंधर्व–जय हो ।

सालंकायन–क्या है ।

गंधर्व–अमरपतिने महाराजकेलिए ये आम्रफल भेजेहैं ।

नल–(मनमें) क्या कारण है जो इस यात्राके समय सुरपतिने आम्र भेजेहैं ।

सालंकायन–(नलसे) अच्छा मंगल हुआ, अकस्मात् फल आए हैं लेलीजिए ।

नल–(गंधर्वसे) लाइए (आम्र लेकर भृत्यको पकडातेहैं) ।

सालंकायन–चंदनिके इन आम्रोंको महाराजके साथ भेजना और इस गंधर्वको कोशसे विदाइगी दिलानी, और महाराजको मार्ग दिखाओ ।

प्रतिहारी–जो आज्ञा महाराज श्रीपदन्याससे इस मार्गको सुशोभित करें ।

(नेपथ्यमें)

चन्द्रस्पर्धिमुखं विलोलवदनाः पश्यन्ति बाला इव
तारा दिव्यपथे, पुरे सुमकरा बालाश्च तारा इव ।
नोदेति त्रपयेव शीतकिरणो दृष्ट्वा मुखस्य द्युतिं
यात्रायां सुखदं भवेत्तव विभो शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ३३ ॥

---

३३ चंद्रेति, राजन् जैसे नगरमें बालाएं आपके चन्द्रतुल्यमुखको देखरहीहैं तथा आकाशमें तारा‌एं देखरहीहैं यथा तारा देखरहीहैं तथा हाथमें पुष्प लिए बालाएं

लाक्षारागसमुन्नपादलिखितैः सोपानलेखामहीं
तन्वानाः कमलोदरां जनिगणा धावन्ति वातायनम् ।
द्रष्टुं ते मुखदीधितिं पुरजनस्तिष्ठत्यसौ तोरणे
बाला आगत आगतो नलनृपो भाषन्त इत्थं मिथः ॥ ३४ ॥
यस्यां सादिजनैर्विकृष्टकविकाः सर्वाङ्गभूषाजुषो
हेषानादनिनादितक्षितितला गन्तुं यतन्ते हयाः ।
दानाकृष्टमधुव्रता घननिभा पेसन्ति मन्दं द्विपा
यात्रैषा सुखदास्तु नैषधकृते नारायणानुग्रहात् ॥ ३५ ॥

सभलोग—वाह वाह ! (मंगलं भगवान् विष्णुः इत्यादि मंगल पढते हुए सभ जातेहैं)

इति अनर्घनलनाटकका द्वितीयांक समाप्त हुआ ।

अथ

तृतीयांक ।

(स्थान कुंडिनपुर एक ओरसे मदनिका और एक ओरसे मालिका आती है)

मदनिका—हाय अत्यंतकष्टका समय उपस्थित होरहाहै भगवान् कोईको प्रेमरोग न लगाए । दमयंतीकी तो न जाने क्या दशा होगी । (आगे देखकर) क्या अमात्यदारिका मालिका राजभवनमें जातीहैं ? अच्छा पूछतीहूं । (आगे बढकर) जय जय ।

मालिका—मदनिके कहांको ? ।

देखरहीहैं यहां उपमेयोपमा है । आपके मुखसे परास्त हुआ हुआ ही मानों लज्जासे चंद्रमा उदय नहीं होता । आपकी यात्रामें मृगयाक्रीडादि सुखसे हों । यहां मुद्रालंकार है। सायंकालका वर्णन है ॥

३४ लाक्षेति, आपके देखनेकेलिए स्त्रीलोग झरोखोंको दौडीजातीहैं, लोग भी आपको देखनेके लिये खडेहैं नल आए नल आए ऐसा बालक कहरहेहैं ॥

३५ यस्यामिति, जिस यात्रामें घोडे दौडनेको चाहरहेहैं हिनक रहेहैं और हस्ती मंद मंद चलरहेहैं वह यह यात्रा श्रीनारायणके अनुग्रहसे नलमहाराजकेलिए सुखदा हो ॥ द्वितीयांकटीका समाप्त हुई ॥

मदनिका–घरको।

मालिका–श्रीदमयंती कहां हैं।

मदनिका–अपने भवनमें।

मालिका–क्या करतीहैं।

मदनिका–उनको सिवाय नलचिंतनके क्या कुछ और भी काम है।

मालिका–हा कष्ट है, मदनिके दमयंतीको बुरा रोग लगा।

मदनिका–श्रीमति क्या कहती हो दिनरात दमयंतीकी चिंतामें ही बीततेहैं।

मालिका–अच्छा तुम अपने घरको जाओ, मैं तो दमयंतीके निकट जातीहूं!

मदनिका–मैं भी घर जाकर अभी वहां पहुंचूंगी (जातीहै)।

मालिका–हाय क्या होगा कैसे होगा, मदन तो अभीतक आया नहीं आजाए तो नलके हृदयका तथा स्वयंवरमें आनेका कुछ पतालगे यदि नल स्वयंवरमें न आए तो महाराजका यह स्वयंवराडंबर सभ व्यर्थ होजायगा, दमयंती तो नलके विना इंद्रके भी कंठमें स्वयंवरमालाको नहीं डालेगी।

प्रेमद्रुमं दुःखफलं स्मरैषो मासिञ्चतां चेतसि चेतनानाम्।
केनापि किं शातमनेन लब्धं दुनोति किं नेन्दुरतेश्चकोरी॥ १॥

अहो कर्मकी विषमविपाकिता कि जीव जिन कृत्योंको सुखकेलिये करताहै वे ही दुःखोन्मुख होजातेहैं।

प्रवर्तते चित्ततरङ्गिणीयं सुखाय, पश्चाद्द विषमं प्रयाति।
पुरारिपादाब्जरतेरुमापि परं तपोदुःखमवाप बाल्ये॥ २॥

---

१ प्रेमेति, हे कामदेव दुःख ही है फल जिसका ऐसे प्रेमरूपी वृक्षको किसीके भी चित्तमें मत सींच न लगा, क्यों कि इस प्रेमसे किसीने भी सुख नहीं पाया, देखो चकोर भी चंद्रमाके प्रेमसे चंद्रदर्शन सदा न होनेके कारण दुःख ही पाताहै॥

२ प्रवर्तत इति, यह चित्तरूपी नदी पहिले तो सुखकेलिए वहतीहै फिर बडी विकट होजातीहै अर्थात् चित्तका संकल्प जो सुखकेलिए होताहै उसका फल दुःख निकलताहै। चित्तको नदीरूपसे योगभाष्यकारने लिखाहै ‘ चित्तनदी नाम ’ इति।

अच्छा जो भगवादिच्छा, संप्रति दमयंतीके निकट चल उसे धैर्य देना ही उचित है। भगवान्का नाम मुकुंद है इससे वह अवश्य इस कार्यको सिद्धकर हम लोगोंको हर्षित करेगा (जाती है)।

॥ इति विष्कंभक ॥

(स्थान राजभवन तकियेके आश्रय बिरहावस्थासे एकली दमयंती बैठीहै)

दमयंती–आज तो मालिका भी अबतक नहीं आई आती तो घडीभर जी ही बहलता, मदनिका भी न जाने कहां चलीगई, ये दोनों भी मेरेलिए दुःखमें फँसरही हैं, न ये नेत्र स्वप्नमें उस प्यारेको देखते न ये श्रवण हंसवृत्तांतको श्रवण करते न चित्त उधर लगता न ये दुःख उपस्थित होते। अब तो उस प्यारेकी दर्शनाभिलाषामें क्षण भी वर्ष समान बीतताहै।

कल्हारकान्तवदनं नवषट्पदीव
जीमूतमञ्जुलतनुं चलचातकीव।
राकासुधाकरमनोरमवक्त्रमाभ्यां
द्रक्ष्यामि तं बत कदापि विलोचनाभ्याम् ॥ ३ ॥

अहो बडा कष्ट है कि विरहानलसे दग्ध हृदय कुछ भी पूर्वापरका विचार नहीं करता जो–प्रियतमका संदेश भी दुर्लभ होनेपर रूपमाधुरी पानके मनोरथ करताहै। (दर्पणमें मुख देखकर) हाय मेरे इस पीतमुखको देख लोग क्या शंका करतेहोंगे? मातापिता क्या कहतेहोंगे? सर्वथा मेरा दौर्भाग्यतरु फूलरहाहै।

हाय इस निगोडी नींदने भी मेरी सहायता न की यदि कुछ और कालतक निद्रा रहती तो मैं उस प्राणप्यारेको मनभर देख तो लेती।

भाग भले विधिना करे जिन तिन सुख उपजात।
भागहीन हरिनी नहीं मृगतृष्णा हुँ लभात ॥ ४ ॥

श्रीमहादेवजीकी प्रीतिसे पार्वतीने बाल्यावस्थामें तपका दुःख भोगा एवं सभीको प्रेममें दुःख भोगना पडताहै॥

३ कल्हारेति, कमलको यथा भ्रमरी देखतीहै मेघको यथा चातकी देखतीहै तथा मैं भी अपने इन नेत्रोंसे चंद्रजैसे मुखवाले अपने प्यारे (नल) को क्या कभी देखूंगी। यहां प्रतिमुखसंधिका विलास नामक अंग है॥

अहा उसका रूप कैसा मनोहर देखा—

> किंचित्स्मेरमुखं स्मरेण सृतिषु स्तम्बेरमोद्बोधकं
> जातीदामनिबद्धकुन्तलचयं नीलोत्पलाभेक्षणम् ।
> श्रीमद्विस्तृतवत्समस्तुलतनुं पीनोन्नतासं भृशं
> जीवंजीव इवेन्दुमण्डलमऽयेऽहं त्वां स्मरामि प्रिय ॥ ५ ॥

मालिका—(आकर) जय जय ।

दमयंती—(आगे देख) अहो क्या मालिका है, आइए विराजिए ।

मालिका—(बैठकर) सखि उदास क्यों हो ।

दमयंती—मालिके सामर्थ्यहीनका वश उदास होनेतक ही न है ? ।

मालिका—आपको धैर्य करनाचाहिए ।

दमयंती—सखि मुझसा कौन धैर्य करेगा ।

मालिका—यदि आप ऐसी विदुषी होकर भी धैर्य न करेंगी तो और कौन धैर्य करेगा । और धैर्यका फल भी तो आपको ही मिलेगा ।

> य एव सहते तापं चातकोऽपि तपर्तुजम् ॥ ।
> स एव मोदते काले मुदिरागमने पुनः ॥ ६ ॥

दमयंती—सखि चातक दुःखके पीछे तो सुख पाताहै यहां तो वैसा भी भाग्य नहीं ।

मालिका—आपके भाग्यमें न्यूनता ही क्या है ? ।

> वैदर्भाधिपतेः कुले जनिरियं मातुश्चसद्वंशता
> विद्या सद्गुणशालिनी मतिरियं सर्वार्थसिद्धान्तिनी ।
> सौन्दर्यस्य तरङ्गिणी निरणका हृद्या प्रतीकस्थिति-
> र्ह्येतच्छ्रीयुतसंपदा वरतनु प्रार्थ्यासि देवैरपि ॥ ७ ॥

५ किंचिदिति, हे प्यारे मैं मंदहास करनेवाले अपनी गतिसे गजेंद्रका स्मरण करानेवाले केशपाशमें बांधीहै पुष्पमाल जिसके कमलसदृश नयनवाले विस्तृत वक्षस्थलवाले और पीनोन्नतस्कंधवालेको तुझको ऐसे स्मरण करतीहूं जैसे चकोर चंद्रमाको स्मरण किआ करताहै । यहां प्रतिमुख संधिका पुष्पनामक अंग है ॥

६ य एवेति—जोई चातक ग्रीष्ममें तापको सहताहै वही वर्षामें आनंद भी पाताहै । “ उपपत्तिकृतो योऽर्थ उपन्यासः स कीर्तितः ” इस मतसे यहां उपन्यास नामक अंग है ॥

७ वैदर्भेति, विदर्भाधिपतिके घर आपका जन्म हुआ मातृकुल भी भारी प्रतिष्ठित

दमयंती–सखि इस अप्रस्तुतप्रशंसासे क्या होनाहै ? ।

पीयूषपूरितं शीतं चषकं पद्मवासितम् ।
पेयं चाऽपेयतामेति कालकूटस्य मात्रया ॥ ८ ॥

मालिका–कैसा कालकूट ? ।

दमयंती–अपना भाग ही ।

मालिका–प्यारी धैर्य करो भगवान् सब सिद्ध करेगा । हंससंदेशानंतर तुमने स्वप्न देखा फिर चित्र भी मिला अब स्वयंवरका पत्र भी गयाहै इधर स्वयंवरकी तयारी होरहीहै ।

(दमयंती लज्जासे सिर झुकातीहै । मदनिका आतीहै)

दमयंती–अच्छा अब रहनेदो ।

मालिका–(मदनिकासे) कहो क्या समाचार मिला ।

दमयंती–(मनमें) क्या मदनिका कुछ सुखद समाचार सुनाएगी ? ।

मदनिका–समाचार यही है कि मदनको आया ही समझो ।

मालिका–वासंती कहां है ? ।

मदनिका–अपने घर है ।

दमयंती–सखि तुम क्यों इतना आयास उठातीहो ।

मालिका–**नहि श्रमादृते काचिल्लभ्यते शातसन्ततिः ।**
वैरिबाणव्रजैस्तान्ता विन्दन्ते महतीं श्रियम् ॥ ९ ॥

दमयंती–मालिके इन प्रोचनावाक्योंमें भी कुछ सार है ।

मालिका–आप यह क्या कहती हैं जीव जिस वस्तुकी प्राप्तिकेलिए अधिक दुःख उठाताहै उस वस्तुको अवश्य पाताहै ? ।

है आप स्वयं विदुषी हैं आपकी मति भी अतितीक्ष्ण है सौंदर्य और अवयवसंस्थान तो निरुपम है हे सुंदरि इस संपदासे तुमारी देवलोकभी अभिलाषा करतेहैं ॥

८ पीयूषेति, अमृतसे भरा शीत कमलसे सुगंधित किआ हुआ भी कटोरा विषके संबंधसे अपेय हो जाता है । यहां प्रतिमुखसंधिका तापन नामक अंग है ॥

९ नहीति, विना श्रमके कोई भी सुखसंपदा प्राप्त नहीं होती, वैरिबाणोंकी चोट सहकर भी पराक्रमी राजा श्रीको प्राप्त होतेहैं ।

संमृष्य मन्दरहतिं वपुषाऽब्धिपुत्र्या
कान्तारसेवनविमर्दनमार्यया च।
नारायणः स्मरहरश्च कथं न लब्धो
दुःखं विना न लभते प्रियवस्तु जीवः॥ १०॥

दमयंती–(मनमें) ये सभ बातें मेरे आश्वासन (तसल्ली) केलिए करतीहैं। वह राजचूडामणि मुझमें चित्त लगाए इसकी संभावना ही क्या। मेरे ऐसे भाग्य कहां जो इन जले नेत्रोंसे नलमुखचंद्रको निहारूं धिक्कार है इस अबलाजातिपर।

अशंस्यमेतद्विरहार्णवस्य य-
दऽवारपरं न विलोक्यते क्वचित्।
तपर्तुतापेन सतृष्णचातकी-
सुखं कुतस्तन्मुदिरागमं विना॥ ११॥

(दमयंती कुछ मूर्छितसी होतीहै मदनिका मालिका पंखा करती हैं सम्हालतीहैं)

मालिका–हे मेरी प्यारी अचेत क्यों होती हो (नेत्रमें जळ आताहै)

दमयंती–(सचेत होकर) सखि निद्रासी आगई थी आप क्यों आयास करतीहैं। (मनमें) अशंस्यमेताद्विरहार्णवस्य (इत्यादि पुनःपढतीहै)

(वासंती आतीहै)

मदनिका–वासंती तो आरहीहै।

दमयंती–(मनमें) वासंती तो नित्य ही आतीहै।

---

१० संमृष्येति, मंदराचलकी चोटें सहकर ही लक्ष्मीने श्रीनारायणको पायाहै वनमें तपका दुःख भोगकर ही पार्वतीने महादेवजीको पायाहै तथा च दुःखके विन प्यारी वस्तु प्राप्त नहीं होती॥

११ अशंस्यमिति, मैं इस दुःखको कोई रीतिसे भी वर्णन नहीं करसकती जो प्यारेके विरहसमुद्रका पारावार प्रतीत नहीं होता और सतृष्णचातकीको मेघके आनेविना सुख कैसे हो। एवं मुझे भी उस प्यारेके आए विना सुख कैसे हो। हाफिजने भी कहाहै–'हिजरे मारा नेस्त पायां अलगयास' इति॥

---

१ द्वितीयांकमें जिस मदनने महाराजनलके आंतरिक प्रेमका परिचय लिआहै उसी मदनकी यह वासंती भार्या है।

वासंती–(आकर) राजकुमारीकी जय हो ।

मालिका–वासंतिके मदनजी आए ? ।

वासंती–श्रीमति एकले ही नहीं किंतु कार्यसिद्धिके साथ आएहैं ।

दमयंती–(प्रसन्नमुख होकर वासंतीको देखती हुई मनमें) अहा ये अक्षर कैसे मधुर हैं ?।

मालिका–सविस्तर कहो ।

वासंती–सविस्तर और क्या कहूं जो कुछ आपने उन्हे (मदनको) समझाया था उसकेलिये बहुत योग्य अवसर मिला और महाराजनलको यहां पहुंचे ही समझो । (दमयंती लज्जासे सिर झुकातीहै)

मदनिका–जिस काममें हमारी अमात्यदारिका हाथ डालें वह कैसे न सिद्ध हो ।

वासंती–ऐसे ही है ।

दमयंती–(मनमें) अहो भगवत्की कृपालुता जो आज ये प्राणप्रद अक्षर भी कानमें पडरहेहैं ।

मालिका–(दमयंतीसे) सखि वासंतीको पारितोषिक देनाचाहिए (कंठसे हार उतारकर वासंतीको देतीहै) ।

वासंती–हम तो आपके ही हैं फिर क्यों आयास करतीहैं ।

मालिका–लो लो ।

वासंती–जो इच्छा (हार लेकर प्रणाम करके)

विनय इहै इक और हौं करौं नाथसों गोरि ।
कंठ लगै नवमालिका बनै सुअद्भुत जोरि ॥ १२ ॥

दमयंती मदनिका–एवमस्तु ।

मालिका–(दमयंतीसे) सखि आपको भी वासंतीको कुछ पारितोषिक देनाचाहिए ।

दमयंती–सखि आपका काम किआहै आपने दिआ भी है ।

वासंती–**नितप्रति पियसों सुख करौ वसौ हियेके माहँ ।**
पीवौ रूपसुधा सदा दिए रहौ गलबाहँ ॥ १३ ॥

दमयंती-(मनमें) विन्नं वियोगजलधौ विनिमग्नमूर्त्या
निम्नेन्तरीपमिव वाक्यमिदं मयाद्य ।
मन्ये त्वदीयदयया भगवन् कदाचिद्
वेत्स्यामि तां निषधनाथमुखेन्दुनावम् ॥ १४ ॥

(नूपुरकी ध्वनि सुनाई पडतीहै)

मदनिका-यह नूपुरध्वनि कहांसे ? ।

मालिका-क्या जाने (उर्वशी आतीहै सब अभ्युत्थान करतीहैं) ।

दमयंती-आइए आइए (दोनों बराबर बैठतीहैं) अहो भाग्य आपने दर्शन दिए ।

उर्वशी-मेरे ही नयनोंका सौभाग्य कहना चाहिए जो इस मुखचंद्रको निहारा ।

कुलजानां वराणां च शास्त्रदृष्टिरतां तथा ।
विनयः सर्वदा दृष्टः स चाभ्युदयलक्षणम् ॥ १५ ॥

वासंती-मैं फिर कोई समय आऊंगी ।

दमयंती-अच्छा (वासंती प्रणाम करके जातीहै) ।

उर्वशी-आपके यहां तो ग्रीष्म बहुत है अहो नंदनवन स्मरण आताहै-

एलालतास्पर्शसुगन्धिहृद्यो
मन्दाकिनीशीकरशीतलश्च ।
शनैः शनैर्यत्र मुदेऽमरणां
समीरणो वाति सुनन्दनं तत् ॥ १६ ॥

---

१४ विन्नमिति, मुझ वियोगसमुद्रमें डूबी हुईको उक्त वाक्य ऐसा सुखद प्राप्त हुआ जैसे समुद्रमें डूबतेको कोई भूमी (टापू) मिल जाताहै अर्थात् इस वाक्यसे प्यारेके प्राप्त होनेकी कुछ आशा हुई है । हे भगवन् आशा है कि आपकी दयासे कभी नलमुखरूपी नाव भी मुझे प्राप्त हो । यहां परिसर्पनामक अंग है ॥

१५ कुलेति, कुलीनश्रेष्ठ तथा शास्त्रज्ञ लोग सदा ही विनय रखतेहैं और विनय ही वृद्धिका लक्षण (अनुमापक) है ॥

१६ एलेति, नंदनवन ऐसा है जहां शीतल मंद और सुगंध पवन चलताहै ॥ इससे आगे बहुत जगा प्रगमननामक अंग है ॥

दमयंती–क्यों न हो, वे उपभोग तो केवल आपसे सुकृति लोगोंके-लिए हैं।

उर्वशी–सत्य जानो तो वे उपभोग आपलोगोंके ही लिए हैं हम लोग तो उनके रक्षकमात्र हैं।

दमयंती–अच्छा, आप अपने पधारनेका तो कारण कहिए।

उर्वशी–मैं उसे एकांतमें कहनाचाहतीहूं।

दमयंती–यहां अनेकांत कुछ नहीं आप निःशंक कहिए।

उर्वशी–एक और भी निवेदन करती हूं कि यदि मेरे आनेकी लाज रखनीहो तो कहूं।

दमयंती–यदि मेरे करनेके शक्य होगा।

उर्वशी–आप शपथ करो कि हम तेरे आनेको सफल करेंगी।

दमयंती–यदि बीज होगा तो सफल होगा ही।

उर्वशी–अच्छा तो सावधानतासे सुनिए।

दमयंती–मैं सावधान हूं।

उर्वशी–आयुष्मति मुझे तुम्हारे निकट अमरावतीपतिने भेजाहै।

दमयंती–क्यों ?।

उर्वशी–वे आपसे कुछ चाहतेहैं।

दमयंती–श्रीमति मेरेपास उनके योग्य क्या है।

उर्वशी–और तो क्या कहूं उनका सुख तुमारे हाथ है।

दमयंती–अहो चाटुवक्तृता, आपने जो कहनाहै उसे स्पष्ट कहिए।

उर्वशी–स्पष्ट तो यह है कि वे आपको स्वर्गकी महारानी बनाना चाहतेहैं।

दमयंती–हरि हरि फिर ऐसा मत कहना।

उर्वशी–क्यों ?।

दमयंती–यों कि मैं तो उन्हें पितासमान पूज्य समझतीहूं।

उर्वशी–आपको मेरा कहना मानलेनाचाहिए।

दमयंती–आपकी यह आज्ञा मेरे वसकी नहीं।

दिवःपतिर्यज्ञपतिः पुरन्दरः
समस्तवृन्दारकवृन्दवन्दितः।
पुलोमजायाः कुचपीडनोपि यः
स याचते त्वां न स वीक्ष्यते त्वया ॥ १७ ॥

मालिका—आप भी तो सोचिए कि हृदय तो एक ही न है।

उर्वशी—आयुष्मति यह मैं भी जानती हूं किंतु उस ओरसे रोककर इस ओर हृदयको लगानाचाहिए।

मदनिका—यह तो आपलोगोंकी ही सामर्थ्य है।

उर्वशी—(दमयंतीसे) मुझे तो आश्चर्य यह है कि आपको उस स्वर्लोकका भी लोभ नहीं होता जहां—

छाया कल्पपलाशिनां, त्रिपथगाकूलं विहाराय तत्,
पातुं स्वादुसुधा, पुरी निवसितुं शक्रस्य, राज्यं दिवि, ।
यत्सर्वं नृवरैः पुनः पुनरिदं संप्रार्थितं नाप्यते
प्राप्नोति स्वयमेव तत् तव रुचिः कस्मान्न तत्रैधते ॥ १८॥

और—मुक्तालतानां निभृतैर्निकुञ्जैः
प्रवालपत्राऽऽस्तरणै रहस्यैः।
मनोरमं नन्दनमस्य रम्यं
कथं तवाकर्षति मानसं नो ॥ १९ ॥

दमयंती—आप क्यों इतना श्रम उठातीहैं।

उर्वशी—आपने तो कहाथा कि हम तेरे आनेको सफल करेंगी।

मदनिका—यह भी तो कहाथा कि यदि बीज होगा।

---

१७ दिव इति, जो इंद्र स्वर्गका और यज्ञका पति है और पुलोमकन्याका भर्ता है वही इंद्र तुझे चाहताहै कष्ट है कि तुम उसकी ओर देखती नहीं ॥

१८ छायेति, कल्पवृक्षोंकी छाया विहार करनेको गंगातट पीनेको अमृत निवास करनेको अमरावती और स्वर्गका राज्य ये पदार्थ मनुष्योंको देवोपासनासे भी प्राप्त नहीं होते और तुमको तो स्वयं प्राप्त होतेहैं तुमारी रुचि इन पदार्थोंमें क्यों नहीं होती ? ॥

१९ मुक्तेति, जो मुक्तालताकुंज तथा प्रबाल (मूंगा) पत्रोंकी बिछाइओंसे नंदनवन शोभायमान है वह तुम्हारे मनमें क्यों नहीं बसता।

उर्वशी–(दमयंतीसे) अयि सुंदरि मैं वारंवार कहतीहूं मेरे वचनको स्वीकार करो नहीं तो पछतानापडेगा ।

मालिका–उर्वशीजी इन विभीषिकाओंमें भी कुछ सार है ? ।

उर्वशी–मैं तो आपके ही हितकेलिये कहने आईहूं मानना न मानना आपके अधीन है ।

मदनिका–आप इस हितकथनसे कृपा ही रखिए ।

हिताऽहितं मनीषाभिर्निजाभिर्वा हितैषिणाम् ।
निष्पक्षाभिर्यथा ज्ञेयं नाग्रहाश्रयिणां तथा ॥ २० ॥

उर्वशी–(दमयंतीसे) यदि ऐसे ही है तो मैं जातीहूं ।

दमयंती–मैं प्रणाम करतीहूं !

उर्वशी–अभीष्ट प्राप्त हो (जातीहै) ।

मालिका–(दमयंतीसे) सखि अतिनिठुर हो जो उर्वशीकी इतनी विनतीपर तथा इंद्रकी याचनापर भीं ध्यान नही देती हो अब भी मानलो भली चैन करोगी (नर्मद्युति) ।

दमयंती–आपको भी चैनकी सूझने लगी ।

(मोहिनी अप्सरा आतीहै सब अभ्युत्थान देतीहैं)

अभिवादन करतीहूं ।

मोहिनी–**अमर अजर हो लाडिली प्रीतमसुखकूं भोग ।**
कीरति संपति पीय इन होय अनूपम जोग ॥ २१ ॥

दमयंती–विराजिए (सब बैठतीहैं । मनमें) यहां भी कुछ दालमें काला ही प्रतीत होताहै ।

मोहिनी–आप सकुशल तो हैं ।

दमयंती–मैं तो सकुशल हूं आप कहिए आज कैसे मार्ग भूलगई ।

मोहिनी–राजकुमारि क्या कहतीहो ये अमरलोग नेक भी अवकाश नहीं देते इसीसे नहीं आसकी

---

२० हितेति, जीव अपने हिताहितको अपनी किंवा अपने हितैषिओंकी बुद्धिसे जैसा जानसकताहै वैसा आग्रही जनोंकी बुद्धिसे नहीं जानसकता ॥

मालिका–आप इसी योग्य हैं।

मदनिका–आनंद भी तो आप ही लूटतीहैं।

मोहिनी–क्या आपका भी जीव ललचाताहै ?।

दमयंती–यह तो हुआ, आज कैसे कृपा की यह कहिए।

मोहिनी–जिस कारणसे आईहूं उसे क्यों न कहूंगी किंतु यदि आप कान दे सुनें ?।

दमयंती–आप उचित सुनाएंगी तो क्यों न सुनूंगी।

मोहिनी–क्यों न हो आपको यही उदारता शोभा देतीहै।

कुर्वन्ति संप्राप्तजनाय सर्व
प्राक्कालिकी रीतिरियं कुलानाम्।
तत्र त्विदं भीमकुलं प्रगल्भे
विश्वस्ततां याति मतिर्ममातः॥ २२॥

मालिका–कहिये तो।

मोहिनी–सुंदरि मैं भगवान् धर्मराजकी ओरसे आपके समीप आईहूं।

दमयंती–क्यों ?।

मोहिनी–धर्मराज पीडित हैं उस पीडाकी निवृत्तिकेलिए वे आपसे एक फलका रस चाहतेहैं।

मालिका–कैसी पीडा और किस फलका रस।

मोहिनी–कामपीडा और दमयंतीके अधरबिंबफलका रस ?।

मालिका–आप कैसे ऐसी अन्यायकी बात कहतीहैं ?।

मोहिनी–क्यों ?।

मालिका–जिस कामने पीडा दीहै उससे कुछ लें कि वा वे दंडधर हैं उस कामको दंड दें, चोर और माराजाय और यह आज ही सुनी।

मोहिनी–(दमयंतीसे) आप क्या कहतीहैं ?।

दमयंती–मालिका कह तो रहीहै।

---

२२ कुर्वंतीति, प्राचीनकालसे लेकर सत्कुलोंकी यही मर्यादा है कि आएका सभतरहसे आदर करना उसपर भी यह तो महाराजभीमका कुल है इसहेतु मुझे आपपर सभ भरोसा है॥

मोहिनी–अर्थात् आप मुझे आतिथ्य नहीं देतीं।

दमयंती–श्रीमति यह आतिथ्य यदि मेरा साध्य होता तो नहीं न करती।

मोहिनी– न शोभते ते वदनेन्दुबिम्बात्
सुधाप्रवृत्तेः प्रति वेषधारा।
आस्यं स्वकीयं त्वथ याचकस्य
संवीक्ष्य वाचं प्रवदन्ति धीराः॥ २३॥

मदनिका–याचकको भी आगापीछा देखकर याचना करनीचाहिए।

मोहिनी–(दमयंतीसे) आप उस धर्मराजकी उपेक्षा करतीहैं? जो–

धर्मो मूर्तिधरो य एव यमुनाभ्राता सुरैरर्चितः
पाता संयमनीपुरश्च जगतां शास्ता त्रयाणां सदा।
लोकानां च शुभाशुभस्य फलदो दण्डश्च यस्यायुधं
सोपि त्वां बहु मन्यते, मम वचः किं नो शृणोषि प्रियम्॥२४॥

दमयंती–मुझे तो यह आश्चर्य है कि इस संदेशको लानेकेलिए आपके चित्तने कैसे चाहा?।

मोहिनी–आपके हितकेलिए।

मदनिका–इस हितसे कृपा ही कीजिए।

मोहिनी–(दमयंतीसे) अच्छा तो मैं जातीहूं।

दमयंती–मैं भी वंदना करतीहूं।

मोहिनी–सुखसंपत्ति हो (जातीहै)।

मालिका–सखि यह इसी रूपका प्रताप है जो धर्मराज भी याचक है।

दमयंती–राखका प्रताप है।

---

२३ नेति, आपके मुखसे सुधाधारा (स्वीकार) के स्थानमें यह नाहींका उत्तर शोभा नहीं पाता, अपने और याचकके मुखको देखकर उत्तर देना अच्छा होताहै॥

२४ धर्म इति, जो यमराज मूर्तिधारी धर्म है यमुनाका भ्राता है देवोंका भी पूज्य है संयमनीका राजा है त्रिलोकीका शासन करनेवाला है जीवके पुण्यपापका फल देनेवाला है जिसका दंड ही आयुध है वह धर्मराज तुमारा बहुतसा मान करताहै अर्थात् तुमको पत्नी बनानाचाहताहै तुम मेरा कहा धर्मराजका संदेश क्यों नहीं सुनतीं॥

मदनिका-इन भ्रमरोंकी बुद्धिको आज क्या होगया ? ।

मालिका-मदनिके सुंदरवस्तुको कौन नहीं चाहता, किंतु-

प्रियगुणेषु निबद्धमना न हि
तदतिरिक्तजनं समवेक्षते ।
पतिमपामपि वीक्ष्य न चातकी
त्यजति तोयमुचि प्रियतां सखि ॥ २५ ॥

(पुनः नूपुरका शब्द सुनाई देताहै)

मदनिका-यह लो और कोई आतीहै । (तिलोत्तमा आतीहै)

दमयंती-(उठकर) देवी पादवंदन करतीहूं (दोनों बैठतीहैं) ।

तिलोत्तमा-सुंदरि

सौभाग्यं सर्वलोकेभ्योऽप्यधिकं वर्धतां तव ।
प्रिया भव प्रियस्य त्वं प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ॥ २६ ॥

मालिका-आपकी कृपा है तो क्या दुर्लभ है ? ।

दमयंती-अहो भाग्य आप पधारीं ।

तिलोत्तमा-बहुत दिन हुएथे आपके मुखचंद्रको निहारे इससे मनमें आया कि आज तो लाडिलीको देखना ही चाहिए ।

दमयंती-क्यों न हो-

नाऽनर्घाणां कृपासेके पात्रापात्रविवेचनम् ।
मुदिरो वारिवर्षाय किमु स्थानं परीक्षते ? ॥ २७ ॥

तिलोत्तमा-आपकेलिये यह मंजरी भेट लाईहूं (मंजरीको देतीहै) ।

दमयंती-प्रसाद कहना चाहिए (लेकर सिरसे लगाकर) यह तो कल्पतरुकी मंजरी है न ? ।

---

२५ प्रियेति, जिसका मन अपने प्यारेके गुणोंमें बँधजाताहै वह अपने प्यारेके विना और पुरुषकी ओर प्रेमसे नहीं देखता यथा समुद्रको भी देखकर चातकी मेघप्रीतिको नहीं छोडती न समुद्रमें प्रेम करतीहै ॥

२६ सौभाग्यमिति, तुमारा सौभाग्य सभसे बढकर हो और तुम अपने प्यारेकी प्राणोंसे भी बढकर प्यारी होवो ॥

२७ नेति, यथा मेघ जल गेरनेको स्थानास्थानपरीक्षा नहीं करता तथा उत्तमजन भी कृपारूपी जल सींचनेको पात्रापात्र (योग्यायोग्य) की परीक्षा नहीं करते ॥

तिलोत्तमा–और क्या।

दमयंती–श्रीमति यद्यपि जानतीहूं कि आपका आगमन निष्कारण कृपासे है तथापि कुछ विशेष हो तो आज्ञा कीजिए ?।

तिलोत्तमा–सुभगे मेरा आगमन निष्कारण नहीं, किंतु यदि आप इस स्नेहका परिपालन करें तो मैं कुछ निवेदन करूं।

दमयंती–(मनमें) यह भी न जाने क्या कहेगी, हे भगवन्–

मनोरथोऽयं सरसीरुहाकृति-
मैमास्ति यो नैषधवक्त्रमीक्षितुम्।
स एव किं कोरकतां प्रकाशयन्
विशीर्णतामेति सुपर्वणां कृतेः ॥ २८ ॥

तिलोत्तमा–सुंदरि कुछ तो उत्तर देनाचाहिए।

दमयंती–यद्यपि–

प्रियताया अकूपारपारे गन्तुं परैरपि।
शक्यते नैव हे मातः का कथा मादृशां पुनः ॥ २९ ॥

ऐसा है तथापि यदि मेरा वश होगा तो मैं आपकी ही हूं।

तिलोत्तमा–क्यों न हो–

गभीरहृदयैरेवं भाष्यते निश्चिता कृतिः।
गर्जत्यवर्षणो मेघो वर्षणो नहि गर्जति ॥ ३० ॥

[illegible]

मालिका–एक प्रार्थना मेरी भी सुनलीजिए कि भर्तृदारिका एक बातको स्वीकार न करसकेंगी।

---

२८ मनोरथ इति, नल महाराजके मुख देखनेका मेरा जो कमलसदृश मनोरथ है वह अपनी कलिकावस्थामें ही क्या देवलोगोंकी इस कृतिसे नष्ट होना चाहताहै ? यहां विरोध नामक अंग है " विरोधो व्यसनप्राप्तिः " इति ॥

२९ प्रियेति, प्रेम समुद्रके पार तो बडे बडे लोग भी नहीं पहुंचसकते फिर मुझसे लोगोंकी क्या कथा जो पार पहुंचें ॥

३० गभीरेति, गंभीरहृदयवाले लोग इसी रीतिसे अपने निश्चित कर्तव्यको कहा करतेहैं यथा न बरसनेवाला ही मेघ गरजता है बरसनेवाला गरजा नहीं करता ॥

तिलोत्तमा–साधु अमात्यदारिके साधु, वे तो सब स्वीकार करतीहैं आप मेरी याचनाको मानो संकुचित करतीहैं, ऐसी चतुराई करनी उचित नहीं होती।

दमयंती–नहीं नहीं मालिका सत्य कहतीहै।

तिलोत्तमा–चंद्रमुखि मैं ऐसी वार्ता कभी न कहूंगी जिसे आप स्वीकार न करसकें।

दमयंती–यदि स्वीकार करने योग्य वार्ता होगी तो मैं क्यों न स्वीकार करूंगी ? आप कहिए।

तिलोत्तमा–सुनिए, मुझे भगवान वैश्वानर (अग्नि) ने भेजाहै।

दमयंती–क्यों ?।

तिलोत्तमा–वे आपसे प्रार्थना करतेहैं कि आप अपने मुखचंद्रके चकोरभावमें मुझे स्वीकार करें।

दमयंती–(मनमें) हा कष्ट, आज प्रातः न जाने किस कृपणका मुख देखाहै।

मालिका–भगवति वही यह वार्ता है जो मैंने कहीथी।

तिलोत्तमा–(दमयंतीसे) आपको यह वार्ता अवश्य स्वीकार करनीहोगी।

दमयंती–देवि इसके विना यदि आप प्राण भी मांगें तो देसकतीहूं।

तिलोत्तमा–आपने तो कहाथा कि मैं आपकी ही हूं ?।

मदनिका–यह भी तो कहाथा कि एक बातके विना।

तिलोत्तमा–क्या आप मेरी इस बातको नहीं मानेंगी ?।

मालिका–धर्मविरुद्ध वार्ता क्योंकर मानीजाए।

तिलोत्तमा–इसमें धर्मविरुद्धता क्या है ?।

मालिका–आप नहीं जानतीं कि हमलोग नित्य जिनका पूजन करतेहैं उनके साथ ऐसा संबंध क्यों कर किआजाए।

मदनिका–बात तो यह है कि यहां तो जो होना था वह होचुका।

तिलोत्तमा–बाले क्या होचुकाहै यही न कि दमयंती नलके गुण सुनचुकीहै । गुणश्रवणमात्रसे क्या होगया, और कहां नल कहां भगवान् चित्रभानु–

शुद्धिं याति समस्तलोकविभवः स्पर्शेन यस्यैव हि
नक्तं यस्य तनौ निधाय किरणानस्तं समेत्यऽर्यमा ।
यं गायन्ति समर्चयन्ति निखिला यज्ञेषु देवासुरा
देवेशं तमुपागतं न कलयस्यऽज्ञेऽयि वैश्वानरम् ॥ ३१ ॥

दमयंती–(कर जोर) वे ऐसे ही हैं ।

तिलोत्तमा–फिर तुम ऐसे देवदेवको छोड एक मनुष्यमें अनुरक्त होतीहो ? ।

मालिका–भगवाति चित्तानुरागकेलिए कोई स्थान नियत नहीं, और चित्तानुराग समानमें ही होताहै ।

मदनिका–नलजैसे गुण भी तो और किसीमें हों ।

तिलोत्तमा–(मनमें) ये सब पक्की पाटी पढीहैं एक न मानेंगी, (प्रकट) तो मैं जाऊं ।

दमयंती–यह मैं कैसे कहूं ? ।

तिलोत्तमा–और कैसे कहाकरतेहैं (जानेके लिए उठतीहै) ।

दमयंती–(उठकर) प्रणाम करतीहूं ।

तिलोत्तमा–सौभाग्यवती हो (जाती है) ।

दमयंती (बैठकर) आज तो अच्छे इनने प्राण पीने आरंभ किए ।

मालिका–सखि कुपित न हूजिए तिलोत्तमा गई ।

दमयंती–(धीरेसे) यह लो और प्राण पीनेको आरहीहै ।

मालिका–न जाने इनको आज क्या सूझी है ? (मेनका समीप आतीहै) ।

दमयंती–(उठकर) श्रीमाति पादस्पर्श करतीहूं (दोनों एकत्र बैठतीहैं) ।

---

३१ शुद्धिमिति, लोकके समस्त पदार्थ जिसके स्पर्शसे शुद्ध होजातेहैं सूर्य अपनी किरणोंको जिसमें रखकर रात्रिमें अस्तको जाताहै देवता भी यज्ञमें जिसका अर्चन तथा स्तुति करतेहैं उस देवेश अग्निको भी हे मुग्धे तू कुछ नहीं गिनती यह बडा खेद है ॥

मेनका- प्रियः पतिस्ते वदनेन्दुबिम्बं
समीक्ष्य पद्येत चकोरभावम् ।

मालिका- महाजनाभ्यागममुक्तपङ्कै-
र्जनैर्न किं वीक्षत ईक्षणीयम् ॥ ३२ ॥

दमयंती-आज इस समय कैसे दर्शन दिए ? ।

मेनका-आप यह पूंछकर क्या करेंगी ।

मालिका-आपके वचनामृतको श्रवण तो करेंगी ।

मेनका-(दमयंतीसे) मैं अपने आनेका निदान निवेदन तो करना-चाहतीहूं किं तु यदि आप स्वीकार करें ।

दमयंती-भगवति स्वीकार करना कठिन है ।

मेनका-अहो समयप्रभाव-

मधुसों कटुता कमलसों हालाहल दरसात ।
काल कठिन यह इंदुसों आतपताप दिखात ॥ ३३ ॥

मालिका-जब कि आपलोग कुछ सोचकर आज्ञा न करें तब क्यों-कर मधुसे कटुता न दरसे ।

मदनिका-सत्य पूछिए तो आपलोग ही मधुको कटु बनारहेहैं ।

मेनका-(दमयंतीसे) आप मानिए चाहे न मानिए मैं तो एकवार अपने उद्देश्यको सुनाऊंगी ही ।

मदनिका-यदि ऐसे ही है तो आपभी मनकी मनमें न रखिए ।

मेनका-(दमयंतीसे) सुंदरि बात यही है कि भगवान् वरुण अपने मनको तुम्हारे इस मुखपंकजका मधुप बनानाचाहतेहैं ।

मालिका-भगवान् वरुण इस बातसे कृपा ही रक्खें ।

मेनका-(दमयंतीसे) सुंदरि मैं तुम्हारे हितकेलिए कहतीहूं यह अवसर फिर हाथ नहीं लगेगा आप क्यों भूल रहीहैं क्या कोई मनुष्य भगवान् वरुणकी समता करसकेगा ? ।

---

३२ प्रिय इति, तुमारा पति तुमारे मुखचंद्रको देखकर चकोरभावको प्राप्त हो । महाजनोंके आनेसे जिनके पाप नष्ट होजातेहैं वे किस समीहित पदार्थको प्राप्त नहीं करते ? अर्थात् उनके सब मनोरथ सिद्ध होजातेहैं ॥

३३ मधुसों इति, इस दोहे तथा आगेके संभाषणमें वज्रनामक अंग है ॥

येषामर्घघटं जनाः प्रददते पूज्याय सर्वाग्रतो
येषां लाभकृते यजन्ति सुरलोकेशं समिज्याशतैः ।
येषां पूरमपेक्षते जगति संरम्भेषु सर्वेषु ना
तेषां यः पयसां पतिस्त्वदभितस्तेनास्मि संप्रेषिता ॥ ३४ ॥

मालिका–अयि रतिरूपतिरस्कारिणि क्यों विशेष आयास करतीहैं ।

मेनका–हा कष्टहै कि ऐसे घरोंसे मुझसे अतिथिको आतिथ्य न मिले ।

मदनिका–श्रीमति आतिथ्यमें तो जलकलशादि दिएजातेहैं वे एकके स्थानमें आज्ञा हो तो सौ आजायँ दोसो आजायँ ।

मेनका–अच्छा जातीहूं, आप लोगोंको कौन समझा सकताहै ? ।

दमयंती–(उठकर) चरणस्पर्श करतीहूं ।

मेनका–सुखजीविनी हो (जातीहै) ।

दमयंती–(बैठकर) सखि मालिके अब यहां बैठना उचित नहीं चलो और कहीं चलकर बैठें ।

वासंती–(आकर) राजदुलारीकी जय हो

मालिका–फिर कैसे आई ? ।

वासंती–महाराजनलका मंगलागमन सुनानेको (सभ हर्षसे देखतीहैं) ।

दमयंती–(मनमें)

वासन्तिके वाक्यमिदं त्वदीयं
लब्धं मया कल्पपलाशिकल्पम् ।
पीयूषधारां मनसीव सिञ्च-
न्निस्सीमहर्षं मम संतनोति ॥ ३५ ॥

मालिका–तुमने कैसे जाना ? ।

---

३४ येषामिति, जिस जलका पूज्य लोगोंको आनेपर प्रथम अर्घघट दिआ जाताहै जिस जलकी प्राप्तिकेलिए लोक इंद्रके यज्ञ करतेहैं जिस जलकी लोगोंको कार्यमात्रमें अपेक्षा पडतीहै उस जलका जो स्वामी है वरुण उसने मुझे तुमारे पास भेजाहै ॥

३५ वासंतिकेति, हे वासंतिके तुमारा यह कल्पवृक्ष जैसा वाक्य मेरे हृदयमें अमृतधाराको बहाताहुआ मेरे हर्षको निस्सीम बढारहाहै ॥

वासंती–मैं इधरको आरहीथी तो महाराज सभामंडपके द्वारपर थे और भी सब लोग खडेथे एक नवीन मनुष्य भी था, यह बात होरहीथी कि निषधाधिपति भी आरहेहैं वे अतिशयित गुणी सुंदर तथा सज्जन हैं उनका संमान प्रीतिपूर्वक किआजाए।

दमयंती–(मनमें)

देवदूतिका वचनसों मन जु रह्यौ मुरझाय।
सुधासदृश इह वचन सुन फूल्यौ सो न समाय ॥ ३६ ॥

मदनिका–(वासंतीसे) हां।

वासंती–मैं यह भी अनुमान करतीहूं कि वह नवीन मनुष्य कदाचित् महाराजनलके शुभागमनका ही पत्र लेकर आयाहो।

मालिका–संभव है।

मदनिका–और भी तो बहुत राजा राजकुमार स्वयंवरके कारण आगएहैं महाराजनल भी शीघ्र आते ही होंगे।

दमयंती–मालिके चलो यहांसे नहीं तो कोई और प्राण पीनेको आजायगी।

मालिका–चलो ! (सब जातीहैं) ॥

इति अनर्घनलनाटकका तृतीयांक समाप्त हुआ।

अथ

चतुर्थांक

(स्थान कुंडिनपुर एक ओरसे मदनिका और एक ओरसे वासंती आतीहै)

मदनिका–अरि वासंति आज किस ओर चित्त लगाहै जो देखती भी नहीं।

वासंती–आह मदनिकाजी हैं क्षमाकीजिए मैंने देखा नहीं था।

मदनिका–क्या कारण।

वासंती–चलो भर्तृदारिकाके समीप ही कहूंगी।

मदनिका–क्या महाराजनलका कुछ वृत्तांत सुनाहै।

वासंती–अब वृत्तांतकी कौन बात, वे आ भी गए।

मदनिका–हां बडा हर्ष हुआ, कहां ठहरेहैं ?।

वासंती–लक्ष्मीनिवास आराम (बाग) में।

मदनिका–क्या तुम देख भी आईहो ?।

वासंती–मैं और कहांसे आतीहूं।

मदनिका–महाराजनल कैसे हैं ?।

वासंती–और तो मैं कुछ नहीं जानती इतना जानतीहूं कि मैंने आजतक ऐसा सुंदर पुरुष नहीं देखा।

मदनिका–स्वयंवरके कारण और भी तो बहुत राजा आएहें ?।

वासंती–बहुत, चारोओर राजा ही राजा दृष्टि पडतेहैं।

(संभ्रांतसा[1] महाराजनलका विदूषक आताहै)

विदूषक–(मनमें) आह बडी मूर्खता हुई जो मैं एकला नगर देखनेको चला आया, अब तो स्थानका मार्गही नहीं मिलता किससे पूछूं यदि पूछताहूं तो लोग मूर्ख कहेंगे, अच्छा ये दो स्त्रियां खडी हैं इनसे पूंछताहूं, किं तु इनको क्या कहकर पूछूं (आगे बढकर) क्या तुमलोग यहांकी ही रहनेवाली हो ?।

मदनिका–तू लुगाई कहांसे आईहै ?।

विदूषक–(मनमें) छीः छीः बडे मूर्ख बने (प्रकट) क्या आपको कुछ दिखाई देताहै ?।

मदनिका–क्यों ?।

विदूषक–यों कि मैं लुगाई नहीं हूं लोग हूं।

मदनिका–कौन गाओंके ?।

विदूषक–गाओंके नहीं किंतु बडे भारी निषधदेशके।

मदनिका–क्या आप देशभरमें रहतेहैं ?।

विदूषक–तुम क्या गाओंभरमें ही रहतीहो ?।

---

१ भाषालेखकोंमें आजकल एक नवीन मनमानी चाल चलीहै कि संभ्रांतशब्दको प्रतिष्ठित शब्दके अर्थमें लिखतेहैं न जाने उनने संभ्रांतशब्दका यः तत्त्व कहांसे जाना ऐसा यहां नहीं जानना किंतु संभ्रांतशब्दका अर्थ घबरायाहुआ है वही यहां जानना।

मदनिका–तुम कौन हो ?।

विदूषक–क्या तुम्हे विदित नहीं ?।

मदनिका–नहीं तो।

विदूषक–(हँसकर) हम महाराजनलके अमात्य हैं उन्हीके साथ आएहैं।

मदनिका–किस बातके अमात्य हो ?।

विदूषक–ये बातें ऐसे नहीं बताईजातीं।

मदनिका–तो ?।

विदूषक–कभी एकांतमें मिलो तो बताएं।

मदनिका–चल धूर्त।

विदूषक–अच्छा यह तो हुआ मेरे डेरेका मार्ग बतादो।

मदनिका–तुमारा डेरा कहां है ?।

विदूषक–जहांसे मैं आयाहूं।

मदनिका–तुम कहांसे आएहो ?।

विदूषक–जहां हमारा डेरा है।

मदनिका–वाहरे चतुर, अच्छा वहींको चलेजाओ।

विदूषक–सुंदरि अब हँसी मत करो भूखके मारे प्राण निकले जातेहैं।

मदनिका–भूख ऐसी है तो कुछ खाकर आनाथा।

विदूषक–कहती तो ठीकहो किंतु मैंने सोचा कि भोजन बनते बनते चलें कुंडिनपुरसुंदरिओंके मुखचंद्रको ही निहार आएं।

मदनिका–तू तो बडा धूर्त है।

विदूषक–नहीं नहीं मैं तो आपसे छोटा हूं चाहे साथ लगर नाप करलो।

वासंती–जाओ इसी ओर सीधे चलेजाओ नगरसे बाहिर तुम्हारा डेरा मिलेगा।

विदूषक–हां तो मैं जाऊं ? तुम्हारे पाससे जानेको तो जी नहीं चाहता।

मदनिका—तुम जाओ चाहे न जाओ हम तो जातीहैं। (जातीहैं)।

विदूषक—फिर भी कभी दर्शन देने। (स्वयं) अब तो मैं भी चलूं महाराज मेरी बाट जोहते बैठे होंगे (त्वरासे जाताहै)।

॥ इति विष्कंभक ॥

(कुंडिनपुरमें लक्ष्मीनिवासके एक उत्तमगृहमें नल बैठेहैं)

नल—संवेशे समवेक्ष्य निर्मिततनूं क्षोदेन तारापतेः
श्रुत्वा हंसमुखाच्च चञ्चलमनास्तत्प्राप्तिकामस्तथा।
सर्वा व्यापृतयो विमुच्य सृतयः संलङ्घ्य ता दुर्गमा
लुब्धो दीन इवेह कुण्डिनपुरे संप्राप्य तां चिन्तये॥ १ ॥

उस प्यारीका निवासस्थान भी यदि कहीं समीप होता तो कदाचित् कोई तरहसे दर्शन मिलता।

चढै अटारी आपुनी चंदकलासी जोय।
तृषित नयन इकटक पियौं सुधारसासव सोय॥ २ ॥

क्या मैं अपने इन तृषितचकोरनयनोंसे कभी प्राणप्यारीके वदन-चंद्रमाको निहारूंगा ? क्या आश्चर्य है—

बहुरे ग्रीषमतापको सहि सहि चातक लोल।
स्वातिबिंदुरस चाखतो अवस हि पिउ पिउ बोल॥ ३ ॥

क्या मुझे ऐसा सुखद समय प्राप्त होगा ?—

स्मितान्मनोहारि सरोरुहाकृति
द्विरेफनीकाशविलोललोचनम्।
रदांशुभिः केसरकान्तिमञ्जुलं
विलोचयिष्यामि यदा प्रियामुखम्॥ ४ ॥

---

१ संवेशेति, चंद्रमाके चूर्णसे बनाई हुई (अतिगौर) प्यारीको स्वप्नमें देखकर तथा हंसमुखसे सुनकर उसकी प्राप्तिकी इच्छावाला मैं समग्र राजकार्यको छोड विकट मार्गोंको लंघन कर दीनवत् लुब्ध होकर इस कुंडिनपुरमें प्राप्त होकर उस प्यारीका स्मरण करताहूं॥

४ स्मितादिति, स्मितसे शोभायमान नेत्र ही हैं भ्रमर जिसपर दंत ही हैं केसर जिसके ऐसे प्यारीके मुखकमलको जब मैं देखूं ऐसा समय भी कोई आएगा॥

(दो अमात्योंके साथ महाराज भीम आतेहैं)

नल-(उठकर) प्रणाम करताहूं।

भीम-मैं भी प्रणाम करताहूं। (यथायोग्य बैठतेहैं) कहिए आप सकुशल हैं ? आपके राज्यमें सर्वत्र कुशल है ?।

नल-भगवत्कृपासे। आपके यहां तो सब कुशल है ?

भीम-जब आपकी कृपा है तो क्योंकर कुशल न हो।

नल-आपने क्यों आयास उठाया मैं तो स्वयं ही आपके निकट आनेवाला था।

भीम-प्रत्युत मेरी इस धृष्टताको सहन करनाचाहिए जो मैं आपके शुभागमनके समय नहीं आया।

नल-आपको ऐसा कभी ध्यान नहीं करनाचाहिए।

भीम-ऐसा कौन है जो आपके आगमनानंतर आपके अवलोकनमें विलंबको सहन करे किंतु उस समय मेरे आनेसे आपके शयनमें निरोध होता।

एक अमात्य-किं वा-

लोचनार्हं प्रियं वस्तु यदपि स्वप्रकाशितम्।
तस्याप्यालोकने लोको दिनाऽऽलोकमपेक्षते ॥ ५ ॥

द्वितीयअमात्य-अथवा

त्वदीयवक्त्राब्जविलोकनाय यत्
प्रफुल्लतां नेत्रसरोजयोर्जनः।
अपेक्षते नक्तमसौ न संभवे-
न्निरीक्षितुं तद्दिवसे समागताः ॥ ६ ॥

---

५ लोचनेति, जो वस्तु दर्शनीय स्वयं प्रकाश भी होतीहै उसके भी देखनेको लोक दिनके प्रकाशकी अपेक्षा करतेहैं। ये सब आपसमें विलासवचन हैं ॥

६ त्वदीयेति, आपके मुखकमलको देखनेकेलिए नेत्रसरोजोंके प्रफुल्लित होनेकी अपेक्षा है नेत्रसरोज तो रात्रिमें प्रफुल्लित होते नहीं इस कारणसे किंवा दिनमें आपको देखने आएहैं ॥

भीम–और–

त्वदीयवक्त्रद्विजराजकान्ते-
नेत्रोत्पलद्वन्द्वमिदं मदीयम् ।
मयूखजालेपि रवेरसीमं
विकासमेतीति निवेदितुं वा ॥ ७ ॥

नल–खद्योतोपि निशीथिन्यां द्योतते किं तदद्भुतम् ।
दिवा मद्द्योतनं पश्येन्नलोपीति विचार्य वा ॥ ८ ॥

भीम–सौम्यत्वं तदनर्घमाकृतिरसौ दासीकृतानन्यजा
राज्यं तन्निषधे गुणेषु सकलेष्वाचार्यतेयं कृतिः ।
कौमारं च वयो विरुद्धमदताभक्षक्षमो विक्रमः
सर्वं दुर्लभमेव हारि मनसां, कस्मान्न यस्मान्नलः ॥ ९ ॥

नल–वृद्धलोग इसीप्रकारसे शिक्षा दिआकरतेहैं ।

सुतैस्तुल्यं दृष्टिः कलयति सदा देशमनुजं
यशस्तत्स्फीतं यद्विबुधतनयागानविषयः ।
रतिर्लक्ष्मीभर्तुर्वपुषि नृपता दक्षिणदिशि
किमेतत्सामान्यं भवतु च यतो भीमनृपतिः ॥ १० ॥

---

७ त्वदीयेति, आपके मुखचंद्रकी कांतिसे दिनमें भी मेरे नेत्ररूपी उत्पल विकसित होतेहैं यह बात जतानेको किंवा दिनमें मैं आयाहूं । उत्पल दिनमें विकसित नहीं होता ॥

८ खद्योतोपीति, रात्रिमें तो खद्योत भी चमक लेताहै इससे रात्रिमें चमकना बडी बात नहीं दिनमें ही मेरे प्रकाश (प्रताप) को नल देखे यह जतानेको किंवा आप दिनमें आएहैं ॥

९ सौम्यत्वमिति, आपकी सुशीलता अनुपम है रूप ऐसा जिसने कामको भी दास बनालिआ निषधमें राज्य समग्रगुणोंमें आचार्यता क्रिया भी सुंदरयुक्त कुमारावस्था और शत्रुओंके मदको नष्ट करनेवाला पराक्रम ये सब गुण मनको हरण करनेवाले तथा दुर्लभ भी आपमें हैं और क्यों न हों आप नल ही ठहरे ॥

१० सुतैरिति, आपकी दृष्टि पुत्रोंके तुल्य ही प्रजापर है आपका यश ऐसा शुक्ल है कि उसे देवकन्याएं गान करतीहैं श्रीनारायणमें आपकी भक्ति है दक्षिणदिशामें राज्य है ये सब गुण सामान्य नहीं किंतु आप भीमराजा हैं इस हेतु आपकेलिए बडी बात नहीं ॥

और- मतिर्धृतिश्चापि चतुर्मुखाद्वरा
शचीपतेः संसदि लब्धमानता।
नतिर्महत्त्वेप्यथ सौहृदं परं
गुणौघ एष त्वयि दृश्यते नृप ॥ ११ ॥

भीम-अपने पदार्थका सबकोई प्रशंसा किआ ही करताहै। यह घर आपका है इसहेतु कोई तरहका संकोच मत करना।

नल-क्या अपने घरमें भी किसीको संकोच होताहै ?।

भीम-और स्वयंवरकृत्यके कारण यदि मेरे आनेमें त्रुटि हो तो आप क्षमा करतेरहना।

नल-आप इन बातोंका ध्यान न करें।

भीम-परसोंको दमयंतीका स्वयंवरसमाज होगा इसीलिए आपको यहां पधारनेका आयास दिआहै। प्राचीनरीतिके कारण विवश स्वयंवर रचाहै यथार्थ देखाजाय तो आपसे गुणैकनिधि चक्रवर्तिकुमारके होते स्वयंवर रचना व्यर्थ ही है, अस्तु भगवान् अंतर्यामी मेरे मनोरथको पूर्ण करेंगे।

दोनों अमात्य-तथास्तु (नल लज्जासे शिर झुकातेहैं)।

भीम-अब आप विश्राम करें मैं जाताहूं फिर कोई समय आऊंगा।

नल-चित्त तो नहीं चाहता कि आप जाएं, अच्छा जो इच्छा।

(भीम और उनके अमात्य जाते है नल उठकर प्रणाम करके फिर बैठतेहैं)

विदूषक-(आकर) आप एकलेही बैठेहैं ?।

नल-आइए कहां गएथे किधरसे आतेहैं ?।

विदूषक-अमरावतीमें गएथे संयमनीसे आतेहैं (बैठताहै)।

नल-यह कैसे ?।

विदूषक-ऐसे कि कुंडिनपुर देखने गएथे लौटते समय मार्ग भूलगया और भूख कहे कि तू जाता कहां है किंतु प्रारब्धीजनोंकेलिए जंगलमें भी मंगल होजाताहै।

---

११ मतिरिति, आपके बुद्धि और धैर्य ब्रह्मासे भी बढकर हैं इंद्रकी सभामें आप मान पातेहैं इसपर भी आप परमनम्र हैं तथा प्रेमी हैं यह गुणसमूह आपमें ही पाया जाताहै। 'चतुर्मुखाद्वरा' यहां उपमानलुप्ता उपमा है॥

नल–कैसे ?।

विदूषक–ऐसे कि मार्गमें दो सुंदरी मिलगईं उनसे गप्प सप्प की उनमेंसे एकने डेरेका मार्ग भी बतादिआ।

(फलोंकी डलियांलिए दोपुरुषों सहित मदन आताहै)

मदन–श्रीमहाराजकी जय हो। (डलियां रखकर दोनों पुरुष जातेहैं)।

नल–आइए. आपके तो दर्शन भी दुर्लभ होगए।

मदन–दास तो श्रीमहाराजका ही है।

नल–कैसे आए ?।

मदन–रनवाससे महाराजकेलिए फल भेजेहैं श्रीमहाराज अवश्य इनका आस्वादन करें।

नल–इसमें भी कुछ संदेह है–

प्रियतया प्रियजीवनिवेदितं
किमिह वस्तु न साद्रमीक्ष्यते।
जलदलब्धकबन्धकणं तपे
किमु निराकुरुते किल चातकः॥ १२॥

नल–और कुछ विशेष है ?।

मदन–विशेष यही है कि समग्र राजपरिवार आपके गुणोंसे मुग्ध होगयाहै सब लोग यही कहतेहैं कि महाराजनलके साथ ही दमयंतीका विवाहमंगल होनाचाहिए यही भगवतसे प्रार्थना करतेहैं कि स्वयंवरमाला महाराजनलके कंठमें पडे।

विदूषक–मदनजी यह तो जोडा बना ही है किंतु आपने हमसे भी तो आनेको कहाथा सो हम भी आगएहैं हमे स्मरण रखना।

मदन–गारी गानेके समय आपका छोड आपके मातापिताका भी स्मरण होगा ही आप घबराएं मत।

विदूषक–अच्छा तो आप भी कभी हमारे आना।

---

१२ प्रियतयेति, अपने प्रियजनोंकी प्रेमसे दी वस्तुको कौन है जो आदरपूर्वक न देखे। मेघसे प्राप्त हुए जलकणको भी क्या चातक निरादृत करताहै ?। यहां विशेषसे सामान्य समर्थनरूप अर्थांतरन्यास अलंकार है॥

मदन–(नलसे) अब मुझे आज्ञा हो फिर कोई समय आऊंगा ।

नल–अच्छा । (मदन जाताहै) ।

विदूषक–भो वयस्य कहो तो एक बडी रसीली बात सुनाऊं ? ।

नल–सुनाओ ।

विदूषक–जब मैं । (इंद्र आतेहैं)

नल–(झट उठकर) भगवन् यह वैरसेनि पादवंदन करताहै ।

इंद्र–शुभ हो ।

नल–(कुछ ऊंचे स्वरसे) अर्घ्यं अर्घ्यं ।

विदूषक–अरघरं अरघरं ।

इंद्र–(विदूषकसे) क्यारे ब्राह्मणाधम ।

विदूषक–(भयसे पीछे हटताहुआ धीरे धीरे कहताहै) मए संसकिरती बोल्यते ।

(एक मनुष्य अर्घ्यघट लाताहै)

इंद्र–बस मैंने लेलिआ लेजाओ (अर्घ्यवाला जाताहै) राजन् आपका हमारा तो नित्यसंबंध है फिर अर्घ्यकी क्या अपेक्षा (दोनों बैठतेहैं) ।

नल–भगवन्–

स्वागताऽऽदरकृतेऽर्घ्यघटोयं
दीयते ह्यऽकृतिनेपि नराय ।
का कथा तव पुनः सुरनेतु–
श्चन्द्र एत्यपि कदा किमुपेक्षाम् ॥ १३ ॥

इंद्र–इस आदरकी अपेक्षा तो जिस कार्यकेलिए मैं आयाहूं उसपर आप ध्यान दें तो अच्छा हो ।

नल–उसकी भी आज्ञा कीजिए ? ।

इंद्र–यदि करें तो कहूं ।

नल–जहांतक शक्य है वहांतक तो नहींका काम नहीं ।

---

१३ स्वागतेति, आएके आदरार्थ अर्घजलका घट सामान्यपुरुषको भी दिआ जाताहै फिर आपकी तो क्या कथा जो घट न दिआ जाए. क्या कभी चंद्रकी भी उपेक्षा कीजातीहै ? ॥

इंद्र— बाह्वोर्बलं न विदितं तव केन राजन्
किंवा मतेरविषयो भुवि कश्चिदस्ति ।
कः सोऽस्ति यो न कुरुते शिरसि त्वदाज्ञां
शक्यं यदीति कथने नु कथं प्रवृत्तिः ॥ १४ ॥

नल—यह तो सब आपके अनुग्रहका फल है ।

इंद्र— साहाय्यं सर्वकार्येषु सर्वैः सम्यगपेक्ष्यते ।
ब्रह्मापि मायया युक्तं कर्तुं शक्तं चराचरम् ॥ १५ ॥

नल—इसमें क्या संदेह है—
लभ्यते न हि यत्सामदानभेदनविक्रमैः ।
तत्सर्वं लभ्यतेऽवश्यं साहाय्येनेति नैतिकाः ॥ १६ ॥

इंद्र— विधेहि साहाय्यमतो मदीयम् ।
नल— मयेरितं मे यदि शक्यमस्तु ।
इंद्र— इदं वचस्ते परिशोभते किम् ।
नल— अन्तःस्थितोऽस्यां गिरि मां नियुङ्क्ते ॥ १७ ॥

इंद्र—राजन् आजतक तो आप हमारे कृत्योंकेलिए सदा कटिबद्ध रहतेथे आज क्या कारण है जो ऐसे रूक्ष उत्तर देतेहैं ।

---

१४ बाह्वोरिति, हे राजन् आपकी भुजाके बलको कौन नहीं जानता तथा ऐसी कौन बात है जो आपकी मतिसे बाहिर (अविषय) हो और वह कौन है जो आपकी आज्ञाको न मानताहो फिर भी आप यदि शक्य होगा तो करूंगा ऐसा क्यों कहतेहैं ॥

१५ साहाय्यमिति, कार्यमात्रमें जीवमात्रको सहायताकी अपेक्षा होतीहै और तो क्या परब्रह्म श्रीनारायण भी प्रपंचको मायाकी सहायतासे ही बनाताहै ॥

१६ लभ्यत इति, हां यह तो सत्य है कि जो पदार्थ सामदानदंडभेदोंसे भी प्राप्त नहीं होता वह दूसरेकी सहायतासे प्राप्त होजाताहै ॥

१७ विधेहीति, इसलिए मेरी सहायता करो १ । मैं तो कहचुकाहूं कि यदि मेरा शक्य होगा तो करूंगा २ । यह वचन (अर्धस्वीकार) क्या तुम्हे शोभा देताहै ? ३ । भगवान् अंतर्यामी ही मुझसे ऐसा वचन कहाता है ४ । भारतमें भी ऐसा ही लिखा है कि देवोंके आग्रह करनेसे ही नल उनके दूत बनेहैं ॥

नल—अये देवराज सत्य कहा सभीको रूक्ष प्रतीत हुआकरताहै, मैं तो आपकेलिए अब भी कटिबद्ध हूं आप सेवाकी आज्ञा कीजिए कार्यका होना न होना नारायणके अधीन है।

इंद्र—कार्य तो यही है कि आप कुछ ऐसा उद्योग करें जो दमयंतीके स्वयंवरकी माला मुझे प्राप्त हो।

नल—मैं इसमें क्या उद्योग करूं।

इंद्र—आप दमयंतीको कहिए कि स्वयंवरमाला इंद्रके कंठमें डालनी-चाहिए।

नल—भगवन् आप ऐसे नीतिज्ञ होकर क्या बातें करतेहैं ? दमयंती क्या मेरे पास बैठीहै ? किंवा मेरी कुछ लगतीहै ? जो मैं उसे कुछ कहूं।

इंद्र—आप मेरी ओरसे दूत बनकर दमयंतीके निकट जाइए।

नल—भगवन् मैं दूत तो बनजाताहूं किंतु वह राजकन्या है मैं उससे कैसे मिलसकताहूं ?।

इंद्र—आप दमयंतीसे भेट करने जायँगे तो आपको आपकी इच्छा विना कोई देख नहीं सकेगा।

नल—वह मेरे कहनेको माने इसकी क्या संभावना ?।

इंद्र—ऐसी चतुराईसे कहिए जो मानजाए।

नल—जो आज्ञा मैं आपकेलिए दूत बनताहूं किंतु मानना न मानना उसके अधीन है।

इंद्र—आशा है कि आपके कहनेसे मानजाएगी, अब मैं जाताहूं।

नल—मैं प्रणाम करताहूं।

इंद्र—अभीष्ट सिद्ध हों (जातेहैं)।

विदूषक—(आगे बढकर) क्या जाने इनकी बुद्धि कहां गई ? किंतु–

कामोपहतचित्तानां युक्तायुक्तं स्वभाषणे।
नैव भाति, कथं भातु ? बुद्धिभ्रंशकरः स्मरः ॥ १८ ॥

नल—ये लोग कामको ही परमपुरुषार्थ मानतेहैं।

---

१८ कामेति, कामसे नष्ट होगयाहै जिनका चित्त उन्हे वक्तव्यावक्तव्य कुछ प्रतीत नहीं होता क्यों प्रतीत हो क्यों कि काम बुद्धिका नाश करदेताहै॥

विदूषक-रूप तो देखिए ? जिधर देखो उधर आँखें ही आँखें। यह भी कामका ही फल है।

(भगवान् धर्मराज आतेहैं)

नल-(उठकर) भगवन् नल नति निवेदन करताहै।

धर्मराज-सुख प्राप्त हो। (दोनों बराबर बैठतेहैं)

नल-अहोभाग्य आपने दर्शन दिए-

महाजनाः श्रीहरिपादसेविनो
विधूतदोषास्तु समानदर्शिनः।
भवन्ति सर्वत्र कृपावलोकिनः
श्रमो हि कः पद्मकृते विवस्वतः॥ १९॥

धर्मराज-राजन् आपके विनयका क्या कोई वर्णन करसकताहै ?।

महद्भाग्यं क्षितेरेतद् यत्सत्कीर्तियुता नृपाः।
त्वद्विधा विनयापन्ना अनुशासति तामिमाम्॥ २०॥

नल-यद्यपि आप्तकाम महानुभावोंके विषयमें प्रश्नकी अपेक्षा नहीं तथापि मेरे श्रवण आपके आगमनमूलको श्रवण करनाचाहतेहैं।

धर्मराज-राजन् आए अतिथिका सत्कार करना तो आपका कुलधर्म ही है।

नल-आज्ञा कीजिए ?।

धर्मराज-आपको विदित होगा कि भीमराजाके घरमें अद्वितीय कन्यारत्न है।

नल-सुनताहूं।

धर्मराज-वह रत्न जैसे मुझे प्राप्त हो वैसा उद्योग करनाचाहिए।

नल-आप कहते तो उचित हैं परंतु मैं इसमें क्या उद्योग करूं ?।

धर्मराज-आप मेरे दूतवनकर दमयंतीको मेरेलिए कहिए।

---

१९ महाजनेति, श्रीनारायणके भक्त दोषरहित तथा समदर्शी महात्मा पुरुष सबको कृपादृष्टिसे ही देखा करतेहैं। सूर्यको कमलकेलिए भी श्रम होताहै ?॥

२० महदिति, पृथ्वीका यह बडा भाग्य है जो तुमारेसे विनीत तथा यशस्वी राजा इस पृथ्वीका शासन करतेहैं॥

नल-क्या आप यह आशा रखतेहैं कि वह अपने मनोरथको छोड निजसखीजनके कथनको त्याग मातापिताकी आज्ञाका उल्लंघनकर मुझ अपरिचित विदेशीय मनुष्यका कहना माने ?।

धर्मराज-प्रशंसां मे पुरश्चापि तथा स्वर्गसुखस्य च।
युक्त्या त्वं कुरु संप्राप्य भीमजायाः पुरो नृप ॥ २१ ॥

नल-क्या फल ?।

धर्मराज-सुखाय यतते लोकः स्वर्गे सुखमनुत्तमम्।
मधुरैर्वचनैस्तेपि भीमजा मां वरिष्यति ॥ २२ ॥

नल- कुलजा बालिका देव लज्जादामातिसंयताः।
भवन्ति, मे ततो वाक्यं कथं साऽऽकर्णयिष्यति ॥२३॥

धर्मराज-आप यदि युक्तिपूर्वक चित्तसे कहगे तो क्यों न मानेगी।

विदूषक-(कर जोर) भगवन् मेरी समझसे तो यदि आप ही स्वयं जाकर कहें तो सभसे अच्छा हो।

धर्मराज-अपना सिर आप नहीं गूथा जाता।

विदूषक-दूसरेसे भी तबी गूथा जायगा यदि सिरपर बाल होंगे।

धर्मराज-(नलसे) जो हो आपको मेरेलिए दमयंतीके निकट जाना ही होगा।

नल-जो आज्ञा।

विदूषक-(धीरेसे) इसीको बरजोरी कहतेहैं।

धर्मराज-परोपकृतिरक्तानां मानसानि परश्रमैः।
विकासमेव पेसन्ति पद्मानीवातपाद्रवेः ॥ २४ ॥

मैं अब जाना चाहताहूं।

---

२१ प्रशंसामिति, मेरे नगरकी और स्वर्गके सुखकी आप युक्तिसे दमयंतीके आगे प्रशंसा करनी इससे वह मानजाएगी ॥

२२ सुखायेति, सुखकेलिए ही लोग यत्न करतेहैं स्वर्गमें तो सुख सर्वोत्तम है और आपके मधुरोपदेशसे दमयंती मुझे वर लेगी ॥

२३ कुलजेति, हे देव कुलबालिका लज्जादामसे बँधीहोतीहै इसहेतु दमयंती मेरे इस वचनको कैसे मानेंगी ? ॥

२४ पर इति, परोपकारमें अनुरक्त जनोंके हृदय परकीयपरिश्रमसे प्रफुल्लित ही होतेहैं यथा धूपसे कमल ॥

नल–(उठकर) जो इच्छा, मैं प्रणाम निवेदन करताहूं (धर्मराज जातेहैं)।

विदूषक–यह भी पाप निपटा।

नल–तुम जब क्या बात सुनातेथे ?।

विदूषक–तब.... वह बात.... हां....।

(भगवान् अग्नि आतेहैं)

नल–भगवन् मैं अभिवादन करताहूं।

अग्नि– मदाशिषा सर्वसुखं लभस्व
नश्यन्त्वऽनिष्टानि तथाऽखिलानि।
भक्तिः सदा स्याद्धरिपादपद्मे,
नल– भवत्कृपातः किल किं दुरापम्॥२५॥ (दोनों बैठतेहैं)।

विदूषक–(धीरेसे) ऊंह ऊंह (प्रस्वेद पूंछता हुआ पीछे हटताहै)।

नल–भगवन् आज कैसे इस स्थानको पवित्र किआ ?।

अग्नि–आपको देखनेकेलिए आयाहूं।

नल–तथापि कुछ विशेष श्रवण करनाचाहताहूं।

अग्नि–आप कहांतक हमारे विशेषोंको श्रवण करेंगे।

नल–भगवन्–

हरेरधीना खलु सर्वसिद्धि–
स्तथात्र भाग्यं व्यपदिश्यते तत्।
शक्यं यदि स्यादथ संविधातुं
श्रोष्यामि मे जीवितमस्ति यावत्॥ २६॥

---

२५ मदाशिषेति, मेरे आशीर्वादसे तुमको सभ सुख प्राप्त हों तुमारे अनिष्ट दूर हों तुम्हारी भक्ति सदा श्रीहरिपादोंमें दृढ रहे। आपकी कृपासे कौन पदार्थ है जो प्राप्त न हो॥

२६ हरेरिति, कार्यमात्रकी सिद्धि श्रीनारायणके अधीन है किंवा लौकिकलोग सौभाग्यके भी अधीन बतातेहैं तथापि यदि आपका कार्य मेरे करनेके शक्य होगा तो मैं जबतक जीताहूं तबतक आपके कार्यको सुनूंगा ही॥

अग्नि–जोत्स्नेव चन्द्रमोबिम्बात् पङ्कजादिव सौरभम् ।
परमं शोभते तेपि मुखाद्वचनमीदृशम् ॥ २७ ॥

नल–आप अब विशेष विस्तर न कीजिए।

अग्नि–मूल तो यही है कि ऐसा उपाय करनाचाहिए जिससे भीमसुताका।

नल–क्या भीमसुताका।

अग्नि–भीमसुताका।

विदूषक–(मनमें) क्या अग्निदेवताकी वायु तो नहीं भंडकगई ?।

नल–भगवन् वाक्य समाप्त होनाचाहिए ?।

अग्नि–भीमसुताका पाणिपीडन मुझे प्राप्त हो।

विदूषक–(धीरेसे) भगवान् न करे, ऐसा होगया तो विचारी जल मरेगी।

नल–बहुत सुंदर हो।

अग्नि–सुंदर होनेपर भी उपायके अधीन है ?।

नल–इसका उपाय तो यही होसकताहै कि भीमसुताकी किसी सखीको अपनीओर मिलाइए।

अग्नि–जब आपसे सखाके मिलनेसे कुछ न हुआ तो सखीके मिलानेसे क्या होगा ?।

नल–भगवन् यह काम मुझसे होना कठिन है और–

एवंविधेषु कार्येषु सखीनां कुशला मतिः ।
यथा कैवल्यसंप्राप्तौ भक्तिरेव विशिष्यते ॥ २८ ॥

---

२७ ज्योत्स्नेति, चंद्रबिंबसे चंद्रिकावत् कमलसे सुगंधिवत् आपके मुखसे निकलता यह वचन शोभा देताहै ॥

२८ एवमिति, यथा मोक्षप्राप्तिकेलिए श्रीनारायणकी भक्ति ही समर्थ है एवं इन कार्योंमें पास रहनेवाली सखिओंकी ही मति कुशल होतीहै ॥

अग्नि— चन्द्रबिम्बत इयं विषधारा
नीरपूर्णमुदिरादपि तापः ।
रत्नदीपत इदं हि तमिस्रं
कण्ठतोपि यदियं तव वाणी ॥ २९ ॥

नल—आप उपालंभका क्यों आयास उठातेहैं, आप ही कहिए मैं इसमें क्या उपाय करूं ?।

अग्नि—आपका कर्तव्य यही है कि आप मेरे दूत बनकर दमयंतीके निकट जाकर मेरेलिए कहिए।

नल—जो आज्ञा। किंतु स्वीकार करना न करना उसीके अधीन है।

अग्नि—मैं आपसे इतना ही चाहताहूं।

नल—मैं कहनेमें त्रुटि न करूंगा।

अग्नि—अच्छा तो मैं अब जाताहूं ?।

नल—मैं चरणवंदन करताहूं।

अग्नि—आयुष्मान् हो (जातेहैं)।

विदूषक—(वस्त्रसे पसीना पूंछता हुआ) पंखा पंखा (नलसे) क्या सोचतेहैं ?।

नल—यही सोचताहूं कि चलाथा कुछ और ही सोचकर यहां कुछ और ही होताजाताहै।

किं फलिष्यति भाग्यं मे किं भैमी प्रतिपत्स्यते।
न चिन्ताक्रान्तचित्तस्य रम्यं किमपि भासते ॥ ३० ॥

(भगवान् वरुण आतेहैं)

विदूषक—(धीरेसे) यह लो और भी आए।

---

२९ चंद्रेति, आपके मुखसे जो यह अस्वीकारकी वाणी निकली है यह ऐसी है जैसे चंद्रबिंबसे विषधारा निकले जलेभरे मेघसे ताप प्राप्त हो और रत्नदीपसे अंधकार निकले॥

३० किमिति, मेरा भाग्य न जाने कैसा फलित होगा, दमयंती न जाने क्या निश्चय करेगी इस चिंताके कारण मुझे कुछ भी प्रिय नहीं लगता। यहां गर्भसंधिका रूपनामक अंग है " रूपं वाक्यं वितर्कवत् " इति॥

नल–(उठकर) भगवन् पादस्पर्श करताहूं।

वरुण–शुभ हो (दोनों बैठतेहैं)।

विदूषक–(धीरेसे) इन गरमीजाडोंसे आज कठिन ही प्राण बचेंगे।

(शीतका नटन करता हुआ पीछे हटताहै)।

वरुण–आप सकुशल तो हैं ?।

नल–आपकी अनुकंपासे।

वरुण–आप भी दमयंतीके स्वयंवरमें पधारेहैं ?।

नल– ज्ञात्वा स्वयं देव तवानुयोगः
शिशुं यथा पृच्छति मातृवर्गः।
तथोत्तरं चात्र समर्पयामि
वैदर्भहूत्यात्र समागतोहम् ॥ ३१ ॥

विदूषक–(धीरेसे) वरुणजी भी कैसी चतुराईसे बातें करतेहैं ?।

नल–आपका इस पूछनेसे क्या अभिप्राय है ?।

वरुण–चतुर जनोंसे क्या अभिप्राय छिपारहताहै ?।

अलौकिकीयं प्रतिभाति विद्या
गुणास्पदानां भुवने पटूनाम्।
अहो किलाकारविलोकनेन
भावं विजानन्ति यदन्तरीयम् ॥ ३२ ॥

नल–आकारसे भाव चाहे जानाजाय चाहे न जानाजाय किंतु आपके मनमें जो हो उसे निःशंक कहिए।

वरुण–राजन् ऐसा कौन है जो आपसे प्रियजनोंको आयास देनाचाहे किंतु दमयंतीकी रूपसंपदा किसके मनको चंचल नहीं करती ?।

---

३१ ज्ञात्वेति, हे देव यथा माता जानबूझकर बच्चेको पूछाकरतीहै एवं आप भी जानबूझकर पूछतेहैं आपके प्रश्नका यही उत्तर है कि भीमके बुलानेसे मैं भी स्वयंवरमें आयाहूं ॥

३२ अलौकिकीति, गुणी चतुर जनोंकी यह विद्या अलौकिक है जो वे आकारमात्रसे भीतरके अभिप्रायको जानलेतेहैं ॥

नल—यदि आपका भी हृदय ऐसा है तो यत्न कीजिए

यत्नेनाचरितं कर्म सिद्धिं समधिगच्छति ।
अपचीयत आलस्यैर्यथा चन्द्रोऽसितैर्दिनैः ॥ ३३ ॥

वरुण— यत्नाम्बुसेकोपि सहायपात्रैः
प्रसाधितोऽभ्यर्हविधेर्नियोगात् ।
तर्षद्रुमं पल्लवितं करोति
वसन्तयोगेन यथा रतीशः ॥ ३४ ॥

नल—भगवन् स्पष्ट कहिए ?

विदूषक—इनकी तो इच्छा यही है कि मेरेलिए भी दमयंतीको जाकर कहिए ।

नल—क्या आपकी भी यही इच्छा है ? ।

वरुण—आज यह इच्छा किसके हृदयपर नहीं किंतु आपसे सुहृत्‌को आयास उठानापडेगा ? ।

नल—आप जैसे कहें वैसे कहूं ? ।

वरुण—मैं इसमें क्या कहूं जैसे आपको उचित तथा कार्यकर प्रतीत हो वैसे कहनाचाहिए ।

नल—जो आज्ञा, जहांतक मुझसे कहाजाएगा कहदूंगा ।

वरुण—मैं भी यही चाहताहूं । अब जाताहूं ।

नल—जो इच्छा, मैं प्रणाम करताहूं ।

वरुण—अभिलषित प्राप्त हो (जातेहैं) ।

विदूषक—क्या आप इन सभके लिए कहेंगे ? ।

नल—इसमें भी कुछ संदेह है ? ।

विदूषक—मेरा विचार तो यह है कि मत कहना ।

---

३३ यत्नेनेति, यत्नसे किआ हुआ कार्य अवश्य सिद्ध होताहै और जैसे कृष्णपक्षमें चंद्रमा क्षीण होजाताहै एवं आलस्यमें कार्य भी नष्ट होजाताहै ॥

३४ यत्नेति, यथा कामदेव वसंतकी सहायतासे ही कामाभिलाषलताको प्रफुल्लित करसकताहै एवं यत्नरूपी जलका सींचना भी सहायरूपी पात्रसे ही किआहुआ मनोरथरूपी वृक्षको पत्रपुष्प लगासकताहै । अर्थात् तुम मेरे सहाय बनो ॥

नल-विषमेष्वेव धर्मस्य परीक्षा पण्डितैर्मता।
निजाभिलाषसिद्ध्यै नो धर्मः संत्यज्यते बुधैः ॥ ३५ ॥

विदूषक-मुझे तो यह चिंता है कि इस धर्मका फल पश्चात्ताप न हो।

नल-सखे यहां तो प्रेमके भूखे हैं यदि भीमसुताका मुझपर प्रेम ही नहीं तो रूपमात्रसे मुझे भी कुछ अपेक्षा नहीं, यदि मुझपर उसका सच्चा प्रेम है तो वह और काईकी ओर देखेगी भी नहीं।

स्नेहस्यन्दनिषिक्तैर्मतिचितां चित्तं चकोरव्रतं
यत्रैकत्र रतिं तनोति तनुता नो तां समाश्लिष्यति।
गुच्छैः प्रत्युत पत्रपुष्पनिबिडं रम्यैरियं पुष्यते
यत्र क्वापि समीक्षते तरलताऽहं तां न मन्ये रतिम्॥३६॥

विदूषक-जैसे आपकी इच्छा।

नल-और वह बात तो बीच ही रही।

विदूषक-हां हां वह रसीली बात जिसे मैं सुनाने लगाथा?।

नल-हां।

द्वारपाल-(आकर) मदन गायक आयाहै।

नल-आने दो।

द्वारपाल-जो आज्ञा (जाताहै)।

विदूषक-बात सुनानेको अवसर भी मिले।

मदन-(आकर) श्रीमहाराजकी जय हो।

नल-बैठो बैठो।

मदन-श्रीमहाराज अब समय बैठनेका नहीं।

---

३५ विषमेति, विषमस्थानमें ही धर्मकी परीक्षा कीजातीहै और अपने कार्यकेलिए अच्छे लोग धर्मको नहीं छोडते ॥

३६ स्नेहेति, स्नेहरूपी स्यंदके निषेकसे मतिमान् जनोंका चित्त जहां प्रीतिरूप वेलको बढाताहै वहां वह वेल कृश नहीं होती प्रत्युत पत्रपुष्पोंके गुच्छोंसे पुष्ट ही होतीहै। जहां प्रीतिमें तरलता क्षीणता होतीहै उसे मैं प्रीति ही नहीं मानता। यहां स्नेहमें स्यंदनका शाब्द आरोप है रतिमें लताका आरोप आर्थ है इसलिए यहां एकदेशविवर्तिरूपक है। और यहां गर्भसंधिके मार्ग और उदाहरण दो अंग भी हैं।

नल—क्यों।

विदूषक—ये तो उठाने आएहैं।

मदन—महाराजने आपके परिभ्रमण (घूमने) केलिए घोडा गाडी भेजीहै आप पधारें और सभकेलिए भी गाडी आ रही हैं।

नल—अच्छा चलो (उठतेहैं)।

विदूषक—(नलसे धीरेसे) कोईके साथ आंख लडानेको गाडीमें कुछ कंकड पत्थर रखलूं ?।

नल—उपद्रव करनाहो तो तुम एकले ही जाओ।

विदूषक—हँसनेके साथ क्यों रोतेहैं, हम लोग बडे शिष्ट हैं ऐसे काम नहीं करते।

नल—(मनमें) कोई अच्छा समय शीघ्र मिले तो इन अमरोंके संदेशका भी भुक्तान करनाहै देखें क्या होताहै।

(सभ जातेहैं)

इति अनर्घनलनाटकका चतुर्थांक समाप्त हुआ।

अथ

पंचमांक

(स्थान कुंडिनपुर समय दिनका तृतीय प्रहर नेपथ्यमें)

यहां कौन है ? जाओ अमात्यदारिका मालिकासे निवेदन करो कि भर्तृदारिका श्रीदमयंतीजी गोविंदनिवास (एक बाग) को पधारतीहैं आप भी वहीं पधारें।

(एक वृद्ध आताहै)

वृद्ध—यद्यपि अपने प्रभुकी सेवा परमपुण्यका फल है तथापि इस वृद्धावस्थामें तो पापका फल ही प्रतीत होनेलगतीहै, कहां यह अवस्था और कहां यह सेवा—(चलतेहुए)

शक्तिर्नचास्ति दृशि वर्त्मनिरूपणस्य
श्रोत्रे न शब्दनिचयं शृणुतो विशेषम्।
वर्ष्म क्षमं न मम विश्लथसन्धि कृत्ये
हा देव सेवनमिदं खलु बाधते माम् ॥ १ ॥

(एक युवा पुरुष आताहै)

युवा–आप आज आंख छिपाए कहां जारहेहैं।

वृद्ध–आह क्या आप हैं ? मैंने देखा नहीं था।

युवा–आप मुझे क्यों देखनेलगे।

वृद्ध–भैया यह मेरा दोष नहीं किंतु इन अभागे नयनोंका दोष है।

युवा–कहांको चले ?।

वृद्ध–क्या पूछतेहो इस वृद्धावस्थामें भी सेवा देनीपडतीहै।

युवा–यह तो सभ सत्य कहतेहो–

सर्वं फलति मर्त्येषु कर्मव्रातविपाकतः।
तत्रापि वार्धके ह्येतत्सेवादुःखं न सह्यते ॥ २ ॥

यह तो कहो कहांको चले ?।

वृद्ध–भैया भर्तृदारिका श्रीगोविंदके दर्शनार्थ गोविंदनिवासको गईहैं अमात्यपुत्री मालिकाको वहां भेजनेकी आज्ञा देगईहैं उन्हीके घर जाताहूं।

युवा–स्वयंवरकी कुछ बात सुनाओ ?।

वृद्ध–भैया स्वयंवरका आडंबर तो व्यर्थ ही है स्वयंवर होता चाहे न होता श्रीदमयंती तो नलको ही वरेगी।

युवा–आप यह कैसे जाना ?।

वृद्ध–भैया फिर कोई समय अपने इस बातको करेंगे अब मुझे शीघ्र जानाहै।

---

१ शक्तिरिति, नेत्रमें मार्ग देखनेकी शक्ति नहीं कानसे विशेषकर सुनाई नहीं देता शरीर कामकाजके समर्थ नहीं तो भी यह सेवाका दुःख भोगनापडताहै ॥

२ सर्वमिति, यद्यपि जितने सुखदुःख हैं वे अपने ही कर्मके फल हैं तथापि वृद्धावस्थामें सेवाका दुःख सह्य नहीं होता ॥

युवा—बहुत अच्छा (दोनों जातेहैं)।

॥ इति विष्कंभक ॥

(गोविंदनिवासमें दमयंती एक लताकी शाखाको पकडे खडीहै पास मदनिका है)

दमयंती—मदनिके क्या कारण है जो मालिका अबतक नहीं आई ?।

मदनिका—आती ही होगी ।

दमयंती—(मनमें) इस नगरके वे लोग धन्य हैं जिन्होंने आज प्राणप्यारे निषधाधिपतिका मुखचंद्र देखाहोगा, हमारे तो इतने भी भाग्य नहीं जो यहां आए भी प्यारेके दर्शन हों ।

नेत्रप्रीतिकरं परं प्रतिकृतौ प्राणेशदर्शामृतं
पीत्वा तन्मुमुदे मया प्रतिदिनं पीताम्बरानुग्रहात् ।
आभीलं महदेतदेव च पुरे प्राप्तोपि जीवेश्वरो
दृष्टः पौरजनैरपीन्दुसदृशो भैम्या न संवीक्षितः ॥ ३ ॥

(मालिका आतीहै)

(प्रकट) आओ प्यारी मालिके मैं आपकी ही प्रतीक्षा कररहीहूं ।

मालिका—प्यारी सखि मैं तो आही रहीथी जो नेकसा विलंब होगया उसे क्षमा करो, मेरा तो आपके विना चित्त ही नहीं लगता ।
(सब बैठतीहैं । अदृश्यरूपसे[1] नल आरहेहैं)

नल—(मनमें) अहा यह उपवन (बाग) कैसा सुहावना है । दीर्घतिलकोंसे ऊर्ध्वपुंड्रका विडंबन करताहुआ मानो गोविंदके साक्षात्

---

३ नेत्रेति, चित्रमें प्यारेके नेत्रानंददायी दर्शनामृतको पान करके भगवान् नारायणके अनुग्रहसे प्रतिदिन मैंने बहुत सुख पाया दुःख यही है कि इस कुंडिनपुरमें आयाहुआ भी लोगोंसे देखागया भी जो चंद्र जैसा प्राणप्यारा भैमी (मैं) ने नहीं देखा यहांपर गर्भसंधिका क्रम नामक अंग है " भावतत्त्वोपलब्धिस्तु क्रमः " इति ।

---

१ हमारे देशीरीतिके नाटक करनेवालोंका तो नलका अदृश्य रूपसे आना दिखाना असाध्य ही प्रतीत होताहै तथा ऐसे असाध्य इतिवृत्तको लिखना भी संस्कृतके नाट्यशास्त्रसे निषिद्ध ही है तथापि विवश होकर लिखाहै जो पढनेवालोंको तो आनंद हो । और अंगरेजी रीतिसे थीएटर करनेवाले इस अदृश्य रूपसे आनेको दिखानेकी कोई युक्ति निकालें तो कुछ आश्चर्य भी नहीं किंतु बडी चतुराईका काम है ।

निवासका समर्थन करताहै (कुछ आगे बढकर) अहा यह कौन कुमारी खडीहै? क्या वनदेवी है किंवा नागकन्या है किंवा कोई गोविंदकी परिचारिका है। सुनाथा कि भीमकन्या गोविंदनिवासमें गईहै क्या यह वही दमयंती ही तो नहीं, अरे मन यही वह प्राणमूर्ति है जिसे तैंने हंससे सुना तथा स्वप्नमें देखाया, अहो भाग्य इन तप्त नेत्रोंके जो आज इस चंद्रकलासी नवकुमारीको देखा। अहा इसके दर्शनमात्रसे हृदय शीतल हुआजाताहै, अहो इसकी रूपसंपदा–

> कुचौ कुम्भौ किंवा करिनिटिलपिण्डावज्नघौं
> भ्रुवौ खड्गौ स्यातां चपलधनुषी शम्बरारेः।
> मुखं चन्द्रं किंस्विन्मदनसदनं पङ्कजं वा
> तनुं दृष्ट्वा तन्व्याः किमिदमिति नो निश्चिनोमि॥ ४॥

इसका तो कोई उपमान ही नहीं प्रतीत होता।

दमयंती–सखि मालिके यह छायासी क्या है?।

मदनिका–केवल छाया ही नहीं किंतु मंद मंद शब्द भी सुनाई-देताहै।

मालिका–कोई अदृश्यव्यक्ति प्रतीत होतीहै।

दमयंती–अब यहां ठहरना उचित नहीं चलो चलदें।

मदनिका–सखि डरती क्यों हो अपने तीन जनी हैं।

मालिका–अये भद्र आपको स्वागत है। कुमारीजनोंमें अव्यक्त होकर विचरना आपको उचित नहीं, इससे तो अच्छा होता यदि आप व्यक्तरूपसे इस उपवनको निहारते।

नल (मनमें) हे मन देवसंदेशको भुगतानेकेलिए इससे अच्छा अवसर मिलना कठिन है। (प्रकट) अयि भद्रे यदि आपलोग रोष न करें तो मैं व्यक्त होकर आपलोगोंसे कुछ बात कहनाचाहताहूं।

---

४ कुचाविति, इसके स्तन क्या घट ही हैं किंवा हस्तिमस्तकके पिंड हैं, इसकी भ्रुकुटि क्या खड्ग हैं किंवा कामके धनुष हैं, इसका मुख क्या चंद्र है किंवा कामका घर है किंवा पंकज है, इस सुंदरीके तनुको देखकर इसके अंगोंका उक्तरूपेण कुछ निश्चय नहीं होता। यहां प्रवरललित छंद है॥

मदनिका—यह उचित तो नहीं तथापि आपकी दूरसे वार्ता सुननेमें दोष भी नहीं आप व्यक्त हूजिए ।

(नल कुछ ही दूर व्यक्त होतेहैं, सभ चकितसी देखतीहैं)

दमयंती—(मंदस्वरसे)

चन्द्रः किंवा रतिपतिरयं धर्म एवापि साक्षा-
ज्जिष्णुर्नाकात् किमु वनमिदं द्रष्टुमायात एषः ।
सौख्यं किंचिन्नयनयुगले दर्शनेनास्य माति
पादैरग्रे सरति सखि हे कम्पते मानसं मे ॥ ५ ॥

(नल समीप आरहेहैं)

मदनिका—हे मनुजेंद्र बस वहां ही रहिए कुमारिकाओंके अतिनिकट आना उचित नहीं ।

मालिका—सखि कुछ पहचानतीहो ? ।

मदनिका—हां सखि यह आकृति उस चित्रका अनुकरण करतीहै ।

दमयंती—(मनमें) केवल चित्रका ही नहीं किंतु उस स्वप्नका भी ।

मालिका—अये भद्र आपने अपने नामसंबंधसे किस अक्षरानुपूर्वीको बडभागिनी बनायाहै तथा किस महापुरुषके वंशको अपने जन्मसे अलंकृत किआहै । आप यहां किस हेतुसे पधारेहैं तथा प्रथम किस विद्यासे और किस कारण अव्यक्त थे यह सभ कहिए ।

नल—भद्रे नाम और वंशका तो प्रस्ताव व्यर्थ है किंतु मैं तुम्हारे समीप प्रवेशकेलिए देवप्रभावसे प्रथम अव्यक्त था और इंद्रादिदेवोंका दमयंतीके समीप संदेश लेकर यहां आयाहूं ।

मदनिका—हे मनुजेंद्र हमारे अहो भाग्य जो हमने इन नयनोंसे आपकी इस माधुरी मूर्तिको निहारा, किंतु इस उच्चकुलावतंसतानुमापक आकृतिको दूतभाव सुहाता नहीं ।

---

५ चंद्रेति, क्या यह चंद्र है किंवा काम है किंवा धर्म ही मूर्तिधारी है किंवा इंद्र ही इस उपवनको देखने आयाहै, यहां उल्लेखालंकार है । इसके दर्शनसे नेत्रको सुख प्राप्त होताहै । हे सखि यह सुंदर आगे चलाआताहै इससे मेरा चित्त कांपता-है । यहांपर गर्भसंधिके उद्वेग और विद्रव दो अंग हैं ॥

दमयंती-(मनमें) वाह री मदनिके अच्छा कहा।

मालिका-भद्र अपनी व्यक्ति और वंशके अक्षरामृतोंसे हमारी श्रवण-तृषाको कृपा कर शांत करो।

नल-आयि ललने समय वृथा खोना अच्छा नहीं आप यह बताओ कि भीमसुता कौनसी है और कहां है ?।

मदनिका-अंग तिरस्कृतानंग ! आपने अपने वियोगसे किस निज-देशको व्याकुल किआहै और किन सुंदरिओंके दिनोंको दीर्घ बनायाहै ?।

मालिका-वे कौनसे निठुर मातापिता हैं जिनने आपको अपनी दृष्टिसे इतनी दूर आनेदिआ ?।

मदनिका-वह कौनसा नगर है जिसे आपने अमावास्याका शिष्य बनायाहै ?।

मालिका-(अपवार्य[1]) और रीतिसे पूछतीहूं। (प्रकट) हे सुंदर क्या नल शब्द और महाराज वीरसेनका कुल आप ही पर निर्भर है ?।

नल-यदि आपको जाननेका आग्रह है तो ऐसेही जाननाचाहिए।

मालिका-हमारे अहो भाग्य, आइए विराजिए (सिंहासन देतीहै)।

नल-आप लोगोंमें यह तृतीयव्यक्ति क्या रति है ?।

मालिका-यदि आप मन्मथ हैं।

नल-(अनसुनीकर) क्या यह रोहिणी है ?।

मालिका-यदि आप कलानिधि हैं।

मदनिका-श्रीनिषधाधिपते जिसे आप पूछरहेहैं यह हमारी भर्तृदारिका श्रीमती दमयंती है, और यह अमात्यदारिका श्रीमती मालिका है।

नल-अहो भाग्य भीमराज और उनके अमात्यप्रवरके।

मालिका-आप विराज जाइए।

नल-(पीठपर बैठकर दमयंतीसे) अयि सुंदरि मैं देवताओंकी ओरसे दूत बनकर आपके समीप संदेश लायाहूं आप सावधानतासे सुनिए।

---

१ संस्कृतवाले नाटकमें अपवार्य यह शब्द वहां लिखतेहैं जहांपर एकसे छिपाकर एकसे बात करनी हो यहांपर भी मालिका नलसे छिपाकर दमयंती और मदनिकासे बात करतीहै। वास्तवमें देखा जाय तो नाटक लिखनेवालेका पूरा भाव संस्कृतभाषामें ही प्रकट होसकताहै।

दमयंती—अतिशयित[1] खेदका स्थान है जो आप चक्रवर्ती होकर दूत बने।

नल—सुभगे अपने पूज्यपादोंका दूत बनना दोषावह नहीं होता, आप समयको व्यर्थ क्यों खोतीहैं, और प्रतीत होताहै कि देवसंदेशको सुननेकेलिए इससे अच्छा अवसर आपको फिर न मिलेगा।

दमयंती—आपसे अभ्यर्हजनोंकी आज्ञाका कौन उल्लंघन करसकताहै इस हेतु यदि आपको आग्रह है तो सुनादीजिए।

नल—मुझे दिवस्पति इंद्रने आपके पास भेजा है।

दमयंती—क्यों ?।

नल—अयि चंद्रमुखि इंद्र आपके करकमलपीडनकी अत्यंत उत्कंठा रखतेहैं।

मदनिका—उत्कंठा रखनेसे क्या होगा ?।

नल—आपकी सखीको उनकी उत्कंठा पूर्ण करनीचाहिए।

मालिका—(दमयंतीसे) सखि प्राणप्यारे आएहैं यहां कोई दूसरा है भी नहीं अब जी खोलकर प्राणप्यारेसे बातें तो करलो।

दमयंती—यह मुझसे नहीं होगा।

नल—मुग्धे तुम्हे स्वर्गसुखोंपर ध्यान देनाचाहिए आपको आज स्वर्गका राज्य प्राप्त होताहै।

दमयंती—(मालिकासे) सखि हृदयमें निवास करनेवाले ही जब मुग्धा कहतेहैं तो चतुराई कहां।

नल—आपको भगवान् शतक्रतुकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करनीचाहिए।

---

१ दमयंती इस एक ही वचनसे नल और मालिकाके वचनका उत्तर देतीहै। एवं आगे भी दमयंती बडी चतुराईसे उत्तर देगी. यथा ‘ हृदयमें निवास करनवाले ही जब मुग्धा कहतेहैं ’ इससे व्यंजित करतीहै कि मेरे हृदयमें तो आप ही बसे हैं तब मैं इद्रकी ओर कैसे देखूं इत्यादि।

यह भी यहांपर ध्यान देनेके योग्य बात है कि नल स्वयं दमयंतीमें पूर्ण अनुरक्त होकर भी किस सचाईसे देवताओंकेलिए दमयंतीको कहरहेहैं। देवताओंको भी सब वृत्तांत सत्य सत्य कहेंगे।

मुग्धे शक्रोसाववनिपातिभिः पूज्यते प्रेज्यया यः
सोपि त्वत्पादं मुकुटमणिभिर्मार्जितुं याचते त्वाम् ।
तस्याऽनर्घाभां दिवमथ पुरीं शासितुं किं न यासि ?
पातुं पीयूषं सुतनु न कथं मानसं रोचते ते ॥ ६ ॥

दमयंती–बस रहनेदीजिए ।

नल–सुंदरि यदि आपका चित्त इंद्रको नहीं चाहता तो धर्मराजको ही अपने प्रेमका पात्र बनाओ ।

दमयंती–बडे खेदका स्थान है जो धर्मराज भी ऐसा मनोरथ करतेहैं।

नल–यह भी भारी खेदका स्थान है जो आप ऐसे पूज्यकी उपेक्षा करतीहैं ।

कृतस्य भुवि कर्मणः फलनिदर्शनः सर्वदा
य एव निजलीलया हरति मानवानामसून् ।
मुरारिपदपङ्कजं मनसि संततं ध्यायति
स एव तव दासतां महिषवाहनो याचते ॥ ७ ॥

मदनिका–जनप्राणहारीके साथ कौन संबंध जोडेगा ।

नल–(दमयंतीसे) आप कहिए क्या इच्छा है ? ।

दमयंती–मेरे मुंहसे सुनकर क्या कुछ अधिक होगा ।

नल–चंद्रमुखि यदि आपका मन धर्मराजकी ओर भी नहीं जाता तो भगवान् वैश्वानरके ही अभिलाषपादपको प्रफुल्लित करो ? ।

दमयंती–अये चक्रवर्तिचूडामणे आप मेरे इस दुःखित हृदयको इन कठोर वचनोंसे क्यों दग्ध करतेहैं ।

---

६ मुग्धेति, हे मुग्धे जिस इंद्रको राजा लोग यागमें पूजा करतेहैं वह इंद्र तुमारी चरणसेवाको चाहताहै (मानके समय प्रिय प्रियाको चरण पकड मनाया करताहै) उस इंद्रके स्वर्ग तथा नगरके राज्य करनेको तू क्यों नहीं जाती और अमृतपानको तुमारा मन क्यों नहीं चाहता । यहां कुसुमललिता छंद है ॥

७ कृतस्येति, जो जीवोंके किए कर्मका फल देताहै जो लीलामात्रसे जीवोंके प्राणको हरताहै जो श्रीनारायणके चरणका सदा ध्यान करताहै वह धर्मराज (यम) तुमारी दासताको चाहताहै ॥

नल–अयि विदर्भललनालालितचरणे आपको पूज्यपाद अमरवृंदमेंसे किसी एककी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करनीचाहिए अन्यथा देवतापराध कुछ सहजसी बात नहीं ।

दमयंती–हे भद्र यह तो मैं भी समझगईहूं कि मेरा जन्म दुःखभोगकेलिए ही है ।

नल–आप ऐसा निर्वेदवचन क्यों कहतीहैं आपके भाग्यमें तो सभी सुख लिखेहैं किंतु आप जानबूझकर उन सुखोंको लात मारतीहैं । आप कुछ ध्यान तो दीजिए–

वामे मूर्तित्रयेण ज्वलदतिशिखिना पीतरक्तच्छटेन
याग गृह्णाति पूजां सुरमुनिनृकृतामाहुतिं चापि दत्ताम् ।
यामिन्यामुष्णरश्मेः प्रतिनिधिरपि यः कल्प्यते तन्वि देवैः
सोप्यग्निर्देवदेवः शिरसि करपुटं कल्पयन्नाथति त्वाम् ॥८॥

दमयंती–आप क्यों व्यर्थ आयास उठातेहैं । खेदका स्थान है कि आपने कोई ऐसी आज्ञा न की जिसे संपादन करके मैं अपनेको कृतकृत्य समझती ।

नल–अच्छा यदि आपका हृदय भगवान् चित्रभानुकी ओर नहीं झुकता तो भगवान् वरुणपर ही कृपादृष्टि कीजिए ।

दमयंती–महाराजजी मैं तो सुनती हारगई किंतु आप सुनाते न हारे ।

नल–भद्रे दूतभाव ऐसा ही है, मैं कपटदूत नहीं हूं, मैं हृदयसे चाहताहूं कि आप किसी एक अमरकी ओर प्रेमदृष्टि दें, सुजनमार्गसे भी यही प्राप्त है कि जहांतक बने जीव परकार्यकेलिए यत्न करे ।

दमयंती–मुझसे आपकी इस आज्ञाका परिपालन नहीं होसकता ।

नल–सुंदरि आप यह नहीं सोचतीं कि जिनके दर्शनको भी लोग

---

८ वाम इति, हे वामे जो अग्निदेवता अपनी दक्षिणाग्नि गार्हपत्य और आहवनीय इस मूर्तित्रयसे देव मुनि और नरोंसे की पूजा और दी आहुतिको ग्रहण करताहै, जिसे रात्रिमें देवतालोग सूर्यका प्रतिनिधि बनातेहै वह देवदेव अग्नि भी कर जोर तुमारी याचना करताहै । नाथति यहां याचना अर्थमें परस्मैपद है । यहां बराबर गर्भसंधि चलरहीहै कहा भी है “ गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ” नलप्राप्तिमें विघ्न आनेसे बीज नष्टप्राय है विज्ञ स्वयं ही सभ समझ जाएंगे ॥

तरसतेहैं वे अमर तुम्हारेलिए तड़फरहेहैं, इनमेंसे किसी एकको स्वीकार करनेसे आप मेरी भी प्रणामभूमिपर पहुंच जायँगी।

दमयंती–हाय मैं तो आपके पादकमलोंको अपने इस आंचलसे पोंछना चाहतीहूं आप ऐसे कहतेहैं ? हाय मेरे भाग्य।

नल–(मनमें) इधर इस सुंदरीके वचन हृदयको विदीर्ण करतेहैं उधर धर्मदौत्यमें बंधाहूं अच्छा (प्रकट) भद्रे तुम्हे भगवान् वरुणके ऐश्वर्य की ओर भी तनिक निहारना चाहिए–

जलानां तद्राज्यं परमहिमता पश्चिमाशा सुहासा
सुधा पातुं स्नातुं त्रिदशतटिनी यस्य पाशश्च शस्त्रम्।
प्रचेतास्त्वच्चेताः स तु तव रतेः सर्वभोगे विरक्तो
विधेस्ते सीमेयं यदसि सुभगे वाञ्छिता देवलोकैः ॥ ९ ॥

दमयंती–आप अभी कबतक इस व्याख्यानको सुनाएंगे ?।

नल–बस मैने जो सुनानाथा वह सुनादिआ, आप भी जो करेंगी वह अपनी इच्छानुसार ही करेंगी किंतु इतना जानलेना कि अधिक हठ अच्छा नहीं होता

दमयंती– मनस्त्विदं ते मुखपङ्कजेस्मि-
श्चिरेण भृङ्गीव विलुब्धमस्ति।
त्वं यत्पुनस्तत् क्षिपसीव तुच्छं
नारायणः किं नहि तत्र साक्षी ॥ १० ॥

---

९ जलानामिति, भगवान् वरुण जलोंके राजा हैं इस हेतु शीतलता भी बहुत है और पश्चिमदिशाके राजा हैं उनके साथ तुमारा विवाह होनेसे तुमको अमृत पान करनेको श्रीगंगा स्नान करनेको मिलेगी, ऐसे भगवान् वरुण तुमारी प्रीतिके कारण भोगमात्रसे विरक्त होगएहैं, हे सुंदरि तुमारे सौभाग्यकी यह सीमा है जो देवलोग भी तुम्हे चाहतेहैं। यहां मेघविस्फूर्जिता छंद है॥

१० मन इति, यथा भृंगी पंकजमें अनुरक्त होतीहै तथा मेरा यह मन तो बहुत कालमें आपके मुखकमलमें अनुरक्त है आप जो मेरे उस अनुरक्त मनकी उपेक्षा करतेहैं इसमें श्रीनारायण ही साक्षी हैं। यहांपर पूर्वार्धमें दमयंतीने अपने प्रेमको प्रकट किआहै इससे गर्भसंधिका क्षितिनामकअंग है, और उत्तरार्धमें रोप प्रकट करनेसे त्रोटक नामक अंग है॥

नल–अयि, अन्यशंकिते ऐसा न जानो किंतु अपना जो प्यारा होताहै उसे वही संमति दीजातीहै जिसमें उसका हित हो स्वार्थसाधक प्रेमी नहीं कहासकते।

मुखे तिक्तं वचः सत्यं प्रवदन्ति हितैषिणः।
अवसाने तथाप्येतन्मधुतोपि विशिष्यते॥ ११॥

दमयंती–अब आप कृपा कर इन हितवचनोंको समाप्त करें और मुझे अपनी[1] (अर्धोक्तिका नटन करतीहै)।

नल– मुग्धे त्वदीयरमणीयगुणौघदाम्ना–
माऽऽनाय एण इव चित्तमिदं निबद्धम्।
उक्तं मया यदपि देवनिदेशतस्तद्
वृद्धा भवन्ति यदनुत्क्रमणीयवाचः॥ १२॥
धन्यो देवाववादोयं यन्मिषेण मया तव।
वक्त्रं पूर्णेन्दुबिम्बेन तुल्यं संप्रति वीक्षितम्॥ १३॥

दमयंती–कान्त्या चन्द्रकरानुकारि रुचिरं कर्पूरपूराद्भुतं
रामाप्रीतिविवर्धनं निषधजैरास्वादितं यज्जनैः।
जीवंजीव इवात्र नेत्रचषकैराचम्यमानं नरै-
स्तत्ते रूपमिदं मया प्रिय धितं तत्सुप्रभाता निशा॥१४॥

११ मुख इति, हितैषी लोग सत्य ही वचन कहाकरतेहैं चाहे वह कटु भी हो किंतु अंत्यमें सुखद होनेके कारण मधुरे भी मीठा लगताहै॥

१२ मुग्ध इति, हे मुग्धे मेरा चित्त भी हरिणके सदृश तुम्हारे सुंदरगुणौघरूपी डोरोंके जालमें फँस रहाहै यह जो कुछ कहाहै वह देवतासंदेशसे कहाहै क्योंकि बडे लोगोंकी आज्ञाका उल्लंघन करना अच्छा नहीं होता॥

१३ धन्येति, यह देवताओंका संदेश धन्य है जिसके कारण मैंने तेरा मुखचंद्र देखा

१४ कान्त्येति, हे प्यारे चंद्रकिरणसा उज्ज्वल कर्पूरसा सुंदर स्त्रीजनोंको सुख देनेवाला निषधदेशीयजनोंसे आस्वादित (देखाहुआ) इस समय जिसको कुंडिनपुरवासी नेत्ररूपी चषकों (प्यालों) से पीरहेहैं वह आपका रूपामृत मैने भी पिया इस हेतु आजकी बीती रात्रि सुप्रभात होगई अर्थात् आजका दिन बडा भाग्यवान् है।

[1] मुझे अपनी दासी समझें ऐसा कहना चाहती थी किंतु लज्जासे समग्र वाक्य कहा नहीं गया

नल—कमलवदने तुमने जो काम करनाहै वह अपनी इच्छासे करनाहै किंतु यदि तुम किसी एक देवको न वरोगी तो देवलोग मुझपर संदेह करके रुष्ट होंगे।

दमयंती—आपपर रुष्ट होनेका कोई हेतु नहीं आप देवलोगोंसे कहदीजिए स्वयंवरमें आएं मुझे जो काम करना होगा वह उनके संमुख ही करूंगी।

(नेपथ्यमें)

ऐन्द्र्यां रक्ततनुर्विभाति शशभृत् तप्तांशुरस्ताचले
ताटङ्कद्वयभारशोणसुमुखी नाकेन्दिरा लक्ष्यते।
किं वा वल्लभभाविसंगममुदा बिन्दू धृतौ गण्डयोः
किं स्विन्मानलताऽऽलवालयुगलं दूरीकृतं भासते ॥१५॥

सखे वाह वाह—

ज्योतिर्बृहाते दीपिकासु सकलां द्रष्टुं सुलीलां रते-
र्भास्वद्वल्लभविप्रलम्भवशतो म्लानं नलिन्या मुखम्।
संध्यावन्दनमग्नविप्रबटुका गच्छन्ति पद्माकरं
वेशं श्वेतमितो दधाति दयितं गन्तुं सुवेश्याजनः॥ १६॥

नल—अयि विदर्भललनाचूडामणे सायंकाल होगयाहै मैं अब जानेकी आज्ञा चाहताहूं।

मालिका—सुंदरशिरोमणे किसका मुंह है जो आपको जानेकेलिए अनुमति दे।

---

१५ ऐन्द्र्यामिति, पूर्वदिशामें लाल लाल चंद्रमा उदय होरहाहै पश्चिममें लाल लाल सूर्य अस्त होरहाहै वे दोनों आकाशलक्ष्मीके कानके दो ताटंक हैं और उन ताटंकोंके बोझसे ही मानो आकाशलक्ष्मीका मुख लाल होरहाहै। किंवा सूर्य चंद्रमा नहीं किंतु आकाशलक्ष्मीने अपने दोनों कपोलोंपर दो लाल बिंदु लगाएहैं किंवा मानरूपी लताके दो आलवाल दूर पटके हुए चमकते हैं॥

१६ ज्योतिरिति, दीपक जलाते ही एक बार ज्योति बढाकरतीहै वह जो बढरहीहै सो मानो रतिलीलाको देखनेकेलिए बढरहीहै। सूर्यरूपी प्यारेके वियोगसे कमलिनीका मुख म्लान होगयाहै। बालक लोग संध्यावंदनकेलिए तालावको दौडे जारहेहैं। वेश्यालोग अपने अपने प्यारेके पास जानेको श्वेत वेश धारण कररहीहैं। दोनों श्लोक सायंकालका वर्णन है॥

नल–सुंदरि किसका हृदय है जो आप लोगोंसे पृथक् होनाचाहे किंतु क्या किआजाय अतिकाल होरहाहै ।

मालिका–भगवदनुग्रहसे आपका यह दर्शनामृत हमें सदा प्राप्त होतारहे ।

नल–(दमयंतीकी ओर देखते हुए जातेहुए मनमें) अहो भीमसुताकी मोहनीशक्ति कि नेत्र उधरसे हटते ही नहीं, पाउं आगे बढते ही नहीं ।

चितचिंतित पिय पायके जो कहुँ बिछुरन होय ।
मनु पीयूष पिवायकै विधि विषसिंधु डुबोय ॥ १७॥ (नल गए)

दमयंती–(मनमें) सुखका समय कैसा तुरत बीत जाताहै, प्राणप्यारे गए अब वही पलाशके तीन पात ।

प्रियसंगमसुख निरखिए नित मिलिए चित लाय ।
पुनि वियोग दुख देखिकै ना मिलिए मन आय ॥ १८ ॥

मालिका–मदनिके वह काम ठीक किआ ? ।

मदनिका–जी हां ।

मालिका–तो विलंब क्या है ? ।

मदनिका–कुछ नहीं (मदनिका ताली देतीहै झट अनेक सखी आतीहैं) ।

दमयंती–मालिके यह क्या बात है ? (चकितसी देखतीहै) ।

मालिका–सखि और कुछ बात नहीं, मैंने आपके मनोविनोदकेलिए एक छोटासा नाटक बनायाहै ये अपनी सहेलीजन उसका अभिनय करेंगी ।

दमयंती–नाटकमें किसकी कथा है और उसका नाम क्या है ? ।

मालिका–यह सब अभी मत पूछिए कृपाकर देखिए क्या होताहै ।

दमयंती–क्यों इतना आयास करतीहो ।

मालिका–मदनिके विलंब न करो ।

मदनिका–जो आज्ञा । (और सखिओंसे) आप लोग अपना अपना कार्य आरंभ करो ।

सब–बहुत अच्छा । (सब जातीहैं । सन्मुख एक नाटकगृह दिखाई देताहै । मदनिका फिर ताली देतीहै झट एक सखी सूत्रधारका वेश धारण किए आतीहै)

सूत्रधार–देवसंघं परित्यज्य यं प्राप्ता जलधेः सुता ।
नमस्तस्मै मुकुन्दाय मनःस्पृहितदायिने ॥ १९ ॥

दमयंती–साधु मालिके साधु ।

सूत्रधार–सभासदजनाऽऽलोललोचनानन्ददायकम् ।
कृतं मालिकया नाट्यं दमयन्तीस्वयंवरम् ॥ २० ॥

दमयंती–(कुछ रोषसे) मालिके आप अभीसे मेरी हँसी उडाने लगीं, तुमको ऐसा उचित नहीं, दुःखित जनोंको किस दृष्टिसे देखना चाहिए इस अधीत विषयपर ध्यान दो ।

मालिका–सखि मैने तो आपके मनोविनोदार्थ यह नाटक बनायाहै और उसके अभिनयका प्रबंध किआहै आप उलटा रिसातीहैं ? ।

दमयंती–अच्छा तो तुम देखो मैं जातीहूं (उठतीहै) ।

मालिका–हे प्यारी मैं कर जोर निवेदन करतीहूं तनिक ठहरो देखकर मेरे परिश्रमको तो सफल करदो ? ।

दमयंती–बस बस (जाना चाहतीहै) ।

मालिका–सखि यहां सभ करने देखनेवाली अंतरंग ही हैं फिर किससे लजातीहो तथा क्यों रिसातीहो । आपकी इस पातिव्रत्यकथाको तो स्वर्गमें भी देवकन्याएं गान करेंगी कृपा कर विराजिए (मदनिका और मालिका जैसे कैसे दमयंतीको बिठातीहैं) ।

---

१९ देवेति, समुद्रसे जब लक्ष्मी निकलीहै तब सभी देवलोग खडेथे वहां और समग्र देवोंको छोडकर लक्ष्मी जिस श्रीनारायणको प्राप्त हुई उस मनके मनोरथ पूर्ण करनेवाले श्रीनारायणको प्रणाम है । इससे दमयंतीका नलको प्राप्त होना सूचित किआहै ॥

२० सभेति, देखनेवाले सामाजिक लोगोंके नेत्रोंको सुख देनेवाला मालिकाने दमयंतीस्वयंवर नामक यह नाटक (गर्भांक) रचा है । यह गर्भांक वस्तुगत्या मेरा ही रचाहै किंतु चमत्कारार्थ दमयंतीकी सखी मालिकाका नाम लिख दिआहै ॥

---

१ पाठकवर यहांसे गर्भांक आरंभ हुआ यह संस्कृतके नाट्यशास्त्रकी गीतिका गर्भांक है यह श्लोक इस गर्भांकका बीज है नलप्राप्ति ही इसका फल है कहा भी है ‘ अङ्कोपरः स गर्भांकः सबीजः फलवानपि ’ इति । नाटक खेलनेवालेंको इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि यहांपर देखनेवाली दमयंती और उसकी कुछ सखी ही हैं इसलिए यहांपर टिकट बांटनेका खेल नहीं करना क्योंकि यह नाटक चोरीसे खेला जारहाहै ।

(एक पहरेवाला आकर नाटकगृहके आगे पडदा देताहै । नेपथ्यमें)

अरे राजकुमार देरसे अपने अपने सिंहासनपर बैठहैं दमयंतीको शीघ्र लाओ विलंब उचित नहीं ।

सूत्रधार–वाह वाह साथिओंने तो अभिनयका आरंभ भी करदिआ अब मुझे भी शीघ्र भीतर जानाचाहिए ।

ग्रन्थकर्तुस्तथास्माकं पश्यन्तु पटुतां जनाः ।
नलैकव्रतवैदर्भ्याश्चरित्रे को न रज्यते ॥ २१ ॥ (जाताहै)

॥ इति प्रस्तावना ॥

दूत–(आकर) पहरेवालेजी महाराजने (भीमने) आज्ञा दी है कि स्वयंवरमंडपका पडदा उठादो और कोईको मत रोको सब लोगोंको यथेच्छ देखनेदो । मैं जाकर राजकुमारीको भेजताहूं ।

पहरेवाला–बहुत अच्छा (दूत जाताहै । पहरेवाला स्वयंवरमंडपका पडदा उठाताहै । स्वयंवरमंडपमें एक ओर विदर्भीय राजकुमार सिंहासनोंपर बैठे हैं । एक ओर कुंडिनपुरके महाराजभीमादिलोग यथोचित स्थानोंपर बैठेहैं कुछ खडेहैं । पडदा उठनेसे कुछ और भी लोग देखने आतेहैं । मनमें)

वाह रे वाह स्वयंवरमंडपकी कैसी शोभा बनीहै देखते आंखोंको चकचौंधी लगतीहै (एक ओर हटकर खडा होताहै) ।

(नेपथ्यमें) इधरसे इधरसे । (आगे आगे प्रतीहारी पीछे पीछे पतिंवरावेशसे सिर झुकाए दमयंती आतीहै नेपथ्यमें बाजा बजकर बंद होताहै) (दमयंतीके पीछे पीछे आनेवाली कुछ सखियां स्वयंवरमंडपके द्वारपर खडी एक मंगल दोहा गातीहैं–)

सखीलोग–कमलापति मंगल करें सुखकर साधें काज ।
कुंडिनपुरबाला खडी निरखत नयन समाज ॥ २२ ॥

२१ ग्रन्थेति, ग्रंथकर्ताकी और हम खेलनेवालोंकी चतुराईको लोग देखें । और नलमें अनन्य प्रेम रखनेवाली दमयंतीके चरित्रसे कौन है जो प्रसन्न न हो । अर्थात् दमयंतीकी कथाके कारण इस नाटकको देखकर लोग अवश्य प्रसन्न होंगे । यहां प्रस्तावना समाप्त होगई और गर्भांकमें विष्कंभक होता नहीं ॥

१ यहांपर एक सखीने ही पहरेवालेका रूप धारण किआहै एवं आगे भी इस गर्भांकमें जो जो मनुष्य दिखाईपडेंगे वे वस्तुगत्या दमयंतीकी सखी ही हैं । स्वयंवरको देखने जो आएंगे वे भी वस्तुगत्या दमयंतीकी सहेली ही है यहांपर दमयंतीकी सखीजनोंके विना यथार्थ रूपेण दूसरका प्रवेश नहीं ।

प्रतीहारी-(भीमादिकी ओर कर जोर) भर्तृदारिका श्रीदमयंती अपने पूज्य पादोंको प्रणाम निवेदन करतीहैं। (दमयंती सिर झुका प्रणाम करतीहै)।

सभवृद्ध-शुभ हो कल्याण हो।

प्रतीहारी-(राजकुमारोंकी ओर) भर्तृदारिके ये ही राजकिशोर हैं जो तुम्हारे पाणिपीडनके मनोरथसमुद्रमें मग्न होरहेहैं, इनमेंसे जिसे आप चाहो उस एक युवराजको उक्त मनोरथसमुद्रसे पार करसकतीहैं (राजकुमारोंको दिखाते है)

सर्वेप्येते गुणै रूपै रम्या रम्यविभूतयः ।
त्वद्गुणौघाजितात्मानस्त्वन्मुखाऽऽकृष्टदृष्टयः ॥ २३ ॥
त्वदीयरूपलावण्यश्रवणाऽधीरवृत्तयः ।
स्वदेशादपि दूरात्तु त्वत्कृतेत्र समागताः ॥ २४ ॥

(नेपथ्यमें)

रत्नोल्लासेन साम्यं सुरपतिसमितौ संभवेन्नैव येषां
प्रत्यग्रेष्वेषु भास्वन्मृदुपटकुथवत्स्वर्णसिंहासनेषु ।
वक्त्रे राजीववन्द्या उरसि सुविपुलाः स्कन्धदेशे गजेन्द्रा
राजन्ते राजपुत्रा रतिपतिमपि ये न्यक्कृतिं दर्शयन्ति ॥ २५॥
वैदर्भ्या भर्तृविक्रो क्षितिपतितनुजा जातचेतोविकारा
राकाचन्द्रोरुरूपा रणगतिनिपुणा नर्मभावैकभोगाः ।
भैमीभावेन बद्धा बत पतिवरणे स्वं स्वभावं वदन्तो
निन्दानीयेवमन्तः कृतपुरुमतयस्ताद्धि संकल्पयन्ति ॥ २६ ॥

२३ सर्वेति. ये सब राजा रूप और गुणाले रम्य हैं बडी विभूतिवाले हैं इनके चित्त तेरे गुणोंके वश होगएहैं और ये सब तेरे मुखको देखरहेहैं ॥

२४ त्वदीयेति, तुमरे रूप और लावण्यके श्रवण करनेसे इन सभनके चित्त अधीर होगएहैं अत एव अपने अपने देशसे तेरेलिए यहां आएहैं ॥

२५ रत्नेति, रत्नोंकी शोभासे जिनके सदृश इंद्रकी सभामें भी सिंहासन नहीं हैं ऐसे सुंदर नवीन और गद्देदार स्वर्णसिंहासनोंमे राजकुमार जिनके मुख कमलसे भी सुंदर हैं उरःस्थल (छाती) विस्तृत हैं स्कंध जिनके गजेंद्रसे ऊंचे हैं कामको भी लज्जित करनेवाले यहां विराजमान हैं ॥

२६ वैदर्भीति. दमयंतीका जो भर्तृविक्रि=पतिका विक्रयण=खोज (स्वयंवर) है

१ इस प्रतीहारीका वेश भी सुंदर होना चाहिए।

भैम्या भर्तुर्विवीर्णिक्षणसलिलनिधौ नत्विदं राजचक्रं
राकाचन्द्रस्तु साक्षात् कृतपुरुसुतनू राजते रम्यरूपः ।
वैदर्भक्षोणिपाणेरियमपि तनुजा नास्ति किं तूर्ध्वकेतु-
र्दामव्याजेन दिव्या रतिपतितरणी रूपमन्दाक्षपूर्णा ॥ २७ ॥
ऐश्वर्यस्यैकसीमा मतिरति रमते कृत्तसंमानशक्ति-
र्यत्र प्रकान्तवस्त्वऽप्रतिभटनिकरः प्रेक्ष्यते मण्डपोयम् ।
वैदर्भा बालवृद्धा हृदि कृतसुमहा वीक्षणार्थं च यस्या
दृष्टा सा भीमजायाः पतिवृतिसमितिस्तत्तमी सुप्रभाता॥२८॥

सभलोग–साधु कविशिरोमणे साधु । (फिर नेपथ्यमें)–

दृष्टः शोभैकसिन्धुः.... ....

भीम–बस बस विशेष कविता सुननेको अवकाश नहीं ।

प्रतीहारी–राजकिशोरि इस प्रथमसिंहासनपर विराजमान कामको भी तिरस्कृत करनेवाला जो राजकुमार है यह अयोध्याधिपति है–

उसमें जिनके चित्त विकृत (कामाक्रांत) होगएहैं चंद्रमासे भी सुंदर रणमें चतुर हासप्रीतिका भोग करनेवाले (रसिक) दमयंतीकी प्रीतिमें बद्ध दमयंतीके पतिवरणमें नेत्रसे अपने आपको निवेदन करनेवाले (मुझे वरो इत्यादि) और मैं ही दमयंतीको पाऊंगा इत्यादि मतिवाले राजकुमार दमयंतीप्राप्तिके ही यहां संकल्प मनोरथ कररहेहैं ॥

२७ भैम्येति, दमयंतीके स्वयंवरोत्सवरूपी समुद्रमें यह राजसमूह नहीं किंतु चंद्रमा ही अनेकरूप धारण कर बैठाहै । और दमयंती भी भीमकी कन्या नहीं किंतु रूप और लाजसे भरी स्वयंवरमालारूपी झंडीवाली मानो कामदेवकी नाव ही है । उत्प्रेक्षालंकार है ॥

२८ ऐश्वर्येति, ऐश्वर्यकी सीमा, माति जिसकी तुलना नहीं करसकती, जिसमें समग्र पदार्थ अनुपम ही हैं, विदर्भवासी जिसके देखनेकी बहुत कालसे इच्छा करतेथे, वह दमयंतीकी पतिवरणसभा=स्वयंवर आज देखा इससे आजकी रात सुप्रभात होगई आजका दिन भाग्यवान् है ॥

योऽयोध्याचक्रवर्ती ह्युतुपदपरतः पर्ण इत्येतदाख्यः
सङ्ख्याशास्त्रैकयोनिर्गणयति निखिलं लोचनाग्रे पतन्तम् ।
वंशे यस्याऽवतीर्णो हरिरपि भविता रामचन्द्रेतिनाम्ना
दर्पोदग्रद्विषन्तं दलति च, ललने पश्य तं रूपसिन्धुम् ॥२९॥

दमयंती–आगे चल।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) तिरस्कृततडिल्लते ! इस द्वितीय सिंहासन-पर जो अपने मुखसे चंद्रबिंबको भी लज्जित करनेवाला राजकुमार है यह मथुरापुरीका युवराज है–

चेतःकल्हारकोशे रतिरपि रमते वक्त्रचन्द्रे च कान्तिः
कौमार्यैकान्तमूर्तौ रतिपतिपरता रक्तिमा चाधरोष्ठे ।
प्रीतिः संकेतवासे स्मृतिरतिसरसा शम्बरद्वेषिशास्त्रे
साहित्ये यस्य सोयं रसिकसुरपतिः पाति घोषप्रदेशम्॥३०॥

दमयंती–(धीरेसे) आगे।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) चंद्रवक्त्रे इस तृतीय सिंहासनको अलंकृत करनेवाला धीरगंभीरप्रकृति काशीनरेश है जो–

पुरारिपादाम्बुरुहद्विरेफो
मनीषिसंगेन विधूतदोषः ।
सदा बुधैः शास्त्रविचारधीरो
वाराणसीवास पवित्रगात्रः ॥ ३१ ॥

---

२९ योयोध्येति, जो अयोध्याका चक्रवर्ती है जो संख्याशास्त्रका उत्पत्तिस्थान है देखताही पदार्थको गिनलेताहै जिसके वंशमें श्रीरामचंद्रनामसे श्रीनारायण अवतार लेंगे और जो उग्रशत्रुओंको दलन करनेवालाहै उस रूपके सिंधु ऋतुपर्ण नामवाले महाराजको देख॥

३० चेत इति, यह ऐसा सुंदर और रसिक है कि इसके चित्तकमलमें रति रमण करती है अर्थात् इसके चित्तमें प्रीति भरीहै, तथा मुखचंद्रमें कांति, कुमारता व्याप्त तनुमें कामसे भी उत्तमता, अधरोष्ठमें रक्तता भरीहै। इसकी संकेतवासमें प्रीति अधिक है। इसकी स्मृति कामशास्त्र और साहित्यशास्त्रमें रमण करतीहै अर्थात् ये दोनों शास्त्र इसके अधिक उपस्थित हैं ऐसा यह राजकुमार बड़ा रसिक है और मथुरा प्रदेश (व्रज) का राजा है॥

३१ पुरारीति, यह राजा श्रीमहादेवजीके चरणका भक्त है सत्समागमसे निर्दोष होगयाहै शास्त्रविचारमें धीर है और काशीवाससे पवित्र शरीरवाला है॥

दमयंती–और आगे।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) मृगांकमंडलोज्वले ! इस चतुर्थसिंहासनपर धर्मराजसा शोभायमान काश्मीरनरपति विराजमान है।

फलानि यत्र दिव्यानि यः पृथिव्यां बुधालयः।
तस्य काश्मीरदेशस्य राजा धर्मपरायणः ॥ ३२ ॥

यत्र श्रीनगरीयरम्यरचना रथ्या वितस्ताऽऽस्थिता
स्थानात्स्थानमियन्ति पामरजना अप्यल्पपोतस्थिताः।
काश्मीराद्भुतदाम वामवनितावक्षोजरक्षाक्षमं
द्राक्षागुच्छभराऽऽनता व्रततयः काश्मीरदेशः स हि॥३३॥

दमयंती–(धीरेसे) आगे बढ।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) चन्द्रचूर्णचर्चिते ! इस पंचमसिंहासनको सुशोभित करनेवाला यह भूपाल उज्जयननरपाल है–

यद्दानेन दरिद्रदम्पतिविपत्सद्मानि पद्मान्यपि
पद्मानीव सुदन्तिदानदयितैर्दीव्यन्ति भृङ्गैः सदा।
सद्यः सद्गुणसारसंस्कृतसतां संमानसन्तानकः
साहित्यस्य सुधीः समित्सुखस्मृतिः सोयं सुधर्मा नृपः॥३४॥

दमयंती–आगे चल।

---

३२ फलानीति, जिस काश्मीरमें दिव्य फल होते हैं जो पृथ्वीमें द्वितीय स्वर्ग कहाताहै उस काश्मीरका यह धर्मपरायण राजा है॥

३३ यत्रेति, काश्मीरदेश ऐसा सुंदर है कि उसके श्रीनगरके मार्ग बडे सुघड बने हैं और उनमें वितस्ता (जेल्हम) नदी बहरहीहै जहां एक स्थानसे दूसरे स्थानको पामरलोग भी नावपर बैठकर जातेहैं जहांकी स्त्रिओंके स्तन केशरकी मालाओंसे ढँके रहतेहैं और जहां लताए द्राक्षा (अंगूर) के गुच्छोंसे झुकरहीहैं। ऐसा सुंदर देश है॥

३४ यद्दानेनेति, यह राजा इतना उदार है कि इसके दानसे दरिद्रलोगोंके विपत्ति भोगनेके भी पद्मसंख्याक घर जैसे भृंगोंसे कमल शोभायमान होतेहैं वैसे हस्तिके मद जलप्रिय भृंगोंसे शोभायमान हैं अर्थात् दरिद्रलोगभी इतने धनिक होगएहैं कि हाथी रखतेहैं। और यह गुणिजनोंका मान करनेवाला है स्वयं साहित्यका पंडित है और युद्धमें सुखपूर्वक विचरनेवाला है॥

प्रतीहारी–(आगे बढकर) न्दककृतमुक्तालते ! इस षष्ठसिंहासनपर शौर्यसमुद्रसा शोभायमान धरा (धारा) नगरीका महाराज है–

यद्दोर्दण्डधृतस्य धातुधनुषो दुर्धर्षधामद्विषो
ध्वानं धूनधराधराऽऽहतहरिं ध्यानेन धित्वा श्रवैः ।
धावन्त्यर्धधितं कवन्धमपि ते संभूय धूर्ता किरा
इद्धोद्धत्यधरान् धुनोति धनदः सोयं धराधीश्वरः ॥ ३५॥

दमयंती–आगे आगे।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) भीमकुलचंद्रिके इस सप्तमसिंहासनपर पुष्पपुरा (पटना) के महाराज विराजमान हैं–

गोत्रातले लसति पुष्पपुरी प्रसिद्धा
या शोभया कमलमालि ! तिरस्करोति ।
तस्या अयं नृपतिचक्रललाटरत्नं
राजा स्वनीतिपटुताखिललोकमान्यः ॥ ३६ ॥

दमयंती–और चल।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) अयि विदर्भदीपिके इस अष्टम सिंहासनपर पंचनद (पंजाब) के महाराज विराजमान हैं।

पञ्चापे यस्य राज्यं परममृदुलता यत्र नैसर्गिकी सा
त्वद्दास्यार्हा भुजिष्या अपचितिचतुरा रूपलावण्यसान्द्राः ।
यः सौन्दर्येण कामं कलयति ललनालोचनानन्ददायी
दाने यः किन्नरेशो रमयति कृतिनः सोयमाख्यातवृत्तः॥३७॥

---

३५ यदिति, इस राजाकी भुजामें धारण किएहुए उग्रशत्रुओंके तेजको हरण करनेवाले धातुके बने धनुषके कंपित करादिएहैं पर्वतनिवासी सिंह जिसने ऐसे शब्दको ध्यानसे सुनकर शूकर पानी पीतेहुए पानीको छोडकर भागजातेहैं। और यह बडे पराक्रमी वीरशत्रुओंको भी परास्त करनेवाला है और बडा उदार है। अर्थात् यह राजा बडा वीर है ॥

३६ गात्रेति, जो पुष्पपुरी (पटना) पृथ्वीके सभ नगरोंसे सुंदर है अपनी शोभासे कमलको भी तिरस्कृत करतीहै उस पुरीका स्वनीतिमात्रसे ही सभको वशमें रखनेवाला यह राजा है ॥

३७ पञ्चाप इति, जिस पंजाबके लोग स्वभावके मृदु हैं और जहां स्त्रीलोग

दमयंती–(धीरेसे) चल चल ।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) आयि कुंडिनपुरंदिरे इस नवम सिंहासनको अलंकृत करनेवाला श्वेतद्वीपका चक्रवर्ती है ।

यत्र श्रीरमणार्चनेन मनुजा निर्णिक्तचित्ताशया
निष्कृत्ताखिलदुष्कृताः सुकृतिनः सिद्ध्याप्तभोगास्पदाः ।
तस्माच्छ्वेत इतीर्यते जगति यो द्वीपो महीमण्डन–
स्तस्यायं सुमतिर्गुणेषु निपुणः सत्त्वैकमूर्तिर्नृपः ॥ ३८ ॥

दमयंती–आगे बढ ।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) अयि क्षपाकरक्षोदनिर्मिते ! इस दशम सिंहासनको मंडित करनेवाला वंगदेशका मंडलेश्वर है ।

तर्कशास्त्रे कृताभ्यास ऊहापोहविचक्षणः ।
वङ्गाङ्गनासमासक्तो नवद्वीपपतिस्त्वयम् ॥ ३९ ॥

दमयंती–(धीरेसे) और बढ ।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) अयि कर्पूरमूर्ते ! इस एकादश सिंहासनकी शोभाको बढानेवाला चोलपुरीका नृपति है ।

यस्याऽन्वये प्रभविता कुलशेखरः श्री-
वैकुण्ठकौस्तुभमणेरवताररूपः ।
सोयं मुकुन्दचरणाम्बुजभृङ्गचेता-
श्चोले पुरे वसति केरलदेशभूपः ॥ ४० ॥

तुमारी सेवा करनेयोग्य सुंदरी है उस पंजाबका यह राजा है और सुंदरताके कारण नेत्रको सुख देनेवाला है कुबेर जैसा दानी है गुणिओंका मान करनेवाला है ॥

३८ यत्रेति, जिस भूभूषण श्वेतद्वीपमें श्रीनारायण भक्तिके कारण लोग शुद्ध चित्तवाले पीपहीन पुण्यात्मा और सिद्धिओंसे सकल भोग भोगनेवाले हैं उस श्वेतद्वीपका यह सुमति गुणी तथा सत्त्वगुणप्रधान राजा है ॥

३९ तर्केति, यह नैयायिक तर्कवितर्कमें कुशल तथा वंगस्त्रिओंमें प्रीति रखनेवाला नवद्वीपका राजा है ॥

४० यस्येति, यह चोलपुरीमें वसनेवाला दाक्षिणात्य केरलदेशका राजा है यह श्रीनारायणका बडा भक्त है इसके वंशमें श्रीनारायणकी कौस्तुभमणिका अवतार श्रीकुलशेखर नामसे प्रकट होगा ॥

दमयंती–और भी आगे।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) सरसीरुहलोचने इस सिंहासनपर विराजनेवाला कर्नाटचक्रवर्ती है।

वीणावादनतत्त्वज्ञः साहित्यैकनिधिस्तथा।
चण्डमार्तण्डतेजस्वी योयं कार्नाटिको नृपः॥ ४१॥

दमयंती–और भी आगे।

प्रतीहारी–(आगे बढकर) अयि तिरस्कृतरते! इस सिंहासनपर चोलदेशके महाराज बैठेहैं।

वेदान्ततत्त्वमननेन सुनिश्चितार्थो
गोविन्दपुण्यगुणगानगृहीतकीर्तिः।
कावेरिकातटनिवासविनुत्तचित्त-
श्चोलेन्द्र एष नृपतिर्मनसा गभीरः॥ ४२॥

(धीरेसे दमयंतीसे) चंद्रिकोज्वले मैं बहुतसे उत्तम उत्तम नरपतिओंको दिखाचुकीहूं इनमेंसे कोई आपको रुचित हुआ ?।

दमयंती–(धीरेसे) अभी और आगे।

प्रतीहारी–बहुत अच्छा (आगे बढकर) अयि सितकरकिरणैकमूर्ते! देखतीहो इस सिंहासनको अलंकृत करनेवाले निषधाधिपति महाराज श्रीनल हैं जिनकी कीर्तिके अमानेकेलिए त्रिभुवनविवर भी बहुत छोटा है।

अस्ति स्वस्त्येकधामा धरगिधरमणिर्लग्नजीमूतदामा
यस्मिन् गान्धर्ववामा रहसि निजसखैः सन्ति रूपाभिरामाः।
लोकाः सर्वे सुकामा नियमितसमयाः प्राप्तसंरम्यरामाः
सिद्धाः सत्प्राणयामा निषध इति महौ यत्तु विख्यातनामा४३॥

---

४१ वीणेति, यह वीणा बजानेमें निपुण साहित्यका पंडित तथा सूर्यसमान तेजस्वी कर्नाटक देशका राजा है॥

४२ वेदान्तेति, यह वेदान्तज्ञ श्रीनारायणके गुणगान करनेवाला मनसे गंभीर कावेरीतटपर रहनेवाला श्रीरंगपट्टनका तथा चोलदेशका राजा है॥

४३ अस्तीति, पृथ्वीपर एक निषध पर्वत (हिमालयका एक प्रदेश) है जिसमें सब प्रकारका सुख है जिसकी इतनी ऊंचाई है कि उसमें मेघमाला भी अटक जातीहै जिसमें सुंदरी गंधर्वबालाएं अपने प्रियोंके साथ एकांत विहार करतीहैं

यद्राज्यं निषधे धनेषु धनदो दानेषु कल्पद्रुमो
मानं यस्तनुतेतरां सुमनसां स्नेहैकसिन्धुर्मृदुः।
यो धर्मैकपरायणो गजगतिर्गोविन्दपादप्रियः
सोयं श्रीयुतवीरसेनतनुजो गान्धर्वविद्यानिधिः॥ ४४ ॥
यं निर्माय चतुर्मुखो निजकृतेर्गर्वं गतः संसदि
चन्द्रं चापि पुनः पुनर्विघटते यत्तुल्यनिर्मित्सया।
यद्वक्त्रोपमितिं मतिर्न लभते दिव्योपमानेष्वपि
सोयं श्रीनिषधाधिपो गुणनिधिः कीर्त्येकमूर्तिर्नलः॥ ४५ ॥

अयि वामवदने मेरी इतनी सामर्थ्य नही जो मैं महाराज नलको कुछ प्रशंसा करसकूं हां इस समय यहां यदि आपकी आचार्या भगवती सरस्वती होती तो वह कदाचित् कुछ प्रशंसा करसकती अच्छा और आगे चलतीहूं (आगे बढना चाहतीहै)।

दमयंती–(धीरेसे) बस बस आगे बढनेकी अपेक्षा नहीं (नलके कंठमें स्वयंवरमालाको पहिराना चाहतीहै)।

प्रतीहारी–(आगे देखकर) भर्तृदारिके ठहरो ठहरो।

दमयंती–(चौंककर धीरेसे) क्या है ?।

प्रतीहारी–आगे देखो ऐसे ही चार नल और बैठेहैं मैं नहीं जानती इन पांचोंमें कौन सत्य नल है आप समझलो (प्रतिषेधः)।

जिसके लोक अच्छे कामवाले नियत समयवाले सुंदरस्त्रिओंवाले हैं और जिसमें प्राणायामपरायण सिद्ध वसते हैं॥

४४ यदिति, यह उक्त निषधका राजा है कुबेरसा धनी है कल्पवृक्षसा उदार दानी है पंडितोंका मान करनेवाला और स्वभावका स्नेही और मृदु है। धर्मपरायण है श्रीनारायणका भक्त है गजकी गंभीरगतिवाला है तथा श्रीवीरसेनका पुत्र है। और गंधर्वविद्या जो अश्वविद्या तथा गानविद्या उसमें अद्वितीय प्रवीण है॥

४५ यमिति, यह ऐसा सुंदर है कि इसका निर्माण करके ब्रह्मा भी अभिमानको प्राप्त होगया और इसके मुख तुल्य बनानेको चंद्रको बहुत वार तोडता तथा जोडताहै किंतु इसके मुखसा नहीं बना। जिसके मुखका उपमान दिव्य पदार्थोंमें भी नहीं है। यह बडो कीर्तिवाला तथा निषधका राजा नामसे नल है॥

---

१ यहांसे विमर्षसंधि चली है आगे इसके अंगोंको भी स्वमतिसे जान लेना॥

दमयंती–(देखकर उदास होकर मनमें) क्या मेरे साथ यहां भी ठगी, न जाने मेरे भाग्यमें क्या लिखाहै। अब मैं क्या करूं अपने प्यारेको कैसे पहचानूं ये तो सभ एकसे ही प्रतीत होतेहैं। क्या इस आडंबरका फल शोक ही होनाचाहताहै?। हाय माता तुमने मुझसी निर्भाग्याको जनकर न जाने क्या दुःख देखनाहै हाय (ऊंची श्वास लेतीहै) हे मन कुछ कालकेलिए इस त्रपारूपीचोलको उतारदे हे जिह्व कुछ निलज्ज होकर बोल यह विषम समय लाजका नहीं, और दमयंतीसी निर्भाग्याकी लज्जा कहां। हाय बडे लोग मुझे क्या कहेंगे अच्छा। (कुछ सोचकर हाथ बांधकर प्रकट बोलतीहै)

हे निषधाधिपवेशको धारण करनेवाले महाजनों आपने ऐसा निषधाधिपवेश धारण किआहै कि मैं कोई प्रकारसे भी यह नहीं जानसकती कि आपमें सत्य निषधाधिपति कौन है, इस हेतु प्रतीत होताहै कि आप अवश्य कोई सिद्ध पुरुष हैं किंवा देवता हैं, अन्यथा ऐसा यथार्थ वेश बनाना कठिन है, इस कारण मैं प्रणामपूर्वक आपके आगे अंजलि बांधकर सविनय प्रार्थना करतीहूं कि आप अपने निजवेशको धारण करके निषधाधिपतिको बतादीजिए। मुझ बालापर आपको अवश्य अनुकंपा करनीचाहिए–

दयां दीनेषु कुर्वन्ति गतेषु विषमां दशाम्।
इत्येष शाश्वतः पन्था महतां कीर्तिवर्धनः॥ ४६॥

(प्रणाम करतीहै) मैं अपने हृदयसे निषधाधिपतिको वर चुकीहूं इस कारण निषधाधिपतिसे भिन्न जीवको मैं भर्तृभावसे स्पर्श भी करना नहीं चाहती। (व्यवसायः)।

पातिव्रत्यं परो धर्मो नारीणां विधिना कृतः।
श्रुतिरुद्दिश्य यं धर्ममाह "नैका बहून् पतीन्" ॥ ४७॥

---

४६ दयामिति, विषमावस्थाको प्राप्तहुए दीनोंपर बडे लोग दया ही करते आएहैं यही मार्ग कीर्तिके बढनेका है इस हेतु आपको मुझपर दया करनी चाहिए। यह विमर्षसंधिका खेदनात्मक अंग है॥

४७ पातिव्रत्यमिति, विधाताने स्त्रियोंकेलिए परमधर्म पातिव्रत्य ही बनायाहै श्रुति भी उसी धर्मको प्रतिपादन करतीहै–"हे दे रशने यूपमृच्छतस्तस्मात् स्त्रियः पुंसोऽतिरिक्तास्तस्मादुतैको बह्वीर्जाया विन्दते नैका बहून् पतीन्" इति। अर्थात्

दर्शकलोग–साधु साधु (वाह वाह)।

दमयंती–यदि निषधाधिपतिसे भिन्न कोई ठगीके साथ मुझसे निज कंठमें स्वयंवरमालाको डलवाय लेगा तो मैं तुरंत ही चितामें भस्म होजाऊंगी। (संफेटः)।

दर्शकलोग–शांतं पापम्, शांतं पापम्, (भगवान् ऐसा न करे)।

दमयंती–इस हेतु आप सभको मेरे साथ कपट करना उचित नहीं (अपवादः)।

भीम–(आकाशकी ओर देख अंजलि बांध) भगवन् दयानिधे रक्षा करो (नेत्रसे अश्रु गिरतेहैं)।

दमयंती–मैं बारंबार आपके चरणकमलपर प्रणाम करतीहूं आप मुझ बालापर कृपाकर निषधाधिपतिको बतादो। (द्रवः)।

(श्रीसरस्वती आतीहैं)

प्रतीहारी–(दमयंतीसे) ये लो आपकी आचार्या श्रीसरस्वतीजी आतीहैं।

दमयंती–(सरस्वतीके चरणको स्पर्श करके) भगवति अभिवादन करतीहूं।

सरस्वती–वत्से पातिव्रत्यकीर्तिमती हो।

प्रतीहारी–अब सभ कार्य सिद्ध होगए।

सरस्वती–(नलवेश धारिओंसे) अये शतक्रतो अये धर्मराज आप लोगोंको इस कपटनलवेशसे क्या इस अनुपालनीय बालाके साथ ठगी करनी उचित है ?, क्या भगवान् श्रीनारायणने इनी कामोंकेलिए आप लोगोंको उच्च पदोंपर अभिषिक्त किआहै ? (द्युतिः)।

एक पशुबंधनयूपमें अनेक पशुडोरिआं बंधसकतीहैं किंतु एक डोरी दो यूपोंमें नहीं बंधसकती तस्मात् स्त्री और पुरुषके धर्मोंका भेद होनेसे एक पुरुष अनेक स्त्रिओंसे विवाह करसकता है और एक स्त्री अनेक पुरुषोंसे विवाह नहीं करसकती। यहां यह भी शंका नहीं करनी कि यथा कालभेदसे एक ही डोरी अनेक यूपोंके साथ बँध सकतीहै तथा कालभेदसे स्त्री भी अनेक पुरुषोंसे विवाह करसकतीहै इति क्योंकि यागानंतर वह डोरी जलमें वा अग्निमें गेर दी जातीहै इससे कालभेदसे भी एक डोरीका अनेक यूपोंसे संबंध नहीं होसकता एवं काल भेदसे भी स्त्री अनेक भर्ता नहीं बनासकती॥

समलोग-साधु भगवति साधु।

सरस्वती-(दमयंतीसे) वत्से यह सत्य नल है (नलको दिखाकर) निस्संदेह इसके कंठमें माला पहिराओ, तुम्हारे योग्य नल ही है (प्ररोचना)।

दमयंती-भगवति आपके अनुग्रहका किस मुँहसे वर्णन करूं। (प्रणाम करतीहै) अपने छात्रोंपर गुरुलोग अनुग्रह किआ ही करतेहैं।

(कपटनलवेशधारी इंद्र वरुण अग्नि और यम अपने अपने रूपको प्रकट करतेहैं)

चारों देवता-भीमसुते हम तेरे पातिव्रत्यसे बहुत संतुष्ट हुएहैं तेरे सभ मनोरथ पूर्ण हों, तेरी इस पुण्य पातिव्रत्यकथाको आसंसार लोक गान करेंगे तुमारा पति नल यही है (नलको दिखातेहैं)।

दमयंती-मैं प्रणाम करतीहूं आप मेरी इस ढिठाईको क्षमा करें। (शक्तिः)।

इंद्र-अये निषधाधिपते आपने जो सच्चे हृदयसे मेरा संदेश दमयंतीको दिआ इससे प्रसन्न होकर मैं आपको दो वर देताहूं-

यागे मद्दर्शनं साक्षान्निषधेन्द्र करिष्यसि।
यागैः प्राप्यांस्तथा स्वर्गानुत्तमान्नृप भोक्ष्यसे॥ ४८॥

नल-(प्रणाम करके) यह सभ आपकी कृपालुताका निदर्शन है।

अग्नि-वीरसेनवंशावतंस आपने जो स्वार्थ छोडकर मेरेलिए भीमसुताको कहा इससे प्रसन्न होकर मैं भी आपको दो वर देताहूं-

यत्रैयिष्यसि तत्रैव मत्सत्तां समवाप्स्यसि।
अग्न्युपासनसंप्राप्यान्नृप लोकांश्च लप्स्यसे॥ ४९॥

नल-(प्रणाम करके) यह सभ आपकी कृतज्ञताका निदर्शन (नमूना) है।

यम-हे अश्वविद्यैकनिधे तुमने जो मेरेलिए वैदर्भीके निकट जानेका श्रम उठाया इस प्रीतिसे मैं तुमको दो वर देताहूं-

---

४८ यागे इति, हे निषिधेन्द्र तुमको यागमें मेरा साक्षात् दर्शन होगा और उत्तम स्वर्ग प्राप्त होंगे॥

४९ यत्रेति, जहां तुम चाहोगे वहां ही मैं प्रकट हो जाऊंगा और अग्निकी उपासनासे जो लोक प्राप्त होतेहैं वे तुमको भी प्राप्त होंगे॥

स्थिरा भवतु धर्मेषु सङ्कटेष्वपि ते मतिः ।
तथा त्वया कृते पाके दिव्यः स्वादोस्त्वनुत्तमः ॥ ५० ॥

नल—(प्रणाम करके) कृपाप्रधान होना वृद्धमहानुभावोंका स्वभाव ही है ।

वरुण—अये निषधमंडलेंद्र आप जो धर्मपूर्वक मेरे दूत बनकर भीमपुत्रीके समीप गए इसके प्रत्युपकारमें मैं आपको दो वर देताहूं—

नीरपूरसमीहा ते परिपूर्णा भविष्यति ।
गृहाणैताःस्रजो दिव्या यासां गन्धो न नङ्क्ष्यति ॥ ५१ ॥

नल—(प्रणाम करके) मैं अभिवादन करताहूं । हे वृंदारकशिरोमणे यद्यपि मैने आपका दूतभाव जिस सचाईसे कियाहै उसे आप स्वयं ही जानतेहैं तथापि मेरा वह दूतभाव सफल नहीं हुआ इसस मैं आपसे बहुत लज्जित हूं उसपर भी जो आप वरप्रदानका अनुग्रह करतेहैं यह सभ आपके कृपालुतैकस्वभावका प्रभाव है ।

येन केनापि रूपेण कृते कार्ये स्वपूरुषैः ।
उदारचरितास्तत्र तुष्यन्त्येव महाजनाः ॥ ५२ ॥

चारों देवता—भीमसुते तुम्हारे योग्य नल ही है आज त्रिलोकीमें नलके सदृश पुरुष नहीं है, हम लोग नलके साथ तुमारा विवाह देखकर बहुत प्रसन्न होंगे इस हेतु हम अनुमति देतेहैं कि तुम स्वयंवरमालासे नलकंठको अलंकृत करो । (आदानम्) ।

दमयंती—(कर जोर प्रणाम कर) जो आज्ञा (नलके कंठमें स्वयंवरमालाको पहिरातीहै) ।

दर्शकलोग—साधु साधु (हर्षकी ताली बजातेहैं । आकाशसे पुष्पवर्षा होतीहै) ।

सरस्वती—(दमयंतीसे) वत्से और कुछ मेरे योग्य काम हो तो कहो ।

---

५० स्थिरेति, तुमारी मति धर्ममें सदा संकटमें भी स्थिर रहे और जो तुम पाक करोगे उसमें दिव्य स्वाद हुआ करेगा ॥

५१ नीरेति, जहां तुम चाहोगे वहां ही जल प्रकट होजायाकरेगा और मैं तुमको ऐसी दिव्य पुष्पमाला देताहूं जो कभी न मुरझाएंगी न जिनकी गंध कम होगी इन्हें तुम लो ॥

५२ येनेति, अपने पुरुषके जैसे कैसे कामपर भी महापुरुष प्रसन्न ही हुआकरतेहैं ॥

दमयंती-(कर जोर) भगवति आप तो स्वयं ही सभ काम कररहीहैं फिर मैं क्या कहूं यही चाहतीहूं कि आपकी कृपा बनीरहे आपने जो दो चार अक्षर कृपा किएहैं वे मुझे विस्मृत न हों और आप मुझे विस्मृत न करें।

सरस्वती-ऐसे ही होगा, अच्छा अब मैं जाना चाहतीहूं कल्ह विवाहके समय आऊंगी।

दमयंती-कृपा कर कुछ और ठहारिए मैं भी वृद्धजनोंको प्रणाम करके चलतीहू आप एक वेर माताको दर्शन देकर पधारें (वृद्धजनोंको प्रणाम करतीहै)।

प्रतीहारी-(भीमादिकी ओर कर जोर) श्रीमती दमयंती आप पूज्य-पादोंको शतशः प्रणाम निवेदन करतीहै।

सभलोग-मंगल हो शुभ हो। (प्रतीहारी सरस्वती और दमयंती पिछले पायनसे धीरे धीरे पीछे हटतीहैं)

दर्शककवि-वैकुण्ठं कमलेव लेखनिकरे वास्तोष्पतिं वा शची
श्रीकण्ठं गिरिजेव निर्जरधुनी सिन्धुं विधुं रोहिणी।
वैदर्भी निषधाधिपं वृतवती यल्लोचनैर्वीक्षिता
हर्षश्चेतासि वर्धतेऽद्य विपुलोऽसंजातपूर्वो नृणाम्॥ ५३॥

पहरेपर नियतकीहुई एक सखी आतीहै।

पहरेवाली[१]-सखि मदनिके महारानीकी प्रतीहारी चली आतीहै।

मदनिका-हां ?।

मालिका-मदनिके अब नाटककी कथामें कुछ विशेष शेष नहीं है खेलको झट बंद कराओ तनिक भी विलंब होनेसे महारानीकी प्रतीहारी आकर देखलेगी।

---

५३ वैकुण्ठमिति, जैसे श्रीलक्ष्मीने नारायणको वरा शचीने इंद्रको वरा पार्वतीने महादेवको वरा गंगाने सिंधुको वरा रोहिणीने चंद्रमाको वरा तथा आज नलको वरण करतीहुई दमयंतीको नेत्रोंसे देखा इस कारण लोगोंके हृदयमें असीम हर्ष बढरहाहै॥

१ इस पहरेवालीका वेश पहरेका न होनाचाहिए क्योंकि यह दमयंतीकी सखी है। और यहांसे जो मदनिका प्रभृतिका परस्पर संभाषण है वह ऐसा है कि एक ओर दर्शककवि श्लोक पढताहै और एक ओर यह संभाषण भी होताहै॥

दर्शककवि–अस्तु स्वस्ति सदा समस्तमतये श्रीमन्नलायाऽऽक्षिते-
वैदर्भ्यै च समागमाय जनतामोदप्रदायाऽनयोः ।
वैदर्भेन्द्रकृते च .... ॥ ५४ ॥

मदनिका–बहुत अच्छा (ताली बजातीहै ताली बजते हो नाटकगृह अदृश्य होताहै)।

दमयंती–(मालिकाके कंठमें बांह देकर) सखि यदि तुम इसी श्रमको भगवत्कथापर लगाती तो कैसा अच्छा होता । इस तुच्छ कथापर व्यर्थ श्रम उठाया ।

मालिका–सखि यह श्रम व्यर्थ नहीं किंतु सुफल है ।

मदनिका–सखि मालिके आपने नाटक तो बहुत सुंदर बनाया किंतु इसमें जो देवलोगोंके कपटनलवेशकी कथा लिखीहै इसका हेतु कुछ समझमें नहीं आया ।

मालिका–तुमने कल्हको स्वयंवरमें देखलेना यह चरित्र इसी तरहसे होगा ।

मदनिका–यह आपने कैसे जाना ? ।

मालिका–भगवति सरस्वतीके मुखसे जाना, और मैने यह नाटक उनकी आज्ञासे ही बनाया तथा कराया है ।

मदनिका–नाटक बहुत सुंदर बनाहै ।

(नाटक खेलनेवालीं साधारणसखिवेशसे आकर प्रणाम करतीहैं)

मालिका–वाह वाह सखिओ बहुत उत्तम अभिनय किआ ।

रूपकस्याभिनेतॄणामिदमेव हि कौशलम् ।
ग्रन्थकर्तुरभिप्रायान् दर्शयन्तु स्वरूपतः ॥ ५५ ॥

सखिएं–आपके लेखानुरूप तो अभिनय करना कठिन है किंतु आपका शिक्षाके प्रभावसे यथाकथंचित् कुछ होगया ।

---

५४ अस्त्विति, समग्र विषयमें बुद्धि रखनेवाले नलकेलिए सदा कल्याण हो तथा दमयंतीकेलिए कल्याण हो और नल दमयंतीके मोदप्रदसमागमकेलिए कल्याण हो । और भीमराजाकेलिए कल्याण हो ॥ खेल समाप्त नहीं होसका झट बंद कर दिआगया यह जतानेको ही यह श्लोक पूर्ण नहीं किआ ॥

५५ रूपकस्येति, नाटकादिखेल करनेवालेका सबसे बढकर यही चातुर्य है कि ग्रंथकर्ताके अभिप्रायको अच्छीतरह दरसादेना ॥

मदनिका-सखि मालिके कपटनलवेशधारिओंको देखकर इस पतिवराने अपने मुखपर जो उदासीनता तथा शोच दरसाई वह वास्तवमें इसने प्रशंसनीय काम किआ।

प्रतीहारी-(आकर प्रणाम करके) राजकुमारि आपको श्रीमहारानीजी देखना चाहतीहैं।

दमयंती-चलो। (सब धीरे धीरे चलीजाती महाराज भीमके महलके निकट पहुंचतीहैं)

(नेपथ्यमें)

रम्भास्तम्भकृता भवन्तु सुभगाः पुष्पाऽऽचिता वेदिका
माकन्दीयदलस्रजा वितनुतां द्वाराणि सर्वो जनः।
रागानानुलपन्तु गायकजना वीणां प्रवीणा मुहु-
र्भैम्याः श्वो भविता स्वयंवरविधिर्दिश्यान्मुदं माधवः॥५६॥
कण्ठे मौक्तिकदाम वामवदनाः कृत्वा करे कङ्कणं
चित्रं चाञ्चितसूचिकादिचरणैर्नृत्यन्तु वेश्याजनाः।
भीमान्तःपुरसंगताश्च वनिता गायन्तु गीतानि भो
यद् येनैव समीह्यते किमपि तद् भूभृद्गृहाद् गृह्यताम्॥५७॥

---

५६ रंभेति, सबलोग अपने द्वारोंपर केलेके खंभे तथा आम्रपत्रोंकी वंदनवार लगाएं गायक लोग गाएं वीनकार बीणा बजाएं क्योंकि कल्ह दमयंतीका स्वयंवर होगा और श्रीनारायण मंगल करें॥

५७ कंठे इति,मोतीमाला तथा कंकण पहिरके सुंदरवेश्यालोग अंचितसूचीपादादि चरणोंसे बढिया नाच करें। महलमें आनेवालीं स्त्रीलोग गीत गाएं। जिसको जिस पदार्थकी अपेक्षा हो वह उस पदार्थको भीममहाराजके घरसे लेजाए॥ अंचित प्रभृति छै प्रकारके नृत्यके चरण (पैर) भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्रके नवमाध्यायके अंतमें कहेहैं यथा-

"उद्घाटितःसमपादस्तथाग्रतलसंचरः।
अञ्चितः कुञ्चितः सूचीपादः षोढा प्रकीर्तितः॥ १॥
पार्ष्णिर्यस्य स्थिता भूमावूर्ध्वमग्रतलं तथा।
अंगुल्यश्चाञ्चिताः सर्वाः स पादोञ्चित उच्यते॥ २॥
उत्क्षिप्ता तु भवेत् पार्ष्णिरंगुष्ठाग्रेण संस्थितः।
वामश्चैव स्वभावस्थः सूचीपादः प्रकीर्तितः"॥ ३॥ इति।

मालिका–आज इस उत्सवके हर्षसे हम लोग फूले अंगमें नहीं समाते।

मदनिका–भगवान् श्रीनारायण मंगल करें।

प्रतीहारी–इधरसे पधारिए (सब घरमें जातीहैं)

इति अनर्घनलनाटकका पञ्चमांक समाप्त हुआ।

अथ

षष्ठांक

(स्थान नलकी राजधानी राजभवनके द्वारपर दो द्वारपाल खडे हैं कुछ वस्त्रभूषणोंकी पिटारी लिए कुंडिनपुरसे एक मनुष्य आताहै)

कुंडिनवासी–क्या भाई मुझे महाराजके दर्शन होंगे।

द्वारपाल–तुम कौन हो कहांसे आतेहो ?।

कुंडिनवासी–मैं महाराजभीमदेवका भेजाहुआ कुंडिनपुरसे आयाहूं।

द्वारपाल–हां, अच्छा बैठो बैठो, तुमारे महाराज सपरिवार कुशलसे तो हैं।

कुंडिनवासी–जी हां सब कुशलसे हैं किंतु आपके महाराज तथा महारानीके देखनेको तरसरहेहैं।

द्वारपाल–क्यों न हो भाई मातापिताका स्नेह ऐसा ही होताहै।

कुंडिनवासी–क्यों भाई राजकुमार और राजकुमारी कितने कितने बडे होगएहैं ?।

द्वारपाल–(चेष्टासे) इतने इतने।

कुंडिनवासी–भाई अब मुझे भीतर जानेदो।

द्वारपाल–हमने आपकेलिए कह तो भेजाहै किंतु भीतर जाना असंभव है।

कुंडिनवासी–क्यों ?।

द्वारपाल–महाराजका और पुष्करका द्यूत होरहाहै।

कुंडिनवासी–कबसे ?।

द्वारपाल–बहुतकालसे।

कुंडिनवासी–भाई यह तो व्यसन बुरा है।

द्वारपाल–प्रभु हैं चाहें जो करें, बहुत लोगोंने रोकाहै किसीकी नहीं मानते।

कुंडिनवासी–भाई महाराजनल तो बडे धर्मात्मा राजा हैं उनका चित्त द्यूतमें कैसे फँसा ?।

द्वारपाल–कलिने महाराजकी बुद्धिको भ्रष्ट करदिआहै।

कुंडिनवासी–यह कैसे सभ खुलासा कहो ?।

द्वारपाल–(धीरेसे) भाई सुनतेहैं कि महारानीके स्वयंवरमें कलि जा-रहाथा मार्गमें इंद्रादि देवता मिले कलिने उनसे सुना कि स्वयंवर होचुका दमयंतीने नलको वराहै यह सुन कलिको बडा क्रोध हुआ देवोंने महाराजकी प्रशंसा की तो कलि और भी चिड गया कहने लगा कि मैं इस बातका पलटा लूंगा वही कलि महाराजमें घुसकर चौपट कररहाहै। भगवान् कुशल करे।

कुंडिनवासी–भाई मैंने भी ऐसे ही सुनाहै, हृदय कांप रहाहै, भग-वान् नारायण इस घरको बनाएरक्खे।

द्वारपाल–इन बातोंको मुँहसे निकालना मत चुप ही रहना।

दासी–(आकर द्वारपालसे) कुंडिनपुरसे कौन आयाहै ?।

द्वारपाल–(हाथसे) ये आएहैं।

दासी–इनको भीतर आनेदो (दासी और कुंडिनपुरवासी भीतर जातेहैं)।

द्वारपाल–(दूसरे द्वारपालसे) भैया इस द्वारको तो बंद कर देनेको महाराजकी आज्ञा है अच्छा बंद करदेतेहैं जिसको आना जाना होगा वह दूसरे द्वारसे आए जाएगा।

द्वारपाल–कर दो भाई, आजतक यह द्वार कभी बंद नहीं हुआ, और क्या है अपने लोगोंके भाग बुरे दिखाई देतेहैं।

द्वारपाल–हां भाई जो परमेश्वर चाहताहै वही होताहै।

(द्वार बंद करके दोनों दूसरे द्वारपर जातेहैं)

इति विष्कंभक।

(राजभवनमें पुष्करका और नलका द्यूत होरहाहै)

नल-(कौडी गेरतेहुए) ये दो ।

पुष्कर-चार हैं चार लाइए ।

नल-यह लो (मुक्तामाला देकर) क्या हुआ ।

पुष्कर-होना क्या था आपसे राजाधिराजोंके क्या कमी है ।

नल-गेर गेर ।

पुष्कर-कुछ दाव तो लगाओ ।

नल-अच्छा कंकणोंकी जोडी लगाताहूं तुम भी लगाओ ।

पुष्कर-मैने तो प्रथमसे ही वृषभको लगारक्खाहै; ये तीन ।

नल-(कौडी लेकर खडकाकर गेरतेहैं) ये सात ।

पुष्कर-ये चार, लाइए ।

---

१ पाठकवर महाभारतमें जो नलके द्यूतकी कथा लिखीहै उसमें अक्ष शब्द बहुत है अक्ष नाम पासेका है पासा चौपडके ही खेलमें होताहै इससे पायाजाताहै नल और पुष्करका द्यूत चौपडसे हुआथा किंतु यहां चौपडका द्यूत लिखना उचित नहीं प्रतीत होता चौपडका एक भी खेल बहुत देरमें समाप्त होताहै और एक खेल समाप्त हुए विना हार जीत होती नहीं और यहां तो धीरे धीरे नलके समग्र राज्यकी हार दिखानीहै वह यदि चौपडसे दिखाई जाए तो नाटक खेलनेवालोंको कई दिनतक इस द्यूतमात्रका ही खेल खेलना पडे और मुझे भी समग्र नाटकके बराबरका इस अंकको लिखना पडे और नीरसद्यूतके इतने भारी खेल किंवा पाठको रसिक लोग देखना किंवा पढना स्वीकार भी न करेंगे और नाट्यशास्त्रकी रीतिसे भी नीरसकथाको बढाना उचित नहीं और उसे घटा देनेको ग्रंथकारको शास्त्रने अधिकार भी दिआहै यदि चौपडके खेलको ही मर्यादासे न लिखा जाए किंतु हरवार पासा गेरनेपर हारजीत दिखाई जाए तो यह भी बेमर्याद खेल अच्छा न होगा इस हेतु मैं यहां सोलहकौडीका खेल लिखताहूं इसमें हरवार कौडीगेरनेपर हारजीत होसकतीहै । और यहां प्रत्येकवाक्यके आगे (कौडी गेरकर) इस वाक्यको समझते रहना ।

इस खेलमें १६ कौडी गेरीजातीहैं उनमेंसे जितनी चित गिरें उतनी संख्याका दाव आया गिनाजाताहै इसमें चार दाव होते है छे आठका और सात नौका । यहां छैका दाव नलका है जब दो वा छे वा दस वा चौदह कौडी चित गिरेंगी तो नल जीतसकेंगे । पुष्करका आठका दाव है जब चार वा आठ वा बारह वा सोलह कौडी चित गिरेंगी तो पुष्कर जीतेगा । इनके विना जो और दाव आएंगे वे खाली जाएंगे । मैं द्यूतमें निपुण नहीं इसलिए कहीं चूक होजाए तो पाठकवर क्षमा करें अभिप्राय नलके हारनेसे है । और (कौडी गेरतेहुए) इस वाक्यको हरएक दावपर स्वयं समझते रहना । और कहीं कहीं दाओंको दोहेके छंदमें भी बांधा है यथा-एक पांच नव सात यह जीते पुष्कर आठ । इत्यादि ।

नल–लो। अबके एक सहस्र मुद्रा लगाताहूं, ये ग्यारह।

पुष्कर–एक

नल– .... पांच

पुष्कर– .... नव

नल– .... तीन यह

पुष्कर– .... जीते पुष्कर आठ।

नल–लो लो,

पुष्कर– .... ल्याओ सहस धन येहू बांधे गाँठ॥ १॥

(कुंडिनपुरवासी जो आयाहै वह आताहै)

नल–पुष्कर।

कुंडिनवासी–(आकर) महाराजकी जय हो।

नल–(मनमें) इससे तो 'पुष्करमहाराजकी जय हो' यह वाक्य बना आज भगवान्‌की क्या इच्छा है?। क्या होगा। (प्रकट) कुंडिनवासीजी कब आए?।

कुंडिनवासी–अभी आया।

नल–भीतर गए?।

कुंडिनवासी–श्री महाराज भीतरसे ही आताहूं।

नल–अच्छे हो?।

कुंडिनवासी–श्रीमहाराजकी कृपासे।

नल–आपके महाराज सपरिवार प्रसन्न हैं?।

कुंडिनवासी–हां श्रीमहाराज और आपको बहुत स्मरण करतेहैं।

नल–ऐसा है तो कभी आऊंगा।

कुंडिनवासी–सपरिवार पधारना ही चाहिए हमारे महाराज और महारानीजी कुमर और कुमरीको देखनेकेलिए तरसरहेहैं।

पुष्कर–(मनमें) अब पधारनेमें क्या विलंब है।

नल–यह क्या है।

कुंडिनवासी–महाराजने कुमर कुमरीकेलिए कुछ वस्त्र भूषण भेजेहैं (मंजूषामेंसे निकालकर वस्त्र भूषण निवेदन करताहै)

नल–(हाथमें लेकर) बहुत सुंदर हैं, क्यों इतना श्रम करनाथा।

कुंडिनवासी—श्रीमहाराजके तो दासोंके भी योग्य नहीं हैं।

पुष्कर—(नलसे) देखते क्या हो इन्हीको दावपर लगादो।

नल—अच्छा यह लो, किंतु हारजाओगे तो दुगुने लूंगा।

पुष्कर—दुगुने क्या दस गुने।

कुंडिनवासी—हैं हैं महाराज ये तो शगुनके भूषणवस्त्र हैं इनको लगाना उचित नहीं।

नल—क्या कहीं जाते हैं ?।

कुंडिनवासी—श्रीमहाराज खेलते खेलते थक गयेहोंगे अब विश्राम करें।

नल—यहां कौन है ?।

दासी—(आकर) आज्ञा।

नल—कुंडिनवासीजीको भीतर लेजाओ इनके खानपानका ठीक करो।

दासी—जो आज्ञा।

कुंडिनवासी—श्रीमहाराज आपसे धर्मात्मा धर्मावतार महाराजको तो द्यूत शोभा नहीं देता, हमारे महाराज सुनेंगे तो बहुत दुख पाएंगे

नल—अरे यह तो दो घडीकी क्रीडा है, तुम भीतर जाओ।

कुंडिनवासी—श्रीमहाराज मुझे तो आज ही पीछे लौटजानाहै।

नल—अच्छा (दासीसे) चंदानिके इनकी बिदाई दिलादो और पत्र लिखादो, कुंडिनवासीजी वहां इस द्यूतकी बात मत कहनी।

कुंडिनवासी—नहीं श्रीमहाराज, अब मुझे आज्ञा हो।

नल—अच्छा (कुंडिनवासी दासीके साथ भीतर जाताहै)।

पुष्कर—(कौडी गेरकर) नौ

नल— .... तेरह

पुष्कर— .... पँद्र पडे

नल— .... बारह

पुष्कर— .... मेरा[१] दाउ।

१ इस खेलमें दूसरेके हाथसे भी अपना दाउ पडे तो भी जीत होतीहै इसलिए नलके हाथसे भी बारहका दाव पडनेसे पुष्कर जीताहै।

नल–ले ले क्यों घबराय है

पुष्कर– .... और दाउ कछु लाउ ॥ २ ॥

नल–अच्छा अबके अश्वशालाको दावपर लगाताहूं।

पुष्कर–(कौडी गेरकर) तेरह

नल– .... पँद्रह

पुष्कर– .... सात

नल– .... नव

पुष्कर– .... आए अबके चार।

नल–हयशाला तेरी हुई

पुष्कर– .... इसमें कौन विचार ॥ ३ ॥

नल–अच्छा अबके गजशालाको दावपर लगाताहूं।

(बालवेशसे इंद्रसेन और इंद्रसेना आतेहैं)

दोनो–बाबा बाबा हमारे कपडे हमारे गहने।

पुष्कर–ये ग्यारह।

नल–तीन आए।

दोनो–(नलके कंधेपर हाथ रखकर) बाबा बाबा ?।

नल–हां बेटा।

दोनो–हमारे-कपडे।

नल–कौनसे कपडे।

दोनो–जो नानीने भेजे हैं।

नल–अरे बेटा वे तो पुष्करने जीतलिए।

दोनो–हम क्या करें तो ?।

नल–तुमको और क्या कमती है ?।

दोनो–नहीं हम तो वेई लेंगे।

---

१ यहां दोनों इस शब्दसे इंद्रसेन और इंद्रसेनाको समझना। और ये बालक हैं इसलिए इनके संभाषणमें शुद्धाशुद्धका बहुत विचार नहीं करना। नल और पुष्कर भी द्यूत खेलरहेहैं इनका संभाषण भी तदनुसार ही समझना।

नल–अच्छा बैठो जीत देतेहैं (दोनो नलकी गोदमें बैठतेहैं)।

पुष्कर–तेरह ।

नल–पांच ।

पुष्कर–ये सोलह सोलह, लाइए ।

नल–लाऊं क्या गजशाला तेरी हुई ।

दोनो–(नलके मुखकी ओर मुख करके) बाबा तुम जीते ? ।

नल–नहीं ।

दोनो–जीतो फिर ।

नल–जीततेहैं बेटा ।

दोनो–तुम तो जीततेहैं जीततेहैं कहतेहो जीतते तो हो नहीं ।

पुष्कर–कुछ लगाओ ।

नल–अबके गोशालाको लगाताहूं । तुम भी कुछ लगाओ ।

पुष्कर–अच्छा अबके मुक्तामाला लगाताहूं । (मनमें) अबके इसे जीतादूं जो इस मालाको लेकर लडके यहांसे चल दें नहीं तो बडा विघ्न होगा फिर वृषभको ही लगाऊंगा (प्रकट) ये नौ ।

नल–ये तेरह ।

पुष्कर–ये दस ।

नल–लावे ला माला यहां ला ।

पुष्कर–लीजिए कुछ बांटिए आपकी जीत हुई है ।

नल–(माला लेकर) बेटा यह लो माला भीतर जाओ ।

दोनो–(गोदसे उठकर) अहा बाबाने माला जीती ।

इंद्रसेना–मैं लऊंगी ।

इंद्रसेन–मैं लऊंगा ।

इंद्रसेना–ऊं ऊं मैं लऊंगी, (नलसे) बाबा यह माला देता नहीं ।

इंद्रसेन–(नलके मुखके पास मुखको ले जाकर) बाबा माला मेंडेको दी है न ? ।

नल–हां हां बेटा लडो मत भीतर जाओ ।

इंद्रसेन–(इंद्रसेनासे) देखा बाबाने मेंडेको दीहै ।

इंद्रसेना-(इंद्रसेनके मुखपर एक थप्पड मारकर) हूं दी है तेरेको।

(इंद्रसेन भी इंद्रसेनाके थप्पड मारताहै दोनों लडतेहैं माला टूटकर मोती बिखरतेहैं तब दोनो ऊं ऊं करतेहुए भीतर जातेहैं)

नल-लगाओ कुछ।

पुष्कर-उसी वृषभको लगाताहूं (वृषभको दिखाताहै)

नल-अच्छा। (कौडी गेरकर) एक

पुष्कर- .... सात

नल- .... ग्यारह

पुष्कर- .... नव

नल- .... सोलह

पुष्कर- .... पुष्कर जीत।

नल-गोशाला हमरी नहीं

पुष्कर- .... इहो द्यूतकी रीत ॥ ४ ॥

विदूषक-(आकर) अहो क्या वयस्य सोलह कौडी खेलतेहैं ?।

नल-दीखता नहीं क्या ?।

विदूषक-मुझे तो त्रिलोकी दीखरहीहै हां यों कहो कि हमे कुछ नहीं दीखता।

नल-मुझे क्यों नहीं दीखता ?।

विदूषक-आपको यदि कुछ दीखता तो चौपट क्यों करते ?।

नल-बस बको मत।

पुष्कर-इसे बकने दो आप दाव लगाओ।

नल-अच्छा अबके शस्त्रशालाको लगाताहूं।

विदूषक-वयस्य ये मोती कैसे पडे हैं ?।

नल-एक माला जीतकर इंद्रसेनइंद्रसेनाको दीथी वे आपसमें लडकर उस मालाको तोडगएहैं।

विदूषक-इन मोतिओंको मैं लेलूं।

नल-हां हां। (विदूषक मोतिओंको चुनकर माला पोताहै)।

पुष्कर-(कौडी गेरकर) पंद्रह।

नल– यह एक ।

पुष्कर–पांच ।

नल–तीन ।

विदूषक–अहा हा देखो वयस्य कैसी माला बनीहै ।

नल–तू ही रख ।

विदूषक–(मनमें) इनका मन तो द्यूतसे हटताभी नहीं । (प्रकट) कहो तो इसे ब्राह्मणीके कंठमें पहिरा आऊं ? ।

नल–हां हां ।

(अमात्य सालंकायन आतेहैं)

विदूषक–वयस्य देखो बुढ्ढे आतेहैं, अब भी द्यूतसे हटजाओ ।

नल–आसन आसन ।

विदूषक–(आसन बिछाकर) यह आसन ।

नल–(अमात्यकीओर देखकर) विराजिए ।

अमात्य–बहुत अच्छा (आसनपर बैठतेहैं) ।

नल–कैसे पधारे ।

अमात्य–आपने जो धन जीताहै उसे सम्हालनेकेलिए ।

नल–यही तो द्यूतकी विशेषता है ।

अमात्य–हारते जाना ? ।

नल–जीत हार तो बनी ही है ।

अमात्य–अच्छा अब आप द्यूत मत करो ।

नल–यह नहीं होसकता ।

अमात्य–सुनीतिकुशला राजन्नाऽऽग्रहं नैव कुर्वते ।
त्यज द्यूतं महाराज प्रजां पालय शाश्वतीम् ॥ ५ ॥

नल–आप निश्चित रहें मैं जीतकर ही उठूंगा ।

---

५ सुनीतीति–हे राजन् सुनीतिमें कुशल पुरुष हठ नहीं किआ करते हे महाराज द्यूतको छोडो अपनी प्राचीनप्रजाका पालन करो ॥

विदूषक-वयस्य अमात्य सालंकायनजी आपके पिताके तुल्य हैं बडेमहाराज भी इनके कथनानुसार ही काम करतेरहे आप इनका कहना मानलो इनका वचन मत गेरो बडे लोगोंका अनादर अच्छा नहीं होता, यह द्यूत चौपट करदेताहै आपको पीछे पछतानापडेगा।

नल-मुझे ही पछताना न पडेगा? तुम्हे तो पछताना नहीं पडेगा?।

विदूषक-हम सभ आपके ही साथ न हैं आपसे जुदे तो नहीं।

अमात्य-राजन् आयुष्मन् मेरे इस बुढापेको क्यों कलंक लगातेहो लोग मुझे क्या कहेंगे। आप स्वामी हैं मैं आपका भृत्य हूं आपपर आज्ञा नहीं चलासकता, मैं वारंवार विनय करताहूं द्यूतको छोडदो, आपसे धर्मात्मा राजाओंको द्यूत शोभा नहीं देता, जो मेरे जीवनके चार दिन शेष हैं उन्हे दुःखके मत बनाओ, प्रजामें हाहाकार मचरहाहै आपकी इस हारकी चिंतासे प्रजाके घरोंमें रसोईतक नहीं बनी।

नल-अब आप पधारिए. जीतके समय विघ्न न कीजिए।

अमात्य-अच्छा राजन् मेरा अब क्या जोर है जाताहूं यही चाहताहूं कि भगवान् करे तुम शीघ्र जीतो तुमारा प्रताप दिन दूना रात चौगुना बढे (अश्रु बहाताहुआ सालंकायन जाताहै)।

विदूषक-वयस्य देखो बुढो रोतेजातेहैं तुमारे भलेकी कहतेहैं मानजाओ।

नल-बक मत।

पुष्कर-इसे बकने दो (कौडी गेरकर) ये तेरह।

नल-ये सात।

पुष्कर-हां ये आए बारह बारह, लाइए।

नल-अच्छा शस्त्रशाला भी आपकी हुई।

पुष्कर-और कुछ लगाओ।

नल-हां हां अबके रथशालाको लगाताहूं।

द्वारपाल-(आकर) श्रीमहाराज प्रजाके प्रधान प्रधान लोग महाराजके दर्शनको आएहैं।

नल-क्या कार्य है?।

द्वारपाल–यह तो बताते नहीं ।

नल–तुझे कुछ प्रतीत होताहै वा नहीं ? ।

द्वारपाल–द्यूत रोकनेको आए प्रतीत होतेहैं ।

नल–(विदूषकसे) क्या आज लोग बाउले होगएहैं यदि हारताहूं तो मैं यदि जीतूंगा तो मैं, लोगोंको इससे क्या (द्वारपालसे) जाओ कहदो इस समय अवकाश नहीं ।

द्वारपाल–(कर जोरके) प्रभो यह घर तो सदासे प्रजाका कहना मानता आयाहै प्रजा बारबार कर जोर प्रार्थना करतीहै कि द्यूतको छोडदो । प्रजा रोरहीहै द्यूतको त्यागकर उसे धैर्य देनाचाहिए ।

नल–यहांसे जायगा नहीं ? ।

द्वारपाल–(कर जोर) जो आज्ञा (रोताहुआ जाताहै) ।

पुष्कर–(कौडी गेरकर) ये सात ।

नल–ये तीन ।

पुष्कर–ये ग्यारह ।

नल–यह एक ।

पुष्कर–ये आठ आठ देखलो ।

नल–देखलिए रथशाला तेरी हुई ।

(इंद्रसेन और इंद्रसेना आतेहैं)

दोनो–बाबा ।

नल–हां बेटा ।

दोनो–बाबा अब तुम मत खेलो ।

नल–बेटा तुम्हें इससे क्या ।

दोनो–तुम हाडते जातेहो ।

नल–अब जीतेंगे ।

इंद्रसेन–बाबा तुम शस्त्रशाला तो हाड दी अब मैं शस्त्र कहांसे लऊंगा ? ।

नल–बेटा और बहुत बनवादूंगा ।

दोनो–बाबा जब तुम घड हाडदोगे तो हम कहां रहेंगे ।

विदूषक–कुमर आज महाराजको तुमारी कुछ भी चिंता नहीं ।

दोनो–क्या बाबा तुम हमको भूलगए ? ।

नल–नहीं नहीं बेटा, यह तो बकताहै ।

दोनो–बाबा जब तुम ऐसे ऐसे राज हाड जाओगे तो बाबा हम कहांसे खएंगे कहांसे पहिरेंगे हमको कौन खडच देगा ।

नल–बेटा मैं दूंगा ।

दोनो–तुम कहांसे दोगे, मैया किससे मांगेगी कहां जायगी ? ।

नल–बेटा तुम क्यों उदास होतेहो ।

दोनो–बाबा लोग कहतेहैं तुमारे बाबा तो इसीतडह सभ राज हाड जाएंगे तब रातको जैसे बच्चे मांगने आतेहैं उसी तडह तुमको भी घड घड भीख मांगनी पडेगी ।

नल–शातं पापं, बेटा लोग बकतेहैं ।

दोनो–नहीं नहीं अब मत खेलो उठो (नलको दोनों उठातेहैं) हम नहीं खेलने देंगे । (विदूषक सैनसे जताताहै कि नलको खैंच लेजाओ) ।

पुष्कर–(मनमें) इनको किसीने सिखायाहै ।

नल–बेटा देखो तो जाकर मेरी बैठकमें कैसे सुंदर दो मोर आएहैं ।

दोनो–कब ।

नल–तुम नहीं देखे ? ।

दोनो–नहीं तो

नल–अभी आएहैं वे नाचते भी हैं जाओ देखो (विदूषकसे) लेजाओ ।

दोनो–बाबा तुम भी चलके देखो ।

नल–तुम चलो मैं आताहूं (दोनोंको प्यार देतेहैं) (विदूषकसे घुडककर) वीसधार कहा है इन्हे ले नहीं जातेहो ।

विदूषक–(दोनोंसे) आओ आओ अपने चलें (दोनोंको गोद उठाकर लेजाताहै) ।

पुष्कर–दाव लगाओ और कछु

नल– .... वस्त्र कोठरी लाई ।

पुष्कर–(कौडी गेरकर) एक

नल– .... तीन

पुष्कर— .... नव

नल— .... सात

पुष्कर— .... अठ, वसन भए मम भाइ ॥६

नल—हां हां ।

पुष्कर—और कछु दाव लगाओ ? । (दमयंती आतीहै)

नल—आसन आसन ।

दमयंती—बस मुझे आसन नहीं चाहिए ।

नल—कैसे पधारीं ? ।

दमयंती—यह पूछनेको आईहूं कि इंद्रसेनकेलिए क्या जीता तथ इंद्रसेनाकेलिए क्या जीता ।

नल—यहां हारा ही क्या है जो जीतता ? ।

दमयंती—अश्वशाला गजशाला रथशाला वस्त्रभंडार और शस्त्रशाल इत्यादि तो सभ हारचुकेहो शेष रही इन भीतोंपर कहतेहो कि क्य हाराहै ? ।

नल—आप तो विना कारण ही घबरारहीहैं ? ।

दमयंती—हम लोगोंपर भिक्षा मांगनेका समय आरहाहै आपके जाने कुछ कारण ही नहीं ।

नल—आप चिंता न करें आपके सुखमें न्यूनता न होगी ।

दमयंती—मेरा सुख तो कूएमें पडा, आपको इन बच्चोंकी भी चित नहीं ?, आर्यपुत्र जो सदा पुष्पोंपर खेलनेवाले उनको कांटोंपर लेटनेक समय आरहाहै, हाय आर्यपुत्र ये उस महाराजके पौत्र आपके बेटे ज घर घर भिक्षा मांगेंगे तब क्या आपको लज्जा न आएगी ? अच्छा ये बच्चे भी दूर रहें आप अपना तो ध्यान करो ।

नल—क्यों व्यर्थ अमंगल वचन बोलतीहो ।

दमयंती—आर्यपुत्र यद्यपि इस समय मेरे वचन आपको कडवे प्रतीत होतेहैं किंतु किसी समय आप इन वचनोंको स्मरण करोगे, इसीप कहाहै “ हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ” । प्रजामें हाहाकार मचरहाहै आप उधर भी ध्यान नहीं देते, आपने इतने वृद्ध मान्यवर अमात्यका भी कहना नहीं माना कुछ तो सोचिए ?

या सद्विवेकनिपुणा प्रवणा स्वधर्मे
देवैर्नरैश्च मुनिभिर्बहुधा प्रशस्ता ।
सा राजमार्गकुशलापि मतिस्तवाद्य
मद्वक्रभाग्यवशतः क्व गता न जाने ॥ ७ ॥

नल—मैं ऐसा ही मूर्ख हूं ।

दमयंती—बस मैं इन बातोंसे नहीं मानती आपको यह क्षत्रियधर्मविरुद्ध द्यूत छोडकर उठना ही होगा ।

नल—क्या तुम मुझपर शासन करतीहो ? ।

दमयंती—शासन नहीं करती विनती करती हूं ।

नल—अच्छा तो मेरी आज्ञा है यहांसे हटजाओ ।

दमयंती—श्रीमहाराजकी जो आज्ञा (मनमें) आर्यपुत्रको जो आज इतना हठ चढा है इसका परिणाम न जाने क्या होनाहै (दक्षिणांग फुरकताहै) और क्या है विपत्के दिन आगएहैं अरे मन क्या सोचताहै बच्चोंको कुंडिनपुरको झट भेजदे फिर जो होगा देखा जायगा (रोतीहुई भीतर जातीहै) ।

नल—अच्छा अबके भूषण भंडार लगाया ।
पुष्कर—हां ! (कौडी गेरकर), ग्यारह
नल— .... नव
पुष्कर— .... तेरह
नल— .... इक
पुष्कर— .... आठ पडे अब आय ।
नल—भूषण सभ तेरे भए
पुष्कर— .... अबके कोश लगाय ॥ ८ ॥

---

७ येति—जो सत् असत्के विवेकमें निपुण क्षत्रियधर्ममें तत्पर देव नर तथा मुनीश्वरोंसे अनेकवार प्रशंसा की गई और राजनीतिमें कुशल आपकी मति थी वह मेरे भाग्यकी वक्रताके (दौर्भाग्यके) कारण न जाने कहां चलीगई ॥

(नेपथ्यमें)

सूत-श्रीमहारानीजीकी आज्ञानुसार रथ आगयाहै।

दमयंती-आर्य ! इंद्रसेन और इंद्रसेनाको सावधानतासे कुंडिनपुरमें मेरे पिताके निकट छोड आओ। इधरकी यह सभ दशा निवेदन करदेनी। मेरी मातासे मेरीओरसे कर जोर निवेदन करना कि मैं जानतीहूं आप इन बच्चोंको मुझसे भी विशेष स्नेहसे पालन करेंगी तथापि मेरा यह व्याकुल हृदय अधीर होरहाहै इससे प्रार्थना है कि ये दो मेरी सौभाग्यलताके फल हैं इनको अपना जान जैसे कैसे भी पालन करते रहना, हा दैव (रोनेका शब्द आताहै)

सूत-आप कुछ चिंता न करें मार्गमें इनको कुछ श्रम न होगा।

दमयंती-बेटा इंद्रसेन !।

इंद्रसेन-हां मैया।

दमयंती-तुमारे नाना तुमको देखना चाहतेहैं तुम दोनो भैनभाई इस रथपर बैठकर जाओ।

इंद्रसेन-मैया कहां

दमयंती-कुंडिनपुरको।

इंद्रसेन-कितनी दूर है ?।

दमयंती-कुछ दूर है, शीघ्र पहुंच जाओगे।

इंद्रसेन-मां पहिले तू बैठ।

दमयंती-मैं कल्हको आऊंगी।

इंद्रसेन-नहीं मैया हम एकले नहीं जाएंगे।

दमयंती-बेटा कहना मानो तुम चलो मैं आतीहूं।

इंद्रसेन-नहीं तू नहीं आएगी।

दमयंती-मैं अवश्य आऊंगी।

इंद्रसेन-चलनाहै टो अब चल।

दमयंती-अच्छा मैं अभी तुमारे पीछे पीछे दूसरे रथमें आतीहूं।

सूत-आयुष्मन् एकले रणमें कैसे चला करोगे तुम चलो श्रीमती केलिए दूसरा रथ आरहाहै। और चलो तुमको एक खेल दिखाऊंगा

इंद्रसेन इंद्रसेना-क्या खेल ? ।

सूत-दो पीले बंदर आएहैं वे बडा सुंदर नाचतेहैं ।

दोनो-चलो चलो तो । मैया हम बंदरवालेको क्या देंगे ।

दमयंती-रथमें तुमारे रुपए रक्खेहैं उनमेंसे कुछ देना ।

दोनो-अच्छा मैया तुम भी खेल देखना ।,

दमयंती-अच्छा ।

इंद्रसेन-मैया मेरा खड्ग ? ।

दमयंती-यह ले ।

इंद्रसेन-मैया धनुष्बान ? ।

दमयंती-ये ले । बेटा तुमारे नाना नानी (गद्गदस्वरसे) जो काम कहें उसे कर देना, वे जैसे कहें वैसे रहना, ऊधम और हठ मत करना, तुम आपुसमें लडना मत, प्यार रखना ।

दोनो-अच्छा । (रोनेका शब्द आताहै)

दमयंती-अच्छा जाओ बेटा । आर्य वार्ष्णेय ? सावधानतासे जाना ।

इंद्रसेन-माता परनाम करताहूं ।

इंद्रसेना-मां परनाम करतीहूं ।

दमयंती-(गद्गदस्वरसे) जीते रहो । (रोतीहै)

नल-अच्छा अबके कोशको ही लगाताहूं ।

पुष्कर-(कौडी गेरकर) पँद्रह

नल- .... तेरह

पुष्कर- .... तीन

नल- .... नव

पुष्कर- .... चार पडे, धन आय ।

नल-महाकोश अब तब भयो

पुष्कर- .... अबके राज लगाय ॥ ९ ॥

नल-अच्छा अबके समग्र राज्यको लगाताहूं तू जीता तो तू निषधका राजा, मैं जीता तो तेरा सर्वस्व लेलूंगा ।

पुष्कर-(मनमें) न जाने अबके क्या हो (प्रकट) हां हां ।

नल—दाउ गेर ।

पुष्कर—(कौडी गेरकर) नौ

नल— ....तेरह

पुष्कर— .... इक

नल— .... तीन

पुष्कर— .... नव

नल— ....सात

पुष्कर— .... आठको दाउ ।

निषध भूप पुष्कर भयो, रह्यो जु सोउ लगाउ ॥ १० ॥

नल—अब और क्या है ।

पुष्कर—क्यों कुछ रहे जब आपसे चतुर खेलने बैठें, यह तो कहो दमयंती राज्यके भीतर किं वा बाहिर ? ।

नल—क्यों बकताहै ।

पुष्कर—अब मैं राजा हूं सोचकर बोलियेगा ।

नल—बहुत अच्छा ।

पुष्कर—द्वारपर कौन है ? ।

द्वारपाल—(आकर) मैं हूं ।

पुष्कर—'मैं हूं' क्या बे, बोलना नहीं आता ?, जानताहै अब मैं राजा हूं ।

नल—(द्वारपालसे) भैया जैसे मेरा मान करतेथे उससे भी विशेष इनका मान करो अब ये तुमारे राजा हैं ।

द्वारपाल—क्या अब पुष्करका राज्य है ?

पुष्कर—हां ।

द्वारपाल—ऐसा है तो मैंने भृत्यभाव छोडा अपना घर सम्हालना ।

पुष्कर—दूसरे द्वारपालको सम्हाल ।

द्वारपाल—तेरे बापका कोई नौकर रक्खा है ।

पुष्कर—अरे समझके बोल ।

द्वारपाल-बैठा बातें क्या बनाताहै कुछ पौरुष है तो इधर आ तेरा मेरा खड्गसे द्यूत हो। कृतघ्न तैंने कपटसे हमारे महाराजको जीतलिआ थूक है तुझपर (जाताहै)।

पुष्कर-यहां कोई और है?।

एक पुरुष-(आकर) कहो।

पुष्कर-तुझे हमारा भृत्यभाव स्वीकार है?।

पुरुष-नहीं, तुझसे कृतघ्नका कौन भृत्य बनेगा (जाताहै)।

पुष्कर-कोई और है?।

और पुरुष-(आकर) आज्ञा।

पुष्कर-तुझे हमारा भृत्यभाव स्वीकार है?।

पुरुष-क्यों नहीं जो अन्न देगा उसीके हम भृत्य।

पुष्कर-तेरा क्या नाम है।

पुरुष-माणिक।

पुष्कर-और भी जो लोग हमारे भृत्य बननाचाहैं उन्हे लाओ।

माणिक-जो आज्ञा (जाताहै)।

(नेपथ्यमें)

विदूषक-श्रीमहारानीजी महाराजको जो हठ झढाथा उसका फल देखा? सभ राजपाट हार बैठे, आप नेक जाकर महाराजसे पूछिए तो कि द्यूतका फल देखा?।

दमयंती-वसंतक इस पूछनेसे क्या बनेगा, जो समय था उस समय तुम लोगोंने भी बहुत कहा मैने भी बहुत कहा आर्यपुत्र नहीं माने, अब तो इस वारेमें उनसे कुछ कहकर उन्हे लज्जित करनेके विना और कुछ फल नहीं, और मेरा यह धर्म नहीं कि अब मैं उनको कुछ कहूं, मेरा धर्म यही है कि जिस दशामें आर्यपुत्र रहेंगे उस दशामें रहूंगी जिधरको जाएंगे उधरको उनके पीछे पीछे चलीजाऊंगी।

विदूषक-आप मत कहिए, मैं तो जाकर कहताहूं।

माणिक-(चार पुरुषोंके साथ आकर पुष्करसे) महाराज बडी कठिनसे ये चार पुरुष मिलेहैं नगरमें कोई भी आपका भृत्य बनना नहीं चाहता।

पुष्कर—इनमेंसे एकको कहो कि नगरमें मेरे राज्यकी डिंडिमा (डोंडी) कर देवे और राज्यभरमें डिंडिमा करानेका उद्योग करे।

माणिक—जो आज्ञा (एक पुरुषसे) तुम इस कामको करो।

पुरुष—बहुत अच्छा (जाताहै)।

विदूषक—(आकर नलसे) प्रिय सखे आपको जो हठ झढाथा उसका फल देखा, आपको प्रजाने अमात्यने महारानीजीने और तो क्या द्वारपालोंने तथा बच्चोंने भी द्यूतसे रोका आपने एक न मानी अब सूझी ?।

पुष्कर—(माणिकसे) एक पुरुष द्वारकी रक्षापर रहो।

माणिक—द्वारपर एक पुरुष है।

विदूषक—(नलसे) क्षत्रियराज होकर नपुंसककी तरह खडे क्या देखतेहो अब पुष्करसे खड्गका द्यूत खेलो।

नल—वसंतक मैंने धर्मका द्यूत खेलाहै यह समय खड्गका नहीं, जैसी भगवदिच्छा होतीहै वैसा ही होताहै, मैं अधर्मसे कोई काम करना नहीं चाहता, फिर श्रीहरिकी इच्छा अनुकूल होगी तो देखाजायगा।

विदूषक—आपको नहीं कुछ करना तो सभ प्रजा तथा सेना आपकी दास है आप नेक कहदीजिए पुष्करको तो लोग टुकडे टुकडे करदेंगे।

नल—हरिः हरिः ऐसा अधर्म करना उचित नहीं।

विदूषक—ऐसे भी नहीं करना तो आप आज्ञा दीजिए सेना आपकी ओरसे स्वयं पुष्करके साथ धर्मसे युद्ध करेगी।

नल—सखे वसंतक यह समय इन बातोंका नहीं है संतोषका है।

विदूषक—अच्छा हमे कहिए किधरको जाएं ?।

नल—तुम अब पुष्करकी सेवा करो।

विदूषक—हम इस कृतघ्नकी सेवा करें ? हरि हरि हम तो इसपर थूकते भी नहीं।

पुष्कर—(विदूषकसे) अबे सम्हलकर बोल।

विदूषक—(हाथ दिखाकर पुष्करसे) अरे कृतघ्न तैने हमारे महाराजको कपटसे जीतलिआ तू इसका ऐसा फल भोगेगा जो कभी न भूलेगा, अरे मूए तुझे पहिले क्या कमी थी जो ऐसा अधर्म किआ, भला चाहताहै तो अब भी महाराजके चरणोंपर गिरजा सुख पाएगा।

पुष्कर–तेरे महाराजके चरणोंपर क्यों न गिरूं।

विदूषक–आबे अधर्मी (मारनेको पुष्करपर झपटताहै)।

पुष्कर–पकडो पकडो (एक पुरुष विदूषकको पकडके बांधताहै)।

विदूषक–(पुष्करसे) थूक है तुझपर थूक है (इसीतरह गाली देताहै)।

नल–सखे वसंतक संतोष करो तुमारी बुद्धि कहां गई ? !

पुष्कर–माणिक ? कहींसे पुरानी दो धोती और दो चद्दर लाओ, और दमयंतीको यहां भेजो।

माणिक–जो आज्ञा। (मनमें) हाय भगवत्‌ने यह पेट कैसा बुरा लगायाहै नहीं तो किसका जी महाराज नलदमयंतीके साथ कठोर व्यवहार करनेको चाहेगा (जाताहै)।

एक पुरुष–(आकर) पुष्करजी सभ सेनापतिओंने सेनापत्यसे जबाब दिआहै अपनी सेना सम्हालनी।

और पुरुष–(आकर) पुष्करजी कोशाध्यक्षजीने कोशाध्यक्षतासे जबाब दिआहै कपटसे जीता कोश सम्हालना।

और पुरुष–(आकर) पुष्करजी महाराजनलके साथ रहनेवाली सेना भृत्यभावसे जबाब देतीहै।

रसोइया–(आकर) पुष्करजी रसोई करनेवालोंकी ओरसे रसोई करनेका जबाब समझना।

पुष्कर–(सभसे) जाओ कहदो कि हमे तुम लोगोंकी कुछ अपेक्षा नहीं हमें तुमारेसे बहुत मिलेंगे।

सभ–जब मिलेंगे तबी जानेंगे (सभ जातेहुए आपुसमें) देखा भैया कृतघ्न कैसा विषका घडा है, महाराजनलके मुँहसे आजतक कभी ऐसा कठोर शब्द न सुना। कोई कभी भृत्यताको छोडकर जाता तो महाराजनल यही कहते कि मुझसे राजा आपको बहुत मिलेंगे मुझे आपसा पुरुष नहीं मिलेगा। भाई महाराजनलने भृत्योंको भृत्य नहीं समझा किंतु भाई समझते रहे ! भाई महाराजनलकी जिसने सेवा कीहै उसका मन दूसरेकी सेवामें कभी नहीं लगेगा (सभ गए)।

दमयंती–(आकर नलसे) आर्यपुत्र (दमयंतीके पीछे पीछे बहुतसी उसकी सखियां आतीहैं)।

एक पुरुष–(आकर नलसे) श्रीमहाराज ।

नल–भैया अब मैं महाराज नहीं पुष्करजी महाराज हैं।

पुरुष–श्रीमहाराज हमारे तो आप ही महाराज हैं, जिस इस मुख महाराजश्रीवीरसेनका अन्न खायाहै उससे इस गद्दीपर महारा वीरसेनके वंशके विना दूसरेकेलिए महाराज शब्द कभी न निकलेगा

विदूषक–ऐसे ही चाहिए। थूक है पुष्करपर।

पुरुष–श्रीमहाराज अमात्य सालंकायनजी निवेदन करतेहैं कि इस समय आता किंतु मैं अपने इन नेत्रोंसे महाराजको इस दशा देखना नहीं चाहता, मैंने न जाने पूर्व जन्ममें क्या घोर पाप किआ जो मुझे महाराजकी यह विपत्ति कानसे सुननी पडी, मैं अब इस देश रहना नहीं चाहता इस हेतु बदरिकाश्रमको जाताहूं वहां श्रीनाराय स्मरणसे शेष दिनोंको व्यतीत करूंगा। मैं बहुतसे आपको आशीर्वा देताहूं भगवान् श्रीनारायण आपकी इस विपत्तिको शीघ्र निवृ करेगा। और आप उदास नहीं होना भगवत्कृपासे आप शीघ्र ह फिर इस निषधराज्यके सिंहासनपर विराजेंगे।

सभ–तथास्तु तथास्तु।

पुरुष–और निवेदन करतेहैं कि जब फिर आप राज्य करेंगे तो मे पुत्र आपकी अमात्यताको करेगा, यद्यपि मेरा पुत्र भी अब यहां रहन नहीं चाहता तथापि मैं जानबूझकर उसे यहां छोडे जाताहूं।

नल–भद्र मेरीओरसे आर्य सालंकायनको प्रणाम कहो और कहना कि मैं आपके इन प्रेमवचनोंका किस मुँहसे उत्तर दूं और क्या उत्तर दूं?

पुरुष–जो आज्ञा (प्रणाम करके जाताहै)।

पुष्कर–(नलदमयंतीसे) अब क्या देखतेहो इन वस्त्रभूषणोंक उतारदो और मेरा राज्य छोडकर अन्य किसी देशमें चलेजाओ।

(नल दमयंती भूषण उतारके पुष्करके आगे गेरतेहैं साथ ही दमयंतीकी सखियां भूषणोंको उतारकर गेरतीहैं। सखियां और विदूषक पीटतेहुए गीत गातेहैं)

सभ–निठुर विधाता कीनी काय (क्या)।

नलदमयंतीविपदा देखी भाग बुरे हम पाय।

सभ सखियां मिल रोएं पुनि पुनि छतियां पीटें धाय धाय

पुरनरनारी विलपत डोलें बोले फिर फिर हाय हाय।
इह दुख देख्यो जाय न सजनी मुखसों निसरत हाय माय।
पशुपंछीहूं खानपानको छोडें कलपत काय काय॥ ११॥

माणिक–(आकर पुष्करसे) महाराज ये दो धोती दो चद्दर पुरानी मलीहैं।

पुष्कर–(माणिकसे) नल दमयंतीको दे दो (नल दमयंतीसे) इस पुरानी धोती और चद्दरको पहिरलो और इन वस्त्रोंको उतारदो। (माणिक कांपताहुआ नलदमयतीको पुराने वस्त्र देताहै नलदमयंती उन्हे पहिरतेहैं) (फिर सखियां और विदूषक गीत गातेहैं)

सभ–पुष्कर तुझपर थूक थूक।
कपटद्यूतसे राज लिआ तू पुष्कर तुझपर थूक थूक।
क्षत्रियवंश जन्म लै कीनो अधरम तुझपर थूक थूक।
राजदंपती दुख तू दीनो पुष्कर तुझपर थूक थूक।
भाई बन तू दगा दिखाया पुष्कर तुझपर थूक थूक।
सभ जग मिलकर लानत देवे पुष्कर मुँहपर थूक थूक॥ १२॥

नल–(सभसे) आप लोग यह क्या बोलतेहैं बस कीजिए।

पुष्कर–(मनमें) जीमें तो आताहै इन्हे कैद करादूं परंतु ये तो बहुतसी हैं मेरे पास आदमी कम हैं, करें बडबड गालिओंसे अपना क्या बिगडताहै राज्य तो हाथमें आगया। (प्रकट) माणिक ?।

माणिक–जी।

पुष्कर–नलदमयंतीको नगरसे बाहिर करदो और जो कोई नल-दमयंतीका जलमात्रसे भी आदर करे उसका हमारे विना पूछे वध कर डालना और इनके साथ भी कोई न जाने पाए सभको रोकलो।

माणिक–बहुत अच्छा। (नल दमयंती पुराने वस्त्र पहिरे जारहेहैं)

दमयंती–(सभसे) सखिओ जय हरि. भूल मत जाना।

सभ–हाय हाय (सभ मूर्छित होकर गिरतेहैं)।

---

१ पाठकवर सुहृदशिरोमणे इस समय नलदमयंतीके हृदयपर क्या आतीहोगी इसे तनिक सोचिए तो !। मैं अपनी शक्त्यनुसार इस विपत्तिको भोग चुकाहूं मेरे भाइओंने भी मेरे साथ ऐसी ही कीहै।

पुरुष-(आकर नलसे) श्रीमहाराज अमात्य सालंकायनजी निवेदन करतेहैं कि मेरा घर तो आपका ही है आप मेरे घरमें निवास करें फिर जो होगी देखीजाएगी।

नल-भद्र मेरीओरसे आर्यसालंकायनको कहो कि पुष्करने मेरे सत्कार करनेवालेकेलिए वध दंड सुनादियाहै मैं अपने सुखकेलिए आप लोगोंका अनिष्ट देखना नहीं चाहता। (नलदमयंती गए)

(नेपथ्यमें कोलाहल होताहै)

पुष्कर-यहां कौन है ?। (मनमें) इन मूर्छितोंको कैद कर लेनेको यह समय अच्छा है।

द्वारपाल-(आकर) कहिए ?।

पुष्कर-कैसा कोलाहल होरहाहै ?।

द्वारपाल-क्या पूछतेहैं नगरका जीव जीव रोरहाहै जिधरको नल जारहेहैं प्रजा भी उसीओरको चलीजातीहै नगर ऊजड हुआजाताहै और तो क्या कहूं पक्षी भी नलकीओर उडे जातेहैं। महलके सभ पक्षी पिंजरोंमें फडक फडककर मरगए।

पुष्कर-तुम जाओ नलदमयंतीको नगरसे निकालकर नगरके सभ द्वार बंद करदो जो कोई भी बाहिर निकल न सके।

द्वारपाल-जो आज्ञा (जाताहै) (नेपथ्यमें-)

प्रजा-(नलसे) महाराज हम लोगोंको छोडे आप कहां जारहेहैं कौन हमारी रक्षा करेगा कौन हमारा परिपालन करेगा, पुष्कर कौन होताहै हम आपकी प्रजा हैं आप यहांही निवास कीजिए।

नल-हे मेरे प्यारे पुरवासिओ आपने इस स्नेहसे तो मानो मुझे मोल लेलिआहै। जीवको भगवदिच्छाके अनुकूल चलनाचाहिए भगवान् मुझे विपत्ति भुगाना चाहतेहैं इस हेतु मुझे विपत्ति भोग लेनी ही उचित है। मैने धर्मका द्यूत खेलाहै मैं अधर्मसे कोई काम नहीं करना चाहता। पुष्करने मेरे सत्कार करनेवालेकेलिए भारी दंड नियत किआहै मुझे उचित नहीं कि मैं आपके दुःखको देखूं। आजतक मुझसे जो बन आई वह आपलोगोंकी सेवा की मैने अपने आपको आपका राजा नहीं समझा किंतु आपलोगोंका पहरेवाला समझा। अब

इस समय आपकी रक्षाकेलिए मेरा पहरा नहीं है भगवान् श्रीनारायण ही आपलोगोंकी रक्षा करें ।

प्रजा–आपके ये वचन तो हमारे हृदयको टुकडे टुकडे कर डालतेहैं । हाय हाय आजसे पूर्व ही हमारे प्राण क्यों न निकलगए । हमारी इससे बढकर और क्या निर्भाग्यता होगी जो मातापितासदृश परिपालन करनेवाले हमारे महाराज तथा महारानी एक एक धोती पहिरे राज्य छोडकर जारहेहैं । हा धिक् हा धिक् क्या समग्र निषधमंडलपर शनिश्चर आगया । हाय हमको अपने महाराजके साथ भी जाना नहीं मिलता । हाय इस अधर्मी कृतघ्न पुष्करने अनर्थ करदिआ ।

हा लक्ष्मीः किमियं नलेन सहितं स्थानीयतो गच्छति
किं वा शैलसुता शिवानुकरणात् संदृश्यते तापसी ।
पङ्कैः किं कलुषीकृता कृशतनुर्भागीरथी भासते
किं राहो रदनैर्विधौ व्यसनिनि म्लानिं गता कौमुदी ॥ १३ ॥
हा चन्द्रः किमु सैंहिकेयरदनैर्घस्रेपि संचर्व्यते
किं वा वासररत्नमण्डलमिदं ध्वान्तेन संछाद्यते ।
हा किं मौक्तिकहार एष विमलः पंकेषु संलीयते
पञ्चास्यो मृगदंशकेन किमु वा निर्वास्यते कन्दरात् ॥ १४ ॥

माणिक–(आकर पुष्करसे) अरे महाराज यदि जीना चाहतेहो तो यहांसे उठकर कहीं छिपजाओ ।

पुष्कर–क्यों क्यों ।

---

१३ हेति, हाय यह (दमयंती) क्या लक्ष्मी ही नलके साथ इस नगरसे निकली जातीहै, किंवा पार्वतीजी महादेवके अनुकरणार्थ तापसी बनरहीहै, किं वा श्रीगंगा पंकसे कलुषित (गंधली) हुई प्रतीत होतीहै, किंवा राहुदंतोंकी व्यथासे चंद्रमाके दुःखित होनेके कारण चंद्रिका ही मलिन होरहीहै । निकली जाती दमयंतीका वर्णन है ॥

१४ हेति, हाय क्या दिनमें भी राहुसे चंद्रमा चबाया जाताहै, किं वा सूर्यमंडल ही अंधकारसे आच्छादित होरहाहै, किंवा स्वच्छमोतिओंका हार पंकमें लीन होरहाहै, किंवा कंदरासे सिंह बिलारसे निकालाजाताहै, अर्थात् क्या सिंहको बिलार निकाल रहाहै । निकलेजाते नलमहाराजका वर्णन है ॥

माणिक–क्यों २ क्या समग्र प्रजा विरुद्ध होरहीहै।

पुष्कर–नलके सिखानेसे ?।

माणिक–नल नहीं सिखाते वे तो यही कहतेहैं कि अब पुष्करको ही महाराज मानों किंतु प्रजा स्वयं विरुद्ध होरहीहै। मेरे ही सिरपर एकने खड्ग रखदिआथा बडे कष्टसे नलने ही छुडायाहूं।

पुष्कर–हां ऐसा है तो यहां बैठना उचित नहीं, फिर धीरे धीरे प्रजाको भी सीधा करूंगा। माणिक इस समय तुमने मेरे प्राण बचाए इस हेतु तुमको ही मैंने अपना अमात्य बनाया। नलदमयंतीको तो नगरसे निकाल दिया ?।

माणिक–जी हां, अब यहांसे उठो।

पुष्कर–तुम किवाड बंद करके इन मूर्छितोंको कैद कर लो ये मूर्छासे उठ खडेंगे तो कठिन पडेगी मैं जाताहूं।

माणिक–ठीक है (सभ जातेहैं माणिक भीतरसे द्वारके किवाड बंद करताहै)।[1]

इति अनर्घनलनाटकका षष्ठांक समाप्त हुआ।

अथ

सप्तमांक

(वनमें एक स्थानपर नीलवेशसे कलि (कलियुग) बैठाहै)

कलि–दमयंतीने नलको वरनेमें जैसी कुछ ढिठाई की उसका फल भी उसे वैसा ही मिलगया, ऐसे ढीठजनोंको उनकी ढिठाईका फल देना ही चाहिए इसी अभिप्रायसे कहाहै–

> दण्डदानसमर्थेषु प्रातिकूल्यं न चाचरेत्।
> प्रातिकूल्यप्रकुप्तास्ते दण्डयन्त्यपि सज्जनान्॥ १॥

---

१ दंडेति, जो दंड देसकतेहैं उनके प्रतिकूल नही होनाचाहिए क्योंकि वे कुपित हुए हुए सज्जनोंको भी दंड देदेतेहैं। यहां कलिकी दुष्टता झलकाई है॥

---

१ किवाड बंद करनेके व्याजसे यहांपर अंक समाप्त किआहै यह एक प्रकारसे नवीन रीति है आशा है मेरी इस नूतनरीतिसे पाठकवर संतुष्ट होंगे रुष्ट न होंगे।

क्या कारण है द्वापर अबतक नहीं आया ? किंवा पासोंमें प्रवेश करनेके कारण श्रांत होगयाहै अब आता ही होगा। (मूछोंपर हाथ फेरकर) यही हमारेसे शूरोंका काम है कि जिस कार्यपर हाथ डालना उसे सीमासे भी अधिक करके दिखादेना ।

(रक्तवेशसे द्वापर आताहै)

आइए ।

द्वापर–आया (कलिके बराबर बैठताहै)

कलि–कहां रहगएथे ? ।

द्वापर–घर चलागयाथा । सखे पासोंमें प्रवेश करनेके कारण अंग चूर चूर होगएहैं ।

कलि–प्यारे रात्रिमें तैलमर्दनसे सब श्रम दूर होजायगा । देखा आपने ? कैसे अजेय शत्रुको जीताहै ।

द्वापर–आप ऐसे ही समर्थ हैं । परंतु यह हमारा ही प्रताप था कि जैसे आप चाहतेथे वैसेही कौडी पासे पडतेथे ।

कलि–आपसे हो तो सज्जन मित्र समयपर काम देतेहैं ।

सज्जनानां सखे मैत्री वृद्धिशीला तथा दृढा ।
गुप्ता भवति शुद्धा च काले कार्यप्रसाधिनी ॥ २ ॥

द्वापर–जो आपके अनुचर अधर्मादिक पासे बनेथे वे कहां हैं ?

कलि–उनको एक और कार्यपर भेजाहै ।

द्वापर–किस कार्यपर ? ।

कलि–उन्हे कहाहै कि नल जहां हो वहां जाकर तुम पीतपक्षी बनकर बैठ जाना तुमारे पकडनेको नल अपना वस्त्र तुमारे ऊपर डालेगा उस वस्त्रको लेकर उडदेना, क्यों कि नलदमयंतीके पास पृथक् पृथक् ओढनेको दो वस्त्र हैं यह मुझे सह्य नहीं ।

द्वापर–क्या वे अबतक नहीं आए ? ।

कलि–आजाएंगे । (नीलवेशसे अधर्मादिक आतेहैं)

---

२ सज्जनेति, सखे सज्जनोंकी प्रीति दृढ और बढनेवाली होतीहै वह गुप्त होकर भी समयपर बडा काम देतीहै ॥

अधर्मादि–महाराजकी जय हो।

कलि–आओ बैठो, कहो काम बना ?।

अधर्मादि–(बैठकर) जिस कार्यको महाराज चाहें वह कैसे न बने

कलि–सभ वृत्तांत क्रमसे सुनाओ।

अधर्मादि–हम आपकी आज्ञा पाते ही नल जहां था वहां जाक पीतपक्षी बनकर बैठगए नलदमयंती बहुत भूखेथे इस हेतु नलने हमको पकडनेकेलिए हमारे ऊपर अपनी चद्दर डाली हम भी झट उडदि और कहा कि हे नल हम वे ही पासे हैं, यह सुनते ही दमयंती मूर्छित होकर गिरगई यह लीजिए वही यह चद्दर है।

कलि–अपने पास रक्खो, अब दोनों कहां हैं ?।

अधर्मादि–इसी वनमें भूखे प्यासे भटकते फिरतेहैं।

(नेपथ्यमें)

श्रीनारायण वासुदेव गोविंद हरे मुरारे।

कलि–अरे हमको नष्ट करनेवाला यह शब्द यहां कहांसे ?।

अधर्मादि–(इधर उधर देखकर) महाराज यह तो नलदमयंतीका शब्द है। नलदमयंती विना और कौन दुःखी है जो ऐसे दुःखस्वरसे इन शब्दोंको बोलेगा।

कलि–हां चलो तो छिपकर इनको देखेंगे।

द्वापर–अच्छा चलो, आप तो नलमें बैठे सभ देख ही रहे हैं (सभ जातेहैं)

॥ इति विष्कंभक ॥

(छोटी छोटी धोती पहिरे ऊपरसे दोनों एक चद्दर ओढे दमयंती और नल आतेहैं)

नल–हे नाथ हे प्रभो।

दमयंती–श्रीपते।

नल–प्रारब्धकर्मका भोग बडा ही प्रबल है आज तीन दिन बीतगए फल मूल तो क्या मिलनेथे प्यास बुझानेको कहींसे जल भी नहीं मिलता। सत्य कहाहै " नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरापि "। अच्छा नारायण गोविंद हरे।

दमयंती–कर्मणा किं जडेन स्याद्भगवानिन्दिरापतिः ।
भ्रामयत्यखिलाँल्लोकान् बलीयस्या निजेच्छया ॥ ३ ॥

नल–इन्ही बातोंसे प्रतीत होताहै कि इस प्रपंचका कोई प्रभु अवश्य है।

दमयंती–श्रीनारायण ही प्रपंचका प्रभु है श्रुति भी कहतीहै– " नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः " किंतु वह निर्दय भी है।

नल–प्रिये ऐसा मत कहो वह तो अत्यंत सदय है दीनदयालु दीननाथ है, यह सभ तो अपने ही कर्मका फल है।

दमयंती–दीनदयालु है तो क्यों दीनोंपर ध्यान नहीं देता ? ।

नल–प्रिये वह बहुत कुछ ध्यान देताहै, यदि वह श्रीपति जीवपर कृपा न करे तो इस संसारसागरसे पार होना तो दूर रहा इस संसारमें ही पग रखनेको भी आधार न मिले। अन्यथा तुम ही कहो कि अपनेको जो कभी कभी कहीं कहीं बैठनेको छाया मिल जातीहै चलनेको यह पृथ्वी मिल रही है इसमें उसकी कृपालुताके सिवाय और भी कुछ कारण है ? । पृथ्वी जल तथा वायु जो सभको अपेक्षित हैं इनको क्या किसी जीवने बनायाहै ? यदि वह परम कृपालु न होता तो उसे क्या काम था जो जीवकेलिए इन पदार्थोंको बनाता ? ।

दमयंती–अच्छा होता यदि छाया भी न मिलती ।

नल–क्या तुम उद्विग्न होतीहो । प्रिये धैर्य करो वह श्रीहरि तुमारा विपत्को दूर करेगा यदि वह कर्मफलको न भुगाए तो उसकी समदृष्टितामें भेद होजाए (एक पत्तेसे दमयंतीको हवा करतेहैं) ।

दमयंती–हमारी यह दशा होरहीहै उसके जाने खेल ।

नल–यह प्रपंच उसका खेल तो हईहै अन्यथा उस अवाप्तसकलकाम भगवान् पुरुषोत्तमको क्या अपेक्षा थी जो प्रपंचकी रचना करता ? ।

पार्थिवानां शरीराणां कन्दुकं पार्थिवं यथा ।
तथात्मघनदैत्यारेः कन्दुकं जीवसञ्ज्ञकम् ॥ ४ ॥

---

३ कर्मणेति, कर्म तो जड है वह क्या करसकताहै जीवको जो सुख दुःख प्राप्त होताहै उसका कारण भगवदिच्छा ही है। गीतामें भी कहाहै " भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया "। यही वैष्णवसंप्रदायोंका सिद्धांत है ॥

४ पार्थिवानामिति, यथा पार्थिव शरीर पार्थिवगेंदसे खेलतेहैं तथा चैतन्यैकस्वरूप श्रीनारायण जीवरूपी चेतनगेंदसे खेलताहै। कहा भी है–" लीलाकैवल्यात्तु " इति ॥

दमयंती–जीवोंको विपत्तिमें फँसानेसे क्या खेल अच्छा होजाताहै ?।

नल–सुंदरि इस विपत्तिकी तो महापुरुष याचना करतेआएहैं इसका यह प्रशंसनीय माहात्म्य है कि घोरपापोंको नष्ट करदेतीहै भगवान्‌का स्मरण करातीहै कहा भी है–

" विपदः सन्तु नः शश्वद् यासु संकीर्त्यते हरिः " ।

दमयंती–हां यह तो आप सत्य कहतेहैं ।

नल–सुखकाले मनः किंचिन्नैव स्मरति तं हरिम् ।
याचन्ते साधवो दुःखं हरिकीर्तनसिद्धये ॥ ५ ॥

दमयंती–विपत्तावपि भाग्येन प्राप्नोति हरिकीर्तनम् ।
भाग्यहीनेन तत्रापि रोदनेन विशीर्यते ॥ ६ ॥

नल–सुभगे रोदनसे क्या बनसकताहै प्रत्युत अधीर कहानापडताहै, जीवको अनभिभूतचित्त होनाचाहिए । सुंदरि तुम श्रांत होगईहो बैठजाओ ।

दमयंती–बैठिये (दोनों पृथ्वीपर बैठतेहैं) हाय आर्यपुत्र कहां तो आप रत्नजटित सिंहासनोंपर विराजते थे कहां यह भूमी हाय (नलके आसपाससे कांटे ककरोंको हाथसे हटातीहै) ।

नल–प्रिये हर्षशोकादिके वेगको सहन करनाचाहिए उस भगवान् श्रीनारायणके पादपद्मपर विश्वास रखनाचाहिए ।

दमयंती–इसमें क्या संदेह है–

विश्वासभूमिर्महतां श्रीहरेः पादपङ्कजम् ।
क्षुद्रचित्तास्तु संभ्रान्त्या विश्वसन्ति कदापि नो ॥ ७ ॥

---

५ सुखेति, सुखके कालमें मन श्रीनारायणका स्मरण नहीं करता इस हेतु महात्मापुरुष विपत्तिको सदा चाहते रहतेहैं जो हरिका स्मरण हो मनुष्यजन्मका सार हरिस्मरण ही है. सांसारिकविषयोंमें तो पुरुष और पशु एक समान ही हैं शंकराचार्यजीने ही कहाहै–" पश्वादिभिश्चाऽविशेषात् " इति ॥

६ विपत्ताविति, विपत्तिमें भी किसी भाग्यवान्‌को ही हरिस्मरण प्राप्त होताहै भाग्यहीन तो विपत्तिकालको भी रो रो बितातेहैं ॥

७ विश्वासेति, महापुरुषोंका श्रीनारायणके चरणपर ही विश्वास रहताहै तुच्छजीवोंको ही उस चरणपर विश्वास नहीं होता ॥

किंतु प्राणप्यारे मैं अपनेलिए नहीं रोती केवल आपकी इस दशाको देखकर रोतीहूं कि आपसे चक्रवर्ती महाराजको ऐसी घोर विपत्ति कि-

याद्दशी विकृता भूमिः स्पृष्टा दृष्टा न चक्षुषा।
ताद्दश्यामार्यपुत्रेण कष्टं यदुपविश्यते ॥ ८ ॥ (रोतीहै)।

नल-प्रिये धैर्य करो, जीवको जो यह लोक प्राप्त होताहै वह इसी कारणसे कि सुख दुःख दोनोंका भोग हो।

सुखाय नाकं गच्छन्ति दुःखाय निरयं तथा।
सुखदुःखोभयस्यैव भोगायाऽऽयान्ति भूतलम् ॥ ९ ॥

दमयंती-प्यारे दुःख तो जीवमात्रको भोगना पडता ही है किंतु ऐसे घोर दुःखोपभोगकी तो कथा भी नहीं सुनी।

अशनायानिवृत्यर्थं भोज्यप्राप्तेस्तु का कथा।
उदन्याशमनार्थं यज्जलं चापि न लभ्यते ॥ १० ॥

नल-सुभगे इसीका नाम विपत्ति है, धैर्य करो।

दमयंती-हाय हाय कैसा भयंकर शून्य यह वन है-

पत्रं नास्ति महीरुहेषु धरणौ दूर्वादलं नेक्ष्यते
शब्दश्चापि न वा वनेषु सुलभः संश्रूयते पत्रिणाम्।
नास्ति क्वापि सुदीर्घिकाऽथ सरसी पन्था न पान्थस्तथा
भूमिः कण्टकसंकुला च सवितुस्तिग्माऽऽतपः केवलम् ११॥

---

८ याद्दशीति, जैसी मलिनभूमि कभी देखी तथा छूई भी न थी वैसी भूमिपर हे प्यारे आज आप बैठरहेहैं यह बडा कष्ट है ॥

९ सुखायेति, केवल सुख ही भोगना हो तो लोग स्वर्गको जातेहैं केवल दुःखही भोगना हो तो नरकको जातेहैं जब कर्मवश सुख दुःख दोनों भोगने होतेहै तब इस भूलोकको प्राप्त होतेहैं ॥

१० अशनायेति, क्षुधानिवृत्तिकेलिए फल मूल प्राप्त होनेकी तो कौन कथा तृषानिवृत्तिकेलिए जल भी प्राप्त नहीं होता ॥

११ पत्रमिति, अहो यह कैसा भयंकर वन है कि वृक्षोंमें पत्र नहीं पृथ्वीपर घास-तक नहीं वनमें जो सहज ही पक्षिओंका शब्द होताहै वह भी इस वनमें नहीं कहीं बावडी वा तालाव भी नहीं कहीं मार्ग किंवा पथिक भी नहीं दीखता। है तो केवल कंटकोंवाली भूमी तथा सूर्यकी धूप है बस ऐसा भयंकर यह वन है।

नल-हरे वासुदेव।

दमयंती-प्यारे आपका मुख तो तृषासे मुरझाता जाताहै।

नल-कुछ बात नहीं।

दमयंती-प्राणप्यारे मुझ निर्भाग्याके कारण आपकी यह दशा हुई। (रोतीहै)

नल-इसमें तुम्हारा क्या दोष है प्रत्युत मेरे पीछे तुमको यह दुर्गति सहनी पडी।

मोर विपदबस भामिनी भोगौ दुःख अपारु।
लोहसंग जस पाइकै डूबत सुंदर दारु॥ १२॥

दमयंती-हौं अपने मन आप ही लाजन डूबी जात।
ऐसे वचन सुनाय पिय क्यौं अरु मोहि लजात॥१३॥

नल-प्रिये अपनी तो कुछ बात नहीं किंतु उन बच्चोंकी क्या दशा होगी इससे हृदय विदीर्ण हुआजाताहै।

दमयंती-(अश्रु भरकर) और क्या होगी बाबा बाबा मैया मैया कहते म[1]-(अर्धोक्तिका नटन करतीहै। रोतीहै)।

नल-ऐसे बालकोंपर भी भगवत्को दया न आई (रोतेहैं)।

दमयंती-बेटा इंद्रसेन कहां हो (रोतीहै)।

नल-(अश्रु पोंछकर) मुझ निर्भाग्यने तो जातेका मुख भी न देखा हाय मेरी बुद्धि कैसी भ्रष्ट होगई (फिर रोतेहैं)।

दमयंती-आर्यपुत्र धैर्य करो।

नल-जब मैं बाहिरसे आता तो दोनों दोनोंहाथोंको पकडलेते कभी हाथोंपर झूलने लगते कभी गोद झढते (रोतेहैं)।

दमयंती-जब क्षुधा लगती तो मैया मैया कहते बाहिरसे भागकर आते, जब एकको कोई वस्तु मिलती एकको न मिलती तो कभी तो आपुसमें लड पडते कभी तो बडे प्यारसे दोनो जनें बांटलेते। हाय बेटा अब तुमको कौन लडाताहोगा।

---

१ मरजाएंगे ऐसा कहनाचाहतीथी किंतु अमंगल शब्द होनेसे नहीं कहा म कहकर ही रोदी।

नल–हरे गोविंद, कहां तो वे राज्यसुख भोगतेथे. प्रतिसेवा दासलोग नियतथे. कहां अब पराई सेवा करनीपडतीहोगी ।

दमयंती–क्या जाने समयपर खानपानको भी कुछ मिलताहै वा नहीं ।

नल–भगवदिच्छा बलवती है ।

दमयंती–इंद्रसेनके ऊधमको देखतेथे उस सिंहके बच्चेको पहिले तो पीटता फिर उसे मिठाई खुलाता ।

नल–यदि शुक भगवन्नामको न पढता तो उसे भी पीटने लगता, पीछे उसे प्रसादी फल खुलाता ।

दमयंती–किसीके विवाहकी बात होती तो दुल्हन मांगने लगता ।

नल– हे वत्स ते चन्द्रतुलं मुखं तद्
गोरोचनापत्रयुतं ललाटे ।
कचावलीभारसुशोभि मुग्धं
स्वकीयभाग्यैकफलं स्मरामि ॥ १४ ॥

दमयंती–तिलक लगवानेकेलिए ' भेरे टिलक भेरे टिलक ' कहताहुआ कैसा प्यारा लगता ।

नल–जब मंदिरमें नीराजनका घंटा बजता तो कैसे दौडकर जाता और जाकर जोर जोरसे कभी किसी कभी किसी बाजेको बजाता ।

दमयंती–प्रातःकाल सोए उठेका भोला भोला मुख कैसा प्यारा लगताथा, वत्स इंद्रसेन–

निमेषजालेन सुशोभमानं
पुनः पुनर्जृम्भणदृष्टदन्तम् ।
सुप्तोत्थितस्याल्परवं मुखं ते
तन्द्राप्रमुग्धं नहि विस्मरामि ॥ १५ ॥

---

१४ हे वत्सेति, हे बेटा इंद्रसेन गोरोचनके तिलकवाले केशोंके जूडेसे शोभायमान चंद्रसदृश भोले भोले स्वभाग्यलताके फलरूपी तुमारे मुखको वारंवार स्मरण करताहूं ॥

१५ निमेषेति, हे बेटा इंद्रसेन जब तुम सोकर उठतेथे तो बहुतवार पलक पडनेसे शोभायमान जृंभासे जिसमें वारवार दंत दीखतेथे मंद मंद शब्दवाले तंद्रासे भोले भोले तुमारे मुखको स्मरण करतीहूं ॥

नल–क्या फिर भी वह मुखकमल दीखेगा ?।

दमयंती–हमारे ऐसे भाग्य कहां (कुछ रोतीहै)।

नल–क्या भीमराज इन बच्चोंको अपने पौत्रोंके समान समझेंगे ?।

दमयंती–आर्यपुत्र मेरे मातापिता ऐसे निस्नेह तो नहीं जो इनको और पौत्रोंको भेददृष्टिसे देखें।

नल–यह सत्य है प्रिये फिर भी पराया घर है।

दमयंती–दोनों क्या कहतेहोंगे मैया आई नहीं कोई रथ चौकमें आताहोगा तो मेरी आशापर भागकर जातेहोंगे, हाय।

नल–मातपिता जीवन वृथा सभविध सुखजउ होय।
और ठौर सुत, आपने और ठौर रहिं जोय ॥ १६ ॥

दमयंती–आर्यपुत्र मैं एक प्रार्थना करूं यादि आप मानो ?।

नल–कहिए।

दमयंती–आप कुंडिनपुरको पधारिए।

नल–प्रिये इस समय कुंडिनपुर जाना अच्छा नहीं।

दमयंती–क्यों ?।

नल–सुंदरि दूसरेको श्रम देना उचित नहीं होता।

दमयंती–प्राणमूर्ते इसमें द्वितीयभाव क्या है वे जैसे मेरे मातापिता वैसे ही आपके।

नल–सुभगे जब विपत्ति आतीहै तब स्वकीयजनोंका भी चित्त विमुख होजाताहै।

दमयंती–मेरे मातापिता ऐसे नहीं।

नल–तुम मुग्धा हो, प्रिये विपत्तिकी ऐसी शक्ति है कि अपने भी मातापिताका मुख फिर जाताहै। विपद्ग्रस्तके मधुर वचन भी कटु प्रतीत होनेलगतेहैं। धनको चोर लेजाए तो उतना शोक नहीं होता जितना विपत्तिग्रस्तबांधवके परिपालनसे शोक होताहै। जो यत् किंचित् सहायता करते भी हैं तो उसे सदा गागाकर सुनाया करतेहैं। हां तुम्हे जाना हो तो जाओ यह मार्ग है।

दमयंती–मैं आपको छोडकर कहां जाऊंगी, और मैने अपने सुखकेलिए कुंडिनपुर जानेको नहीं कहा।

नल–ऐसा है तो भगवान्के पादपद्मका ध्यान रक्खो वह सभ विपत्तिको दूर करदेगा।

दुःखे भिक्षाटनं युक्तं बान्धवाश्रयणं नहि।
पालयन्ति न ते प्रीत्या भ्रुकुटिं दर्शयन्ति तु॥ १७॥
सर्वेषां सौहृदं तावद् यावत्कार्यं न विद्यते।
प्राप्ते कार्ये पिता चापि न पिता श्रृणु सुन्दरि॥ १८॥
विपत्तौ सौहृदं कोपि विनिर्वहति सज्जनः।
निजभाग्यविपर्यासाद्धसन्त्यन्ये पुनः पुनः॥ १९॥

दमयंती–प्यारे मुझसे आपकी यह विपत्ति देखी नहीं जाती इससे कुंडिनपुर चलनेको कहा, मेरे सुखका निदान तो आपका दर्शन है इसलिए मुझे यहां कुछ भी दुःख नहीं।

नल–मेरे दुःखकी शोच न करो, चलो कहीं विश्राम करें।

दमयंती–चलो (दोनो इधर विधर विश्रामको स्थान खोजतेहैं) आर्यपुत्र इस वनमें विश्रामको स्थान कहां।

नल–(कुछ आगे बढकर) देखो वह एक तिवारी दीखतीहै (दोनो तिवारीके पास जातेहैं)।

दमयंती–(तिवारीके पास पहुंचकर) यह महल मिला तो।

नल–प्रिये इस समय यही महल है (मनमें) हे मन अपने साथ यह दुःख भोगरहीहै।

दमयंती–और क्या (दोनों तिवारीमें बैठतेहैं)।

---

१७ दुःखेति, विपत्तिकालमें भीख मांगनी अच्छी है बांधवोंका आश्रय लेना अच्छा नहीं क्योंकि वे प्रीतिसे पालन न करके भ्रुकुटि दिखाया करतेहैं॥

१८ सर्वेषामिति, सभ कोईकी प्रीति तबीतक होतीहै जबतक कोई काम न पडे, काम पडनेपर पिता भी पिता (पालयिता) नहीं रहता॥ पाठकवर मेरे पिता तथा भाइओंको जबतक मुझसे काम था तबतक बडा स्नेह और आदर करतेरहे जब अंत्यमें मुझे एक हिस्सा देनेका समय आया तो पिता और भ्राता झट तोते चश्म बनगए मुझे सूखा जवाब देकर घरसे निकाल दिआ, ऐसी कुछ जगत्की प्रीति होतीहै॥

१९ विपत्ताविति, विपत्तिमें कोई ही सज्जन प्रीतिका निर्वाह करताहै अपने भाग्यदोषसे और लोग तो उलटा हसने लगतेहैं॥

नल–शरीर टूट टूट पडताहै निद्रा आतीहै ।

दमयंती–सोजाओ ।

नल–तुम भी सोजाओ ।

दमयंती–प्यारे एक तो वस्त्र है क्या मैं ओढूं क्या आप ओढेंगे ।

नल–दो भी होजाएंगे. सो जाओ, मैं तो सोताहूं (लेटतेहैं) ।

दमयंती–आर्यपुत्र लज्जा आतीहै ।

नल–यहां लज्जाकी कौन बात है सोओ सोओ ।

दमयंती–जो आज्ञा (नलसे कुछ परे एक ओर लेटतीहै) ।

नल–(मनमें) मालतीमृदुला क्वैषा क्वेदं वनसंकटम् ।
मन्ये चन्द्रकला तावद्राहुदन्तैर्विचर्व्यते ॥ २० ॥

(दमयंतीकी ओर देखकर) सो तो गई । अहो यह कैसी श्रांत होगईहै कि इसे लेटते ही निद्रा आगई ।

कुसुम हुँ सों सुकुमार राजदुलारी सुंदरी ।
ग्रसी सुविपद अपार मनु कलिका नागिन डसी ॥ २१ ॥

(कुछ रोकर अश्रु पोंछकर) हे मन अपनेको तो दुःख भोगने ही हैं अपने साथ यह सुकुमारी भी दुःख भोगे यह उचित नहीं, और अपनेसे इसकी यह दुःखावस्था देखी भी न जायगी इस हेतु इसको सोईको ही छोडकर अपने कहीं चलदो । यह उठकर रो पीटकर अपने मातृगृहका मार्ग लेगी वहां जाकर सुखसे तो रहेगी ।

परंतु वस्त्र तो यह एक ही है क्या ओढकर भागूं हाय । अच्छा इसे आधा फाडताहूं परंतु किससे फाडूं । (वस्त्र फाडनेको इधर विधर कतरनी प्रभृतिको ढूंढतेहैं) हाय यह भी समय देखनाथा कि नलको भी वस्त्र फाडनेकेलिए कुछ उपकरण खोजनापडे । सत्य कहा है–" इह खलु विषमः पुराकृतानां भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः " । (टूटा हुआ खड्ग मिलताहै उसे उठाकर आकर दमयंतीको देखकर रोतेहुए उस खड्गसे धीरे धीरे दमयंतीके ओढे वस्त्रको आधा फाडकर उसे ओढकर रोतेहुए धीरे धीरे दमयंतीसे परे हटतेहैं । हाथ जोडकर)

---

२० मालतीति, कहां यह मालतीसी कोमल और कहां यह वनवासका संकट यह तो ऐसा अयुक्त हुआ कि मानों चंद्रमाकी कला राहुके दांतोंसे चवाई जातीहै । यहां विषमालंकार है ॥

प्रिये मेरे इस परित्यागमहापराधको क्षमा करना हाय हाय यह उठकर क्या कहेगी (रोतेहैं)

एनां भीमसुतामत्र मया त्यक्तां महावने ।
गजेन्द्रशरणं देवो हरी रक्षतु सर्वतः ॥ २२ ॥
मद्विरहाकुलां दीनां सान्त्वयेद्वनदेवता ।
तथैनां निर्दिशेन्मार्गं विदर्भाणामनुग्रहात् ॥ २३ ॥
यदि नारायणः सत्यस्तथा धर्मश्च वैष्णवः । (युग्मकम्)
ऋषिवैष्णवदेवानामपि चेन्मय्यऽनुग्रहः ॥ २४ ॥
पुण्यलेशोपि शेषोस्ति दुष्टदिष्टस्य मे यदि ।
तदाऽस्या मत्प्रियाया मा मात्रयापि हतिर्भवेत् ॥ २५ ॥

प्रिये श्रीनारायण तेरी रक्षा करें (रोतेहुए जातेहैं । कुछ दूरसे लौट आकर नल दमयंतीको देखतेहैं दमयंती सोई पडीहै । मनमें) हाय हाय जिस प्यारीका वियोग एक क्षणका भी सह्य न था उस प्यारीके अपार वियोगका समय प्राप्त होगया । हाय जिसको मैं क्षणभर भी दृष्टिसे दूर न होनेदेताथा उस अपनी प्यारी चंद्रमुखीको मैं स्वयं इस भयंकर निर्जनवनमें छोडे जाताहूं ।

निर्दयेन्द्र नलेदं ते प्रियात्यागचारित्रकम् ।
आक्षितेर्गर्हयिष्यन्ते जना हाहेति भाषितैः ॥ २६ ॥

हाय ये प्राण प्रथम ही निकलगएहोते तो आज यह प्रियापरित्याग दुःख क्यों देखना पडता ।

---

२२ एनामिति, मुझसे छोडी हुई इस भीमपुत्रीकी श्रीनारायण रक्षा करे ॥

२३ मदिति, मेरे विरहसे व्याकुल तथा दीनाको इसको वनदेवता सांत्वन (तसल्ली) करें और इसे विदर्भदेशका मार्ग बताएं ॥

२४-२५ यदीति, यदि श्रीनारायण सत्य है यदि वैष्णव धर्म सत्य है यदि ऋषि वैष्णव और देवोंका मुझपर अनुग्रह है और यदि मुझ मंदभाग्यका कुछ भी पुण्यांश बाकी है तो मेरी इस प्यारीकी तनिक भी हानि न हो ॥ पाठकवर हृदयसे सोचो इस समय नलके हृदयपर क्या बीती होगी ॥

२६ निर्दयेति, हे निर्दयशिरोमणे नल तेरे इस प्रियात्यागचरित्रकी आसंसार लोग हाय हाय कहकर निंदा करेंगे ॥

पश्यन्ति दुखिनः कष्टं प्राणधारणतः सदा ।
जीवनं सर्वदुःखानां मूलं विधिविपर्यये ॥ २७ ॥

जब यह उठेगी तो क्या कहेगी ? । और क्या कहेगी इस भयंकर वनको प्राण अर्पण करदेगी, हाय (रोतेहैं) अरे निर्दय पापी मन जैसे तू इस निरपराधा प्राणप्यारीको इस निर्जनवनमें सोईपडीको त्यागताहै (छोडताहै) इस तरह तो कोई अपने शत्रुको भी न त्यागता होगा । हे मन तू इस महापापका परलोकमें क्या उत्तर देगा ? ।

राज्यं स्वपालनं चापि क्षात्रो धर्मः सुखं मया ।
कलत्रं तनुजौ सर्वं भ्रंशितं मन्दबुद्धितः ॥ २८ ॥

अब यहांसे हट जानाचाहिए (रोतेहुए जातेहैं) कहांको जाऊं मार्ग भी विदित नहीं कोई पथिक भी दिखाई नहीं देता जिससे मार्ग पूछूं । (कुछ दूर जाकर फिर सोई पडी दमयंतीके पास आतेहैं)

प्रियां सुप्तां परित्यज्य मया केवलमात्मनः ।
न यशो दूषितं किं तु सूर्यवंशः कलङ्कितः ॥ २९ ॥

बहुत चाहताहूं कि चलाजाऊं किंतु पैर हटहटकर यहां ही आतेहैं । हृदय वृत्तिसे शून्य होगयाहै चारोंओर दुःखसमुद्र उमडता आताहै नेत्रमें अँधेरा छागयाहै । क्या करूं क्या न करूं कुछ सूझता नहीं । हाय यह बुद्धि बडी दुष्ट है जो प्राणप्यारीसे मुझे अलग कररहीहै ।

अरे मन कुछ तो सोच वह भक्तप्रजा छूटगई वे बालक छूटगए हे निर्दय मन अब भीमसुताको छोडते तुझे दया आतीहै ? हे मन यदि तू इसे न छोडेगा तो यह तेरे साथ बहुत दुःख पाएगी, छोडदेनेसे यह अपने पीहर तो चली जायगी ।

---

२७ पश्यन्तीति, दुःखी लोग प्राण धारणके कारण ही दुखको देखतेहैं क्योंकि भाग्य बुरा होजानेसे यह जीवन ही दुखोंका मूल हो जाता है ॥

२८ राज्यमिति, मैंने अपनी मंदबुद्धिसे राज्य प्रजापालन क्षत्रियधर्म सुख पत्नी तथा पुत्र ये सभ नष्ट करादिए ॥

२९ प्रियामिति, अपनी इस प्यारीको सोतीको छोडकर मैंने केवल अपने ही यशको कलंकित नहीं किआ किंतु सूर्यवंशके यशको कलंकित करादिआ ॥

कालो विपत्तेः समुपस्थितोयं
किं नाम कष्टं न जनोऽत्र भुङ्क्ते ।
प्राणप्रियां भीमसुतां नल त्वं
निधाय चित्ते किमु न प्रयासि ॥ ३० ॥

हाय कष्ट है कि काय पाषाणसमान अचल होगयाहै चाहताहूं कि यहांसे हटूं किंतु पैर आगे बढता ही नहीं हे गोविंद हे भगवन् जो आपकी इच्छा आपकी मायाका किसने पार पायाहै । अरे मन अब यहांसे चलदे विलंब उचित नहीं यदि इसकी निद्रा टूटगई तो अच्छा न होगा (रोतेहैं)

शोकेन किं चित्त धृतिं भजस्व
निधत्स्व पादं विरहाग्निकुण्डे ।
तमःप्रसारे न रथाङ्गनामा
प्रियावियोगं सहते नियत्या ॥ ३१ ॥

चल मन चल धैर्य कर (वारंवार दमयंतीकी ओर देखतेहुए रोतेहुए अत्यंत कष्टसे पग उठातेहुए नल जारहेहैं) क्या यह रूपमाधुरी फिर भी प्राप्त होगी हाय हाय (रोतेहैं) प्रिये श्रीनारायण गजेंद्रशरण तेरी रक्षा करें ।

मया पापेन संत्यक्ता वीरसेनस्नुषा ह्यसौ ।
अवश्यं रक्षणीयेति शृण्वन्तु वनदेवताः ॥ ३२ ॥

हाय आज सूर्यवंशका यश कलंकित होगया । हरे हरे हाय हाय अरे नल तैने बुरी ठगी की हाय (रोतेहुए नल चलेगए) ।

दमयंती–(कुछ कालके अनंतर करवट लेतीहुई) हरे गोविंद नारायण (उठतीहै) आर्यपुत्र आर्यपुत्र हैं अरे मन प्यारे कहां गए ? । (चकित होकर चारों ओर देखतीहै) हैं इस वस्त्रको किसने आधा फाडाहै ? । यदि

---

३० काल इति, हे मन यह विपत्तिका काल है इसमें जीव किस किस दुःखको नहीं भोगता । हे नल अपनी इस प्राणप्यारीको हृदयमें रखकर यहांसे चलदे अब ठहरना उचित नहीं ॥

३१ शोकेनेति, हे मन अब शोक तथा सोचसे क्या बनेगा धैर्य कर और विरहरूपी अग्निके कुंडमें पैरको रख । रात्रिका अँधेरा होनेसे क्या चकवा चकवीके वियोगको नहीं सहता ? ।

३२ मयेति, मुझ पापीसे त्यागकीहुई यह वीरसेनकी स्नुषा अवश्यही रक्षणीया है इस बातको वनदेवता कान देकर सुनलें। महाराजनलने इस पद्यको बडे भावसे कहाहै ॥

आर्यपुत्रने ही फाडाहै तो क्यों फाडाहै (कुछ ऊंचेस्वरसे) प्यारे आर्यपुत्र कहां हो, तिवारीके पीछे छिपकर क्या मुझे व्याकुल करतेहो किंवा मेरी परीक्षा करतेहो (उठकर तिवारीके चारों ओर देखतीहै) हाय दैव यह क्या हुआ कुछ भी मतिमें नहीं आता। आर्यपुत्र गए तो कहां गए (आंसू गिरतेहैं) इस वनमें तो कोई वृक्षावलीभी नहीं जहां छिपेहों कोई जलाशय भी नहीं जहां गए हों। क्या आर्यपुत्रने भी हृदय निर्दयताको देदिआ। हाय बडा कष्ट है कुछ भी विदित नहीं होता। (रोतीहै)

हे प्यारे प्राणनाथ मैं कर जोर अपने अपराधोंकी क्षमा मांगतीहूं अपना श्रीमुखचंद्र दरसाओ। क्या मुझे आकुल देखकर आपको कुछ सुख होताहै ?। मेरे सोनेपर आपको कौन निर्दयता सिखागया। हे प्यारे कहां छिपेहो ? कुछ तो उत्तर दो ?। हे मन प्यारे यहां कहां छिपेंगे छिपनेको तो कोई स्थान ही नहीं। क्या किसी हिंस्रजंतुके पीछे तो नहीं लगे। क्या मेरेलिए फलमूलकी खोजमें तो दूर नहीं चलेगए ?। कुछ भी जान नहीं पडता। सोते ही क्यासे क्या होगया (रोतीहै)।

अरे मन सर्वथा तेरी निर्भाग्यताका सागर लहरें लेरहाहै। जिसकेलिए प्रथम मातापिताको छोडा इस विपत्तिमें संतानको छोडा वह प्राणप्यारा भी आज हाथसे जातारहा। (रोतीहै) हाय क्या आर्यपुत्र मुझे छोडकर चलेगएं ? नहीं नहीं प्यारे ऐसा कभी न करेंगे क्या उनका वह प्रेम मुझमें अब नहीं रहा ?। अरे मन क्या सोचताहै प्यारे यहां नहीं हैं चल कहीं खोज कर।

हाय नारायण यह भयंकर वन जिसे देखतेही प्राण सूखतेहैं इसमें मुझे एकली छोड आर्यपुत्र चलेगए कहो अब मैं किस ओर जाऊं ?। मन कुछ धैर्य कर प्यारे आते ही होंगे। (कुछ काल पीछे)

जानीहि नास्त्यत्र मनः प्रियस्ते
 सृतौ सृतौ संप्रति सम्भ्रम त्वम्।
द्रुमं द्रुमं पृच्छ विहाय लज्जां
 लभ्येत चेन्नैषधचक्रवर्ती ॥ ३३ ॥

---

३३ जानीहीति, हे मन जान ले कि यहां तेरा प्यारा नहीं है अब तू मार्ग मार्गमें घूम और लाजको छोडकर वृक्षवृक्षको पूछ कदाचित् निषधचक्रवर्ती मिल जाय ॥

हाय भगवन् यह क्या मेरेपर वज्र पडा अब मैं किधरको जाऊं कोई मार्ग भी विदित नहीं । निषधाधिपति ऐसे महानुभाव राजा उनपर यह दिनोदिन विपत्ति कहांसे, अच्छा-

जिसजनकी निठुराइवस दुख बहुरे हम पाय ।
श्रीपति हमसों हूं अधिक विपदा ताहि भुगाय ॥ ३४ ॥

अच्छा इधरको चलतीहूं यदि प्यारेके पगमगका कुछ पता लगे। हे भगवन् मेरे साथ ऐसी ठगी मत करनी । हे प्यारे कहां हो कहां हो ।

पिय कौन गह्यो मग आप ।
बहुरि विकल हिय तुम विन कर तो तजि निज लाज विलाप ॥
हौं अबला बनपंथ न जानौं इह बन गहवर घोर ।
किसविध कह कहँ ढूंढौं तुमको सोच विथा मन मोर ॥
जिस कारण तुम रूठे तिस कहु नेक प्रकट ह्वै राज ।
मोपर रोष तुमारो अचरज तुम रसिकन सरताज ॥
हाहा खा करजोर कहौं पिय टुक मुखडा दरसा हो ।
भीमसुता इह विकल पुकारै रे पिय कहँ हो कहां हो ॥ ३५ ॥ (जातीहै) ।

इति अनर्घनलनाटकका सप्तमांक समाप्त हुआ ।

अथ

अष्टमांक

(सघन बनमें रक्तवेशसे द्वापर और उसका एक मित्र आता है)

मित्र–सखे आज इतने खिन्न क्यों हो ।

द्वापर–कुछ न पूछो ।

मित्र–कुछ तो कहो ? ।

द्वापर–मेरे मित्र कलिने अतिशयित साहस किआहै निरपराध नल और दमयंतीको असीम विपत्तिसमुद्रमें डुबोदिआहै । दमयंतीने दुःखित होकर कलिको भी दुःख भोगनेका शाप दिआहै उसी शापसे नलके शरीरमें प्रविष्ट कलि नागविषसे संतप्त होरहाहै । इसीसे आज मैं उदास हूं ।

दमयंती ऐसी सत्यपतिव्रता है कि वनमें फिरतीको एक अजगरने निगला उसी समय एक भीलने आकर दमयंतीको बचाया तदनंतर उस भीलने दमयंतीपर बलात्कार करना चाहा दमयंतीने झट शाप देदिआ दमयंतीके शापसे वह भील तत्काल भस्मसात् होगया।

मित्र–क्या उस समय नल दमयंतीके समीप नहीं थे ?।

द्वापर–नल तो सोई पडी दमयंतीको छोडकर अयोध्याको चलेगए मार्गमें दावाग्निसे भस्म होते कर्कोटक नागकी रक्षा की, नल नागको अग्निसे बाहिर उठा लाए नागने कहा कुछ और चलो नल दस पैर और चले तो नागने नलके दंश मारा वह नागविष नलको तो दुःख नहीं देता किंतु कलिको संतप्त कर रहाहै।

मित्र–इसमें आपका क्या अपराध है ऐसे महानुभाव नल और दमयंतीको जिसने अकारण दुःख दिआहै वह अवश्यही दुःख पाएगा।

रोषोद्भेदो न कर्तव्यो रोषस्थानेपि धीमता।
महतामपराधस्तु याति दुष्फलतां ध्रुवम् ॥ १ ॥

द्वापर–सखे यह तो सत्य है किंतु–

प्रायः सत्यं न सौहार्दं सत्यं तत्स्यात्सखे यदि।
मित्रदुःखेन मित्राणां हृदवश्यं विशीर्यते ॥ २ ॥

मित्र–कामक्रोधादिसे परिभूतजनोंको प्रथम कुछ नहीं सूझता जब उसका फल भोगना पडताहै तो नानी याद आजातीहै। अच्छा हुआ सो हुआ शापकी समाप्ति भी तो होगी ?।

द्वापर–उसमें अभी बहुत काल है जब कुंडिनपुरको जाते ऋतुपर्णसे नल संख्याशास्त्र सीखेंगे तब कलि नलके शरीरसे निकलेगा तब शाप-शांति होगी।

(नेपथ्यमें)

"नीले झगामें दगा ही दगा है" हरे नारायण हे।

---

१ रोषेति, महात्मापुरुषोंका यदि अपराध भी हो तोभी उनपर रोष (गुस्सा) नहीं करना चाहिए क्यों कि महात्मा पुरुषोंका अपराध करनेसे अच्छा फल नहीं मिलता किंतु दुःख प्राप्त होताहै ॥

२ प्राय इति, प्रीति प्रायः सत्य नहीं होती यदि प्रीति सत्य होतीहै तो मित्र-दुःखसे मित्रको अवश्य दुःख होताहै ॥

द्वापर–सखे यह आर्त नाद तो दमयंतीका प्रतीत होताहै। अब यहां ठहरना उचित नहीं।

मित्र–अच्छा तो चलो (मनमें) जब तो कुछ न सूझी अब छिपते डोलतेहैं (दोनों जातेहैं)।

॥ इति विष्कंभक ॥

(पुरानीसी मलिन धोती पहिरे चद्दरका आधा टुकडा ओढे व्याकुलदशासे दमयंती आतीहै)

दमयंती–" नीले झगामें दगा ही दगा है " (रोतीहै) हे प्यारे प्राणनाथ इस दासीको छोडकर कहां गए। प्यारे क्या दया भी आपके पास न रही। क्या राज्यके साथ आपके उस स्नेहको भी पुष्करने जीतलिआ। हे प्राण हे निर्दय निषधाधिपते मुझे वनमें एकली छोडते आपको लज्जा भी न आई।

दारत्यागचरित्रं ते पश्यत्येष दिवाकरः।
शुनासीरसभामध्ये पिता ते किं वदिष्यति ॥ ३ ॥

अरे मन ऐसे कठोर शब्द क्यों जिह्वासे निकालता है वह प्यारा तो अतिशयित पुण्यचरित्र तथा पूज्य है यह तो सब अपने ही दुर्दैवका फल है। हे प्यारे मुझदुःखितापर नेक तो कृपा करो। एकवार तो मुखचंद्र दरसाओ। प्यारे अब कभी न सोऊंगी। प्यारे दुखीपर दया ही करनी चाहिए।

कृते मुकुन्दस्य निरीक्षतां प्रिय
निषिञ्चतां चाश्वऽयि दर्शनामृतम्।
मता मयादौ सुगमा सृती रते-
रहो परं दुःखमयीति मन्यते ॥ ४ ॥

---

३ दारेति, हे प्यारे आपके इस पत्नीत्यागचरित्रको आपका मूलपुरुष सूर्य भी देखरहाहै। तथा आपके पिता इंद्रकी सभामें बैठे आपके इस चरित्रको देख क्या कहतेहोंगे ? ॥

४ कृते इति, हे प्यारे भगवान्के वास्ते मेरीओर देखो तथा मुझपर अपना दर्शनामृत छिडको मैंने प्रथम इस प्रीतिमार्गको बहुत सहज समझाथा किंतु यह बडा ही कठिन निकला। हाफिजने भी कहाहै–' के इश्काऽऽसां नमूदऽव्वल वले उफ़्ताद मुश्किलहा '

कुछ भी बुद्धिमें नहीं आता कि प्राणनाथ मुझे क्यों छोड गए, कहां गए, किसओर गए, हाय मेरे भाग्यमें यह भी लिखाया। (रोतीहै) मैं हाहा खातीहूं कोई मुझे मेरे प्यारेका पता बताए। अरे कपोतमंडल तैंने कहीं निषधाधिराज देखे? (कुछ उत्तर न पाकर) हाय यह विपत्तिका प्रभाव कि कहां तो हंसमंडल स्वयं मुझे मेरे प्यारेका संदेश देने गयाथा कहां आज मैं स्वयं इस तुच्छ कपोतमंडलसे पूछतीहूं तथापि यह उत्तर नहीं देता, हरे।

अरि वृक्षावलि तैंने मेरा प्यारा देखा हो तो बतादे। (निंबके समीप जाकर) हे निंब क्या तैंने मेरा प्राणअधार प्यारा देखा?।

हे निम्ब लोकाय सुखप्रदोसि
मामाश्रितां न प्रतिभाषसे किम्।
यदि प्रियः पद्मविलोचनो मे
दृष्टस्त्वया तद्वद कुत्र गुप्तः॥ ५॥

कुछ भी उत्तर नहीं देता। हाय यह भी निर्दय होगया। मन! कोई भी निर्दय नहीं यह सब अपने प्रारब्धका फल है। क्या कदलीसे पूछूं। (कदलीके निकट जाकर) अरि रंभे क्या कहीं तैंने देखा (कान लगाकर) क्या पूछतीहै कौन?, अयि सखि मेरा प्यारा आर्यपुत्र।

रम्भे सदोर्वोरुपमानरूपे
दृष्टस्त्वया चेन्निषधाधिराजः।
चन्द्रार्धनीकाशललाटपट्टो
गतः क्व तन्मां वद विप्रयुक्ताम्॥ ६॥

क्या इसने भी कुछ उत्तर न दिआ। अरे मन पराई पीडाको यह क्या जाने। हे नाथ हे प्रभो यह क्या आपका कोप है कि आर्यपुत्रका

---

५ हे निंबेति, हे निंब वृक्ष तू लोगोंको सुख देताहै मुझ आश्रितासे क्यों नहीं बोलता यदि तैंने कमलदलसदृशनेत्रवाला मेरा प्यारा कहीं देखाहै तो बतादे कहां छिपा है॥ पाठकवर इस समय दमयंतीपर क्या बीती होगी तनिक ध्यानसे सोचो। इन्हीं कष्टोंसे यश मिलताहै।

६ रंभे इति, हे कदली ऊरुकी उपमानभूते यदि तैंने अर्धचंद्रके तुल्य मस्तकवाला निषधाधिपति देखाहै तो मुझ वियोगिनीको बतादे वह कहांको गयाहै॥

कुछ पता भी नहीं मिलता। अरे चित्त धैर्य धर ये वृक्ष क्या कहतेहोंगे कि दमयंतीको कुछ भी लाज नहीं। तथापि इस रसालको तो अवश्य पूछना चाहिए। (आम्रके पास जाकर) हे रसाल तू काममहीपालका बाण है मैं कर जोर विनती करतीहूं यदि मेरा प्यारा देखा हो तो कृपा कर बतादे (कुछ ठहरकर) क्या यह भी चुप है, हाय–

रसाल संशोभित वल्लरीभिः
किं मौनितां गच्छसि दुःखितायाम्।
त्वयापि दृष्टो न स नैषधो मे?
कचावलीबन्धुरबन्धकान्तः॥ ७॥

हे मन इसे तो कामदेवने विरहीजनोंको दुःख देनेकेलिए ही स्थापित किआहै फिर यह मेरे सुखकी बातको क्यों कहनेलगा। हाय मुझे तो भगवानने पक्ष भी न दिए नहीं तो सभसे ऊंची उडकर अपने प्यारेको देखती कहां है। एक बेर इस कदंबको तो औरभी पूछूं–(कदंबके निकट जाकर) हे कदंब अये वृक्षराज तू भगवान् हरिका भक्त है तू तो बता मेरा प्राणप्यारा कहां है?।

कदम्ब संमोदितषट्पदौघ
व्रजन्नितो मे सुहृदीक्षितः किम्?।
दयां समालम्ब्य सुदुःखितायां
वदाशु किं व्यर्थविचारणायाम्॥ ८॥

हा धिक् मेरे भाग्यकोपसे वैष्णववस्तुओंको भी कठोरता पकडनी पडी। (ऊंचे स्वरसे) हे प्राणमूर्त मुझ दासीको छोडकर कहां छिपे हो प्यारे अपना मुखचंद्र दरसाओ आपके दर्शनसुधा विना यह नेत्र सूखे जातेहैं (रोतीहै)।

क्वासि क्वासि प्रिय प्राण अधारा। सहि न जात अब विरह अपारा१
तो मुखविधु मम नयन चकोरा। विन देखे कहुँ नाहिं अँजोरा॥२॥

---

७ रसालेति, हे मंजरिओंसे शोभायमान आम्रवृक्ष मुझ दुःखिताकी पारी क्यों मौनी बनताहै क्या तैने भी बढिआकेशबंधकेसे मनोहर मेरा निषधाधिपति नहीं देखा?।

८ कदंबेति, हे भ्रमरोंको प्रसन्न करनेवाले कदंब क्या तैने मेरा प्यारा इधरसे जाता देखा? मुझ दुःखितापर दया कर शीघ्र उत्तर दे क्यों व्यर्थ विचार करताहै। अर्थात् मेरे प्यारेको मुझे न बताना यह उचित नहीं॥

मम अपराध कौन मन आना । कहहु प्रकट है कहहँ छिपाना ॥ ३ ॥
बहुरि अवज्ञा प्रथमहु ठानी । प्रेम विवश तुम नेक न मानी ॥ ४ ॥
नीति कौन इह आप सुहाई । छलकरि दासी सोइ विहाई ॥ ६ ॥
निज पदपद्मसमाश्रितनारी । कौन कहहु प्रभु कबहुं बिसारी ॥ ६ ॥
तव गुण विमल पयोधि अपारे । अस निठुरइ उहि फबत न प्यारे॥७॥
मलिन दीन यह विलपत बाला । मुखशशि दरसहु करहु उजाला॥८॥९

नयन अँधेरो छारह्यो कछुहुन सूझे पीय ।
कित ढूंढूं कित जाउं हौं बहुरि विकल मम हीय ॥ १० ॥

अरे मन प्यारा यहां कहां । हाय मुझ मंदभाग्यापर भगवानको भी दया नहीं आती, भगवन्–

नाथातिदुःखपरिभूतमनोजनानां
नास्तीतिविविसिविषयत्वमुपैासि किं त्वम् ।
का नाम बुद्धिपरिभूषितनीतिरेषा
स्वाऽभावसिद्धिपरपीडनयोर्हि यत्नः ॥ ११ ॥

(आगे बढकर) अहो आगे तो यह एक आश्रम प्रतीत होताहै इसमें चलतीहूं कदाचित् यहां ही प्यारेका पता लगे ।

(आश्रममें मुनीश्वरोंके निकट जाकर हाथ बांधकर)

चरणं यं समाश्रित्य मुनीनां भुवि मानवाः ।
इष्टसिद्धिं लभन्ते तं शरण्यं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥ (प्रणाम करती है)
सभमुनी–स्वस्ति स्वस्ति, बैठो ।

---

११ नाथेति, हे भगवन् अत्यंत दुःख देकर नास्तिबुद्धिके क्यों विषय बनतेहो अर्थात् असह्य दुःख पाकर दुःखीलोग कहतेहैं कि यदि इस प्रपंचका कोई प्रभु होता तो हमें यह असह्य दुःख न मिलता । कौन यह बुद्धिमत्ताकी नीति है जो अपने अभावकी सिद्धिकेलिए और परके दुःखके लिए यत्न करना ॥

१२ चरणामिति, मुनीश्वरोंके जिस श्रीचरणके आश्रयसे लोग अपनी इष्ट सिद्धिको प्राप्त होतेहैं मैं उस शरणयोग्य श्रीचरणको प्रणाम करतीहूं ॥

---

१ अपारे यह सप्तम्यंत नहीं किंतु प्रथमांतही है भाषाकवितामें ऐसा भी होताहै अर्थात् आपके गुणोंका विमलसमुद्र अपार है उसको यह निठुराई शोभा नहीं देती ॥

दमयंती–जो आज्ञा (बैठतीहै) आपके आश्रममें कुशल है ?।

सभमुनी–बाले यहां सब कुशल है, तुम कौन हो कहांसे आतीहो किस हेतु इतनी दुःखित हो ?। (दमयंती रोती है) बाले रोओ मत धैर्य करो सब अच्छा होगा।

दमयंती–(अश्रु पोंछकर) भगवन् मैं महाराज भीमकी पुत्री महाराजवीरसेनकी स्नुषा और महाराजनलकी धर्मपत्नी दुर्भाग्या दमयंती हूं। कपटिओंने द्यूतमें मेरे भर्ताका सर्वस्व जीतलिआ हम दोनों राज्य छोडकर वनमें चले आए। वनमें मुझे सोई पडीको छोडकर न जाने निषधाधिराज कहां चलेगए उन्हीको मैं खोजती फिरतीहूं उन्हीके वियोगसे इस दीनदशाको प्राप्त हूं।

सभमुनी–बाले चिंता न करो हमको योगबलसे प्रतीत होता है कि तुमारा भर्ता तुम्हे शीघ्र ही मिलेगा तुमारा सभतरह कल्याण होगा।

दमयंती–(मनमें) ये तो अक्षर नहीं किंतु अमृतके बिंदु हैं। (प्रकट) केवल आपके अनुग्रहसे।

सभमुनी–आज हमारी रात्रि सुप्रभात हुई जो तुमारीसी सत्य पतिव्रता हमको अतिथि मिली, अब तुम फलमूल खाकर जल पान करो।

दमयंती–भगवन् मैं स्नान करनाचाहतीहूं।

मुनीश्वर–यह वापी है उसमें जाकर स्नान करआओ।

दमयंती–जो आज्ञा। (दमयंती स्नानको जातीहै। पीछेसे सभ आश्रम अदृश्य होजाताहै। दमयंती स्नान करके भीगा वस्त्र ओढे आतीहै चकित होकर) हैं वह आश्रम कहां गया वे मुनीश्वर कहां गए क्या मैं मार्ग तो नहीं भूलगई ? (चारोंओर देखकर) मैं तो आश्रमसे दूर भी नहीं गई यहां तो दूरतक कहीं भी आश्रम नहीं प्रतीत होता। हाय क्या मैं स्वप्न तो नहीं देखती ? किंतु मुझे स्वप्न कहां स्वप्न तो निद्रा होनेसे होताहै मुझे प्राणप्यारेके वियोगमें निद्रा कहां।

इकटक वन वन ढूंढती फिरौं वियोगविलाय।
तृषितनयन झूरे तहां नींद कहाँते समाय॥ १३॥

---

१ यहां महाभारतमें भी मुनीश्वरोंसे दमयंतीका कुशल पूछना लिखाहै। दमयंतीका यह भी एक उदार चरित्र है जो इतनी विपत्तिमें भी प्रथमावस्थानुसार प्रथम मुनीश्वरोंका कुशल पूछा।

(रोतीहै) जिस निद्राके कारण मेरे साथ ऐसी ठगी हुई क्या अब भी मैं उसे अपने नेत्रमें स्थान दऊंगी ? । अरि निगोडी नींद न तू आती न मैं ठगी जाती ।

नींद तोहे बेचूंगी काहु ठौर, जो कोई गाहक होय ।
तो कारण हौं ठगी निगोडी प्रीतम निरदय होय ।
प्राणजीवनधन खोयो अपनौ हौं मतिमंद जु सोय ।
पैसे पैसे मनभरि बेचौं रहै जु देउं लुटाय ।
पुनि जौ कछुहु बचै तू पापिन हाथन देउँ जराय ॥ १४ ॥

हृदयकी शांतिकेलिए एक आश्रम प्राप्त हुआथा उसे भी न जाने क्या होगया बडे आश्चर्यकी बात है अब हाल यहां आश्रम था एक क्षणमें यह वन पूर्ववत् ऊजडका ऊजड बनगया हाय री मैया मैं कहां जाऊं किधर ढूंढू ? ।

विधि रूठै कछु ना बनै करतहु बहुरि उपाय ।
जस समीरके वेगमहँ दीपक ना ठहराय ॥ १५ ॥

हे प्यारे मैं तो हारगई अब कृपा कर आप ही दर्शन दीजिए क्यों व्यर्थ तडफाते हो प्राणप्यारे तुमारी भोलीसी माधुरीमूर्तिको यह निठुराई सुहाती नहीं । हाय यहां प्यारा कहां (अश्रु भरके)

निरीक्ष्य रूपं तव चन्द्रकान्ति
मुग्धोयमेवानुमितं मयादौ ।
ज्ञातं पुनः संप्रति नीतिमार्गे
हे सुन्दर त्वं निपुणोऽसि कष्टम् ॥ १६ ॥

हे मन उस प्यारेका क्या दोष है यह तो सभ अपने ही दौर्भाग्यका फल है । हायरे कोई भी मेरे प्यारेको नहीं बताता—

---

१६ निरीक्ष्येति, हे प्यारे आपके चंद्रमासे रूपको देखकर मैने तो समझाथा कि आप बहुत भोले होंगे अब तो जाना कि आप नीतिमार्गमें अतिनिपुण हैं अर्थात् बडे कठोर हैं ॥

---

१ यह अस्ताई भर एक प्राचीन कविकी है, यहांपर यह पद बहुत उचित प्रतीत होताहै इस हेतु इस प्राचीन अस्ताईको लेकर आगेके पद स्वयं बनाकर यह पद यहां रक्खाहै यह पद बिहागमें गानेसे अच्छा होगा ।

देओ हो कोउ बताय, जो कहुं देख्यो होय।
प्राणजीवनधनप्रीतम मेरो क्यों तुम राख्यो दुराय।
पुनि पुनि ढूँढत वन वन भटकौं कितहु न मारग पाय।
रूपमाधुरी पानविहीने नयन तृषित विकलाय।
कबहुँ न करनी भूलौं वाकी प्रीतमसों जो मिलाय॥ १३॥

(एक पथिक स्त्री आतीहै)

स्त्री-(मनमें) यह क्या वनदेवता विक्षिप्तसी घूमरहीहै?।

दमयंती-(झट स्त्रीके समीप जाकर) कहां देखा?।

स्त्री-(मनमें) प्रतीत होताहै कि यह किसी परमोत्कृष्टकुलकी स्त्री है किसीके विरहसे व्याकुल है इस ऐसा उत्तर देनाचाहिए जिससे इसकी आशाका भंग न हो। (प्रकट) दीखेगा।

दमयंती-अहा, सुभगे तुम्हारे इस वचनामृतसे तो हृदय शीतल होगया किंतु कब दीखेगा।

स्त्री-भविष्यत कालमें।

दमयंती-कहां।

स्त्री-जहां होगा।

दमयंती-कैसे?।

स्त्री-ढूंढनेसे।

दमयंती-तरु तरु पूछति हौं थकी कोउ न उत्तर दीन।
पिय विन चित तलफै बहुरि जल विन जिस विध मीन१८

स्त्री-आप उदास न हूजिए ढूंढनेसे कौन पदार्थ है जो नहीं मिलता।

दमयंती-(रागनी सोरठ)

अरि हौं ढूंढनकौं कित जाउं।
प्रीतम प्यारे प्राणनाथको कौन ठौर हौं पाउं।
प्यारेके मुख दरसकी बार बार चित आय।
लोने सागर नागरके विन मनजु रह्यौ अकुलाय।
घोर महावन मग ना जानौ नाहि न चितमें धीर।
दारुण काल जाति अबलाकी कहा करौं हौं वीर॥ १९॥

स्त्री-आप कौन हैं? किस दुःखसे इतनी व्याकुल हैं?।

दमयंती–सखि मैं महाराज भीमकी सुता और महाराजवीरसेनकी स्नुषा मंदभाग्या दमयंती हूं।

स्त्री–आः कष्टं, सुनाहै कि महाराजनलका सर्वस्व पुष्करने जीतलिआ।

दमयंती–भाग्य हमारे।

स्त्री–फिर क्या हुआ।

दमयंती–तदनंतर हम राज्यसे निकल इस वनमें पहुंचे मुझको सोईपडीको छोडकर निषधाधिपति न जाने कहां चलेगए, उसी प्यारेके वियोगानलसे दग्धहुई इस वनमें उन्हे ढूंढती फिरतीहूं।

स्त्री–हाय अत्यंत कष्टकी बात है कि आपको भी वनवास प्राप्त हो।

रो रो वन वन ढूंढती दुख बहुरे अरु पाय।
कंचनयोग सुलालडी पंकपडी न सुहाय॥ २०॥

दमयंती–सखि मुझे वनवासका तो दुःख नहीं किंतु आर्यपुत्रके वियोगका महादुःख है। जब मैं उस वीरके अंकमें थी तब यह वन भी मुझे राजधानीसा सुहावना प्रतीत होताथा, जबतक मैं उस प्यारेकी श्रीमुखचंद्र चंद्रिकाको पान करतीथी तबतक मुझे कुछ भी दुःख प्रतीत नहीं हुआ, अब तो एक उस प्राणप्यारेके विना चारोंओर अँधेरा छारहाहै (मंद मंद रोतीहै)

जन जागिकै सोय औ सोय जगै सुखसंपतिभोग महा विलसै।
दुखसागर डूबरही सखि हौं सुखआसहु नाहिंन हाय लसै॥
निस छाय रही अँधियारी महा इन आंखिन नाहिं कछुहु दिसै।
वन ढूंढतीहौं द्रुम पूंछतीहौं नहिं पावतीहौं पिय हीयवसै॥ २१॥

स्त्री–आपको धैर्य करनाचाहिए। यथा कमलिनी रविसे वियुक्त होकर फिर रविसे मिलजातीहै तथा आप भी अपने प्यारेसे अवश्य मिलजाओगी।

दमयंती–आप कहतीहैं मिलजाओगी लोग तो कहतेहैं–

प्रेमानुविद्धं हृदयं ययोस्तौ
परस्परालोचनजीवनौ च ।
कदापि दैवाद् यदि रागपूर्णौ
गतौ वियुक्तिं न पुनः सुयुक्तः ॥ २२ ॥

" लाख करो चतुराइआं विछुडे ना मिलदे " (आवेशसे गातीहै और मूर्छित होकर गिरतीहै)

स्त्री–(दमयंतीका हाथ पकडके उठाकर चेत कराकर) राजदुलारि धैर्य धरो नारायणका ध्यान करो वह आपके प्यारेको अवश्य मिलाएगा ।

यथा वियोगो युक्तानां वियुक्तानां तथा युतिः ।
अवश्यं जायते मुग्धे यथोक्ता चक्रवाकयोः ॥ २३ ॥

दमयंती–हाय न मैं सोती न ठगीजाती ।

तमश्छटासंनिभदुष्प्रवीणया
विलोचनाभ्यामपि सेव्यमानया ।
प्रतारिताहं सखि निद्रयाऽनया
मतिर्बलेर्वामनलीलया यथा ॥ २४ ॥

स्त्री–उद्योग एव लोकेस्मिन् सर्वकार्यप्रसाधकः ।
करोति सफलं कर्म जीवैर्यत् क्रियते ध्रुवम् ॥ २५ ॥

खोजनेसे आपका प्यारा अवश्य मिलेगा ।

दमयंती–सखि मुझे तो प्राणप्यारेका मार्ग भी विदित नहीं अन्यथा–

---

२२ प्रेमेति, जिनके परस्पर प्रेमसे हृदय विद्ध होतेहैं तथा परस्पर दर्शनसे ही जो जीतेहैं वे रागी जीव यदि दैवात् वियुक्त होजाएं तो फिर नहीं मिलते ॥

२३ यथेति, यथा संयुक्तोंका वियोग होताहै तथा वियुक्तोंका संयोग भी अवश्य होताहै यथा चकवे और चकवीका ॥

२४ तम इति, सखि अंधकारकी छटाके सदृश लोचनोंसे सेव्यमान भी तथा दुष्प्रवीण (दुष्टा) इस निद्राने मुझे ठगलिआ न मैं सोती न प्यारे मुझे छोडते, यथा बलिकी मतिको वामनभगवान्‌की लीलाने ठगलिआ ॥

२५ उद्योग इति, उद्योगसे सभी कार्य सिद्ध होजातेहैं, उद्योगसे किया कार्य अवश्य सफल होताहै ॥

समुन्नतिं प्राप्तवतः पथः परां
नलीयपादाम्बुजलक्ष्मणोद्धृतेः ।
रजः करे मे यदि कोपि निक्षिपेत्
करोम्यहं कज्जलवद् विलोचने ॥ २६ ॥

स्त्री-मैं आपको एक उपाय बतातीहूं-यहांसे दक्षिणकीओर आधे कोसपर एक धनवानका डेरा ठहराहुआहै आप वहां जाकर उस डेरेमें खोज करो ।

दमयंती-क्या आप मेरे साथ चलोगी ? ।

स्त्री-नहीं, मुझे तो घर पहुंचनेमें विलंब होरहाहै ।

दमयंती-सखि मैं तुम्हारी बडी कृपा समझूंगी यदि मुझे आप उस डेरेतक पहुंचादो ।

स्त्री-आप जाइए । मुझे आज्ञा दीजिए । (जातीहै)

दमयंती-अहो दैवकोपका प्रभाव थोडी दूरतक साथ जाना भी इस स्त्रीने स्वीकार न किआ, किंवा-

सुखाय संपत्तिमतां हि लोकः
को दुःखितेऽनुग्रहमानसः स्यात् ।
रोषं गते संप्रति लोकनाथे
दोषं कथं देहभृतां वदेयम् ॥ २७ ॥

क्या इसे आर्यपुत्रने मेरे देखनेको तो छद्मसे नहीं भेजा ? इससे फिर पूछना चाहिए (आगेबढतीहुई कुछऊंचे स्वरसे) अरि सखि सुनिओ २ ! ।

---

२६ समुन्नतिमिति, श्रीनलके चरणके चिह्नको धारण करनेसे अतिप्रतिष्ठाको प्राप्त होगयाहै जो मार्ग उस मार्गकी रजको भी यदि कोई मेरे हाथपर देवे तो मैं उस रजको भी कज्जलके तुल्य अपने नेत्रमें रखलूं । यह श्लोक-' गरदिहद दस्तं कशं दर दीदह हन चूं तूतिया । खाके राहे कां मुशर्रफ गरददज अक़दामे दोस्त ' हाफिजके इस शेरका अनुवाद है ॥

२७ सुखायेति, लोग सुखकेलिए संपदावालोंके बनतेहै । दुःखितपर कोई भी दया नहीं करता । किंवा इसमें जीवोंका क्या दोष है यह तो सब श्रीनारायणके रोषका ही फल है ॥ " क्षीणे कस्यास्ति सौहृदम् "

स्त्री-(समीप आकर) कहो क्या है ?।

दमयंती-तुम सत्य सत्य उत्तर दो तो एक बात पूछूं ?।

स्त्री-पूछो।

दमयंती-सखि तुमने कहीं निषधराज देखे हों तो बताती जा मैं तेरी इस कृपाको कभी न भूलूंगी अधिक क्या कहूं।

स्त्री-सुंदरि मुझे छिपानेसे क्या प्रयोजन ?। अब आप विलंब न करो उस डेरेमें जाकर खोज करो। मैं जातीहूं (जातीहै)।

दमयंती-अरे मन यदि प्यारेने तुझे देखनेको किसीको भेजनाहोता तो वह छोडकर ही क्यों जाता। हाय। (रोतीहै)

पिय मन ले काहे रिसाने।
पदपंकजरतिरसीदासिका इह विध काहे भुलाने।
प्रेमसागर तुम बानल हियके कौन हेतु निठुराने।
बन संग आइ तजी हौं सोई कौन मुएने सिखाने॥ २८॥

(गाती हुई जातीहै)

॥ इति अनर्घनलनाटकका अष्टमांक समाप्त हुआ॥

अथ

नवमांक

-**-

(स्थान श्रीअयोध्या नगरीका बाहिरका द्वार दो पहरेवाले खडे हैं पर्णाद नामका ब्राह्मण आताहै)

पर्णाद- विकर्त्य चैलं ननु कैतवेन
वैयात्यमालम्ब्य गतोसि राजन्।

(मनमें) बडे खेदका स्थान है मैं खोजते खोजते हारगया किंतु नलका कुछ पता न लगा। अच्छा इस द्वारपर बैठकर उक्त श्लोकको वारंवार पढताहूं कदाचित् नलका कुछ पता चले।

पहरेवाला-ए पथिक ?।

---

१ इस आधे पद्यका अर्थ आगे १८ के पद्यकी टीकामें लिखाहै।

पर्णाद–जी।

पहरेवाला–तुम कौन हो कहांसे आतेहो ?।

पर्णाद–ब्राह्मण हूं विदर्भदेशसे आताहूं।

पहरेवाला–नगरमें क्यों गएथे ?।

पर्णाद–देखनेको (मनमें) सत्य भी है नलको देखनेही गयाथा।

पहरेवाला–देखनेका क्या प्रयोजन ?।

पर्णाद–प्रयोजन कुछ भी नहीं मैं ऐसे बहुतसे नगरोंको देख चुकाहूं और बहुतसे नगरोंके देखनेकी इच्छा रखताहूं।

पहरेवाला–अब कहां जातेहो ?।

पर्णाद–उपवन देखनेको जानाचाहताहूं ! (द्वारसे एक राजपुरुषको निकलते देखकर) विकर्त्यचैलं क्वनु कैतवेन (इत्यादि)।

पहरेवाला–तुम यह क्या बोलतेहो ?।

पर्णाद–अपने भगवानका भजन करतेहैं। (द्वारसे एक और राजपुरुषको निकलते देखकर)

विकर्त्य चैलं क्वनु कैतवेन
वैयात्यमालम्ब्य गतोसि राजन्॥

(मनमें) इसने तो देखा भी नहीं नलका पता लगना तो असंभवसा प्रतीत होताहै। अच्छा उपवनमें खोजनेको चलताहूं विरहीलोग प्रायः उपवनमें रहाकरतेहैं। यदि वहां भी कुछ न पता लगा तो कल्हको यहांसे आगे चलूंगा। मुझे खोजते बहुत काल बीत गया अब तो नलका पता शीघ्र लगे तो कुंडिनपुरको लौटूं। अच्छा उपवनमें चलताहूं (जाताहै)

पहरेवाला–(दो बजतेहैं) अहो दो बजगए अपना पहरा पूरा हुआ चलूं दूसरेको पहरा सम्हालकर घरको चलूं (जाताहै)

॥ विष्कंभक समाप्त हुआ ॥

(स्थान श्रीअयोध्याका उपवन एक पीठ (बैंच) पर एकले श्यामवर्णसे नल बैठेहैं)

नल–इंद्रहुँ के आसन चढै सभाविध संपत पाय।
तऊ जीवकी नहुष इव विधिसों नाहिं वसाय॥ १॥

यह भी प्रारब्धमें लिखाथा कि नल भी दूसरे राजाका रथ चलाए अच्छा जो भगवानकी इच्छा। दोनों बच्चे क्या कहतेहोंगे कि हमारे

मातापिताको क्या होगया जो अबतक नहीं आए। अरे जारे मन महामूढ जाते पुत्रका मुख भी न देखा।

> कच घुँघरारे कमलमुखनयन नासिका कीर।
> हिय आवे तब ना रहे बहुरि किए मन धीर ॥ २ ॥

हाय कहां तो उनकी ओर कोई टेढी दृष्टि भी नहीं करसकताथा कहां अब ऊधम करनेपर पीटते भी होंगे। कहां तो वे राजकुमार कहातेथे कहां तो अपने मातुलपुत्रोंके पीछे पीछे डोलतेहोंगे। हाय मेरे भाग्यविपर्ययसे इन बालकोंको भी दुःख उठानेपडे। अच्छा विपत्तिके दिन भी निकल जाएंगे भगवान् उनकी शरीरसे रक्षा करे। करेगाही—

> रक्षन्ति क्षत्रियाः क्षुद्रा जनं शरणमागतम्।
> निजपादस्य दासौ तौ रक्षिता न कथं हरिः ॥ ३ ॥

कहा भी है—

> "क्षुद्रेपि नूनं शरणं प्रपन्ने
> ममत्वमुच्चैःशिरसामतीव[1]" इति।

कोई क्षण भी उनकी विस्मृति नहीं होती सदा आंखोंके आगे फिरतेरहतेहैं। उनकी वे भोली भोली बातें भूलती नहीं। जब कभी मेरे साथ बाहिर जाते तो दोनों स्वयं रथ चलानेको हठ करते। हाय दैवकोप कोईपर न हो (नेत्रसे अश्रु गिरतेहैं)।

क्या भीमराज उनके साथ स्नेह रखतेहोंगे?। क्या वह भी कोई दिन आएगा जो मैं इन नयनोंसे उनको देखूं?। अरे निर्लज्ज नल किस साहससे उनके साथ नेत्र मिलाएगा? अच्छा वे तो बच्चे हैं कदाचित् मेरी इस निठुरताको भूल भी जायँ। किंतु भीमसुता क्या कहतीहोगी कि अच्छा भर्ता मिला जो वनमें सोईपडीको छोडगया (नेत्रोंसे अश्रु गिरतेहैं) हाय हाय मुझे उस समय तनिक भी दया न आई, अरे निर्दय मन तैंने अमोलक मणि हाथसे खोदी तेरे वियोगमें बेसुध फिरतीको हिंस्रजीव[2] (अधोक्तिका नटन करतेहैं) भगवान् रक्षा करें।

---

३ रक्षंतीति, क्षुद्र क्षत्रिय भी शरणागतकी रक्षा करतेहैं तब वह श्रीहरि मेरे बच्चे अपने दासोंकी क्यों न रक्षा करेगा ॥

---

१ क्षुद्र भी जन यदि शरण आए तो बडे लोगोंको उनपर भारी ममता होजातीहै।

२ हिंस्रजीव खाजाएंगे ऐसा कहना चाहियेथा अमंगल वाक्य होनेसे नहीं कहा।

जीर्णप्रतीकास्ति तरिः श्लथा मे
ततो न तीव्रं चल मारुताङ्ग ।
प्रियां निजां चन्द्रमुखीं कदाचि-
दालोचयेयं नियतेर्नियोगात् ॥ ४ ॥

प्राणप्रिये मुझ निर्भाग्य मंदके इस त्यागापराधको क्षमा करना। मैं सर्वथा अपराधी हूं। मुझसे बढकर कौन निर्दय होगा जिसने तुझसी चंद्रकलाको वनमें छोडते तानक घृणाभी न की, हाय–

मुक्तादाम मया मन्ये त्यजता भीमपुत्रिकाम् ।
स्वभाग्यविकृतेस्तावदन्धकूपे समुज्झितम् ॥ ५ ॥

हे प्रिये अब तो तुमारा विरह सहा नहीं जाता शीघ्र अपना मुखचंद्र दरसाओ।

कासि कासि मम जीवनवेली। सितकरमंजुमुखी अनवेली ॥
कनकलते मधुमंजुल वैनी। मृदु मुसकान चकित मृग नैनी ॥
विरहदवानल दहत शरीरा। सिंचहु निजमुखदर्शननीरा ॥
कल्पकोटिमनु छिन छिन काला। विधि इह दुसह लिख्यो दुखभाला॥६॥

विरहवेदना वेग हर वदनइंदु दरसाय।
प्राणहंसे परमप्रिये अधरसुधारस प्याय ॥
अधरसुधारस प्याय कंठ भुजबंधन मेलो।
हृदय हृदयसों लाय पंचशर चौपड खेलो ॥
ललितमधुर मुसकाय आय रसवतियां परसो।
मनसों मान हटाय परस्पर हिलमिल हरसो ॥ ७ ॥

---

४ जीर्णेति, हे पवन अर्थात् हे दैव मेरी नाव टूटी फूटी है इस हेतु वेगसे मत चल अर्थात् विघ्न न कर। यदि तू विघ्न न करे तो संभावना है कि कदाचित् सौभाग्यवश मैं अपनी चंद्रमुखी प्यारीको देख सकूं ॥ ' बाशदके बाज बीनेम आयार आशनारा ' ॥

५ मुक्तेति, भीमपुत्रीको त्यागकर मानों मैंने स्वभाग्यदोषसे मोतिओंकी सुंदर मालाको अंधे कुएमें गेर दिआ ॥

(उपवनमें किसी फिरनेवालेकी पैरकी आहट सुनके चौंककर)

अरे मन क्या बडबडाताहै कोई सुनेगा तो क्या कहेगा। और यहां क्या प्यारी बैठीहै? जिसे तू उद्देश्य करके प्रलाप करताहै। अरे निर्भाग्य मन यह विपत्ति तो तैंने आप जानबूझकर मोललीहै फिर उस प्यारीको क्या उपालंभ देताहै। यदि तू उसे छोडकर न आता तो वह प्रिया क्या तुझसे बिछुडनेवाली थी?। हाय हाय मैंने अति ही निठुरता तथा साहस किआ जो उस प्यारीको उस निर्जनवनमें एकलीको छोड दिआ (रोतेहैं) हाय भीमसुता क्या कहताहोगी कि मैंने इंद्रादिदेवताओंको छोडकर जो नलको वरा उसका यही फल मिला। हे प्रिये मैं तो सर्वथा अपराधी हूं मुझसे बढकर कौन निर्दय होगा जिसने कुसुमकलीको अग्निकुंडमें मुक्तामालको समुद्रमें और कुमुदिनीको हिमराशिमें गेरनेके सदृश तुझ राजकिशोरीको एक विभीषणवनमें सोईपडीको छोडदिआ और छोडते घृणा न की। हे नल तेरी इस निर्दयताको कदाचित् वह प्यारी तो स्नेहवश क्षमा भी कर देगी किंतु भगवत् कभी क्षमा न करेगा। (रोतेहैं)

यदि मैं स्वयं भीमसुताको कुंडिनपुर पहुंचा आता तो आगेको उस प्यारीसे नेत्र मिलानेको तो जगा बनी रहती। अब तो यदि सौभाग्यवश प्यारीका दर्शन प्राप्त भी हो तो नेत्र मिलानेको भी बात बाकी न रही–

त्यागापराधवशतस्त्रपयावनम्र-
चक्षुर्द्वयेन नल निष्कृप निर्दयेन्दो।
वक्राम्बुजं निजवियोगतनुं प्रियाया
आलोचयिष्यसि कथं? सुविलोचनीयम्॥ ८॥

ऐसे अपने भाग्य ही कहां जो फिर भी उस प्यारीका दर्शनामृत प्राप्त हो, हाय–

---

८ त्यागेति, हे निर्दयराज नल त्यागापराधलज्जासे झुकेहुए नेत्रोंसे वियोगसे कृश हुए हुए देखनेयोग्य प्यारीके मुखकमलको तू कैसे देखेगा। यहां निर्वहणसंधिका संधिनामक अंग है॥

हा कष्टं मम विप्रलम्भजलधेः पारं न संलक्ष्यते
किं त्वाविद्धविधेर्नियोगवशतो निस्सीममाजृम्भते ।
वक्रेन्दुं कुसुमेषुसद्म सखि ते द्रक्ष्याम्यहं किं पुन-
स्त्यक्ता यद्विपिनेऽसि तेन किमु वा कोपस्तु ते नो मयि॥९॥

भीमसुते !

ये त्वत्सदेशविधिवैभवतः प्रिये मे
रोलम्बगीतकुसुमस्तबकेन्दुमुख्याः ।
आसन् प्रियास्तव वियोगकृशानुतापे
निस्सीम संप्रति त एव मनो दहन्ति ॥ १० ॥

अहो वे सुखके दिन स्वप्न समान होगए । ये दुःखके दिन भी निकल ही जाएंगे तथापि हृदयको धैर्य नहीं । चारोंओर वही प्यारी दीखतीहै ।

नीलाऽलकाऽलंकृतवक्रपद्मं
भुजङ्गसंवीतमिवेन्दुबिम्बम् ।
विधेः पटुत्वस्य निदर्शनं तत्
प्राणप्रियाया नहि विस्मरामि ॥ ११ ॥

अहो रूप अरु माधुरी मनहर उहि मुखचंद ।
नीलसरोरुह नयन मनु बोलनि वा मधुमंद ॥ १२ ॥

क्या फिर भी कभी उस मुखचंद्रका दर्शनामृत प्राप्त होगा ? हाय हाय यह विरहदुःख तो शत्रुको भी प्राप्त न हो (रोकर)

---

९ हेति, बडे कष्टकी वार्ता है कि इस वियोगसमुद्रका पार कहीं भी नहीं दीखता किंतु वक्रदैवके कारण बढता ही जाताहै । हे प्यारी क्या मैं फिर भी तुमारे मुखको देखूंगा ? । हे प्यारी जो मैने तुम्हे वनमें छोडदिआ उस अपराधसे तुम मुझपर कुपित तो नहीं हो ? ॥

१० ये त्वदिति, हे प्यारी जो तुम्हारे सादृश्यके कारण भ्रमरझंकार फूल और चंद्रमाप्रभृति मुझे प्यारे लगतेथे वे ही पदार्थ तुम्हारे वियोगमें मेरे हृदयको दग्ध करतेहैं ॥

११ नीलेति, नील अलकावली (जुल्फ) से अलंकृत जैसे चंद्रमंडलपर सर्प लिपटा हो ऐसा विधिचातुर्यका नमूनारूप प्यारीका मुख मुझे कभी नहीं भूलता ॥

चित चाहत जौ मुख देखनकौ दिन दूनौ उमंग बढ्यौ हि चलै।
इत आसहु नेक बनै न तऊ हिय नेहरस्यौ नहिं टाल्यौ टलै॥
चख नींद नहीं मन चैन तजै विरहानलसौं निसद्यौस जलै।
विधि प्रेमके अंकुर बोय हिये पुनि रोग वियोगको लाय छलै॥१३॥

(एक पुरुष भ्रमण करताहुआ आताहै) (मनमें)

ऐसा भाग्य फूटाहै कि रोनेको भी समय नहीं मिलता!

पुरुष–आप कुछ उदाससे प्रतीत होतेहैं?।

नल–नहीं तो, आइए बैठिए।

पुरुष–मुझे तो शीघ्र जाना है (जाताहै)।

नल–यह मुझे उदाससा बताताहै मैं प्राणप्यारीके विरहानलसे भस्मसात होरहाहूं किंतु लोग दूसरेकी पीडाको क्या जानें।

कुहूतमिस्रेण निरुद्धदर्शन-
स्तथा तरङ्गैरपि ताडितो मुहुः।
भ्रमेषु यो मज्जति तस्य दुःखिनो
व्यथां विजानन्तु कथं तटेचराः॥ १४॥

मुझसा कौन दुःखी होगा कि राज्य भी गया संतानसे वियोग प्रियासे वियोग अब शेष न जाने कौनसा दुःख है जो देखनाहै।

कठिन बनाए नाह. अहो प्राण तुम वज्रसम।
नाजानौ अरु आह. कौन कौन दुख देखि हौं॥ १५॥

हे नाथ हे प्रभो क्या अपने दासोंपर भी दया नहीं आती? आपका नाम तो दयासागर है क्या मेरे दौर्भाग्यसे आपके उस अपार दयारूप-सागरमें एक चुल्लू भी जल न रहा?।

---

१४ कुहू इति, जिसे अमावसकी अंधेरीके कारण कुछ नहीं दीखता नदीकी तरंगे भी पछाड पछाड मारतीहै ऐसा जो जलके आवर्त (भौंर) में डूबरहाहै उसकी दशाको नदीके तटपर सैर करनेवाले क्या जानें। यह श्लोक हाफिजके 'शबे तारीके बीमे मौज गिरदाबे चुनींहायल। कुजा दानिंद हालेमा सुबकू साराने साहिलहा' इस शेरका अनुवाद है। यह शेर दीवाने हाफिजकी पहली ही गजलका है॥

स्तम्बेरमोदीरितनाथशब्दं
यया त्वयाऽऽकर्ण्य सुधावितं तत् ।
मदीयवारे तव शृण्वतोपि
गता क हे नाथ दयालुता सा ॥ १६ ॥

अरे मन भगवान् यदि तुझसे क्षुद्रोंकी प्रार्थना सुननेलगे तो क्या ठिकाना लगे।

भागहीन नर जे बने तिनकी कौन सुनाय ।
बहुविध देख्यौ सोच नहिं विन संतोष उपाय ॥ १७ ॥

(पर्णाद आकर नलके कुछ समीपके पीठपर बैठताहै)

पर्णाद– वैयात्यमालम्ब्य गतोसि नाथ ।

नल–(मनमें) हाय हाय । (पर्णादकी ओर देख) यह तो कोई विदेशी पुरुष प्रतीत होताहै ।

पर्णाद–(मनमें) यह मनुष्य दुःखित भी प्रतीत होताहै और मेरे वाक्यपर इसने ध्यान भी दिआहै क्या यह नल तो नहीं ? । और महापुरुषके लक्षण भी इसमें सभ हैं मस्तक विशाल है, केश लंबे और स्निग्ध हैं, नख और नेत्र रक्त हैं, स्कंध ऊंचे हैं, भुजा लंबी हैं । परंतु नल तो गौर थे इसका वर्ण तो श्याम है । जो हो वे श्लोक पढने-चाहिए । (प्रकट)–

उत्सृज्य मां नाथवतीं त्वयैव
त्वदाज्ञया तत्र वने प्रसुप्ताम् ।
विकृत्य चैलं क च कैतवेन
वैयात्यमालम्ब्य गतोसि कान्त ॥ १८ ॥

---

१६ स्तंबेति, हे भगवन् गजेंद्रके उच्चारण किए नाथ शब्दको सुनकर जिस दयासे आप उठ भागेथे वह आपकी दया आपके सुनते भी मेरी वारी कहां गई ॥

१८ उत्सृज्येति, हे प्यारे मैं तो उस वनमें आपकी आज्ञासे ही सोईथी फिर मुझे वहां छोडकर और आधा वस्त्र फाडकर धृष्ट (निर्दयी) बनकर आप कपटसे (चोरी) कहां गए हो ॥

विधेहि दृष्टिं मयि नाथ वत्सलां
यतो हि ते द्वारपदस्य तापसी।
परस्य पादं त्वदृते न बुध्यते
न चापि गेहं न सृतिं नवाऽऽह्वयम्॥ १९॥

नल–(मनमें) कष्टं कष्टं, यह तो कविता प्राणप्यारीकी कविताके सदृश है। और मेरे उन अपराधोंको और उस प्यारीकी स्निग्धताको उद्देश्य करतीहै। अहो क्या मैं स्वप्न तो नहीं देखरहा? अन्यथा कहां वह कहां मैं, यह पुरुष कहांसे आया। अच्छा जो हो प्रथम तो इन पद्योंका उत्तर देनाचाहिए फिर इससे इस बातका अभिप्राय लूंगा। (प्रकट)–

संभग्नसौख्येन कुतोपि दैवा-
द्विपत्तितापाकुलमानसेन।
त्यक्ताः सुधीरा विपिनेपि रामाः
कृतापराधेपि रुषं न यान्ति॥ १२०॥

पर्णाद–(मनमें) इसने तो मेरे श्लोकोंका उत्तर भी दिआ, अच्छा इस श्लोकको स्मरण करलेनाचाहिए।

नल–(पर्णादसे) भैया यहां आओ।

पर्णाद–(नलके समीप बैठकर) कहिए।

नल–आप कौन हैं?।

पर्णाद–ब्राह्मण हूं।

नल–कहांके रहनेवाले हैं?।

पर्णाद–रहना तो कहीं भी निश्चित नहीं।

---

१९ विधेहीति, हे प्यारे मुझपर कृपाकी दृष्टिको गेरो क्यों कि आपके द्वारकी यह तपस्या करनेवाली दासी तो आपके विना दूसरेके चरणको घरको मार्गको और तो क्या नामको भी नहीं जानती। "खुदारा रहमे ऐ मानियम कि दरवेशे सरे कूयत। रहे दीगर नमी दानद दरे दीगर नमी गीरद" इस हाफिजके शेरका यहां ध्यान कर लो॥

२० संभग्नेति, दैवकोपसे नष्ट होगयाहै सुख जिसका तथा विपत्तिमें प्राप्त जो हो उससे त्यागी हुई धीरा स्त्रीलोग उसपर कोप नहीं करतीं॥ पूर्वोक्त श्लोकोंका यह उत्तर है॥

नल–क्या सदा भ्रमण ही करतेरहतेहैं ?।

पर्णाद–जी हां।

नल–अब कहांसे आतेहैं ?।

पर्णाद–विदर्भदेशसे।

नल–जिसके भीममहाराज अधिपति हैं ?।

पर्णाद–और क्या।

नल–विदर्भदेशमें और विदर्भाधिपतिके गृहमें कुशल तो है ?।

पर्णाद–कुशल है। आपका इस प्रश्नसे क्या प्रयोजन है ? क्या आप भी उसी देशके रहनेवालेहैं किंवा आपका उस देशमें कुछ संबंध है ?।

नल–मैने यह प्रश्न ऐसे ही किआहै, न मैं उधरके रहनेवाला हूं न मेरा उधर कोई संबंध है। मैं तो यहांके महाराजका भृत्य हूं।

पर्णाद–आप क्या काम करतेहैं ?।

नल–अश्वशालामें नियुक्त हूं।

पर्णाद–आपका श्रीनाम ?।

नल–इस समय बाहुक कहतेहैं।

पर्णाद–इससे प्रतीत होताहै कि प्रथम कोई और नाम था।

नल–(मनमें) आह बडी चूक हुई (प्रकट) भैया जीवके नामका क्या है बाल्यावस्थाका नाम कभी बदल भी जाताहै।

पर्णाद–ठीक है।

नल–आपने जो श्लोक पढेथे वे आपको कहांसे मिलेहैं।

पर्णाद–ताडपत्रपर लिखेहुए मार्गमें गिरे पडे मिलेथे।

नल–ठीक होगा।

पर्णाद–आपने जो श्लोक पढाया वह किस उद्देश्यसे पढाथा ?।

नल–श्लोकके पढनेमें मेरा कुछ उद्देश्य नहीं।

पर्णाद–आपको यह श्लोक कहांसे मिला ? और आपने क्यों पढा ?।

नल–अपनी भार्यासे वियुक्त कोई पुरुष इस श्लोकको गाताजाताथा मैने भी स्मरण करलिआ वही श्लोक इस समय सहज ही मुखसे

निकलगया और कोई हेतु नहीं। और जैसे आपने श्लोक पढा वैसे ही मैंने भी पढदिआ।

पर्णाद–(मनमें) 'जैसे आपने' यह तो वाक्य कुछ सहेतुक प्रतीत होता है। (प्रकट) ठीक है।

नल–सुनाहै कि महाराजभीमके जामाता नल राज्यश्रीसे च्युत होगएहैं।

पर्णाद–सर्वस्वसे च्युत होगएहैं।

नल–आपको यह वृत्तांत विदित हो तो सुनाइए।

पर्णाद–क्या आपको यह कथा विदित नहीं ?।

नल–निश्चित विदित नहीं।

पर्णाद–हां। नल राज्यको द्यूतमें हारकर संतानको[1] श्वशुरगृहमें भेज दमयंतीके साथ वनको चलेगए तदनंतर नलके मनमें न जाने क्या आई कि वनमें दमयंतीको सोईपडीको छोडकर न जाने कहां चलेगए। (नल कुछ आंख नीची करते हैं)

नल–अब नलदमयंती कहांहैं कुछ पता है।

पर्णाद–नलका कुछ पता नहीं, दमयंती तो उस वनसे जैसे तैसे चंदेलीमें पहुंची वहां चेदिराजकी माताने दमयंतीको कोई दुखिआ बाला जानकर आदरसे अपने पास रखलिआ। इतनेमें भीममहाराजने जो लोग उनकी खोजको भेजेथे वे वहां जा पहुंचे उनने वहां दमयंतीको पहचानलिआ तब अपने साथ कुंडिनपुरको लेगए. राजमाताने रक्षाके- लिए कुछ सेना भी साथ करदी, ऐसा सुनाहै।

नल–क्या भीमसुता तथा नलपत्नी होकर परगृहमें रहते दमयंतीको लाज न आई ? (मनमें) अरे मन समझकर बात कर यह ब्राह्मण क्या कहताहोगा। कहीं छिपाछिपाया सभ भेद न खुलजाए।

पर्णाद–क्या जाने। किंतु सुना तो यह है कि चेदिराजकी माताके अत्यंत आग्रहसे रही और 'मैं उच्छिष्ट भोजन नहीं करूंगी पादसेवा-

---

१ यद्यपि संतानको नलने नहीं भेजा दमयंतीने भेजाथा तथापि यहां पूर्वापर विरोध नहीं समझना क्यों कि पर्णाद अपना भेद छिपाए रखनेकेलिए ऐसा कहताहै। यह बात यथार्थ कहनेसे नलको पर्णादपर संदेह होनेकी संभावना होती।

हन (पाउं दबाना) नहीं करूंगी अन्यपुरुषसे संभाषण नहीं करूंगी यदि मुझपर कोई कुदृष्टि (कामाभिलाष) करेगा तो उसे आपको पूर्ण दंड देनाहोगा ? इत्यादि नियम स्थिर करके रही। और यह भी सुनाहै कि चेदिराजकी माता दमयंतीकी माउसी (मातृभग्नी) लगतीहै।

नल--(मनमें) क्यों न हो (प्रकट) ठीक होगा।

पर्णाद-भैया मुझे विशेष तो विदित नहीं किंतु इतना अवश्य विदित है कि देशभर दमयंतीकी प्रशंसा करताहै (नलका हर्षसे मुख विकसित होताहै) और नलको स्मरण करताहै।

नल-देश चाहे प्रशंसा करे चाहे निंदा करे अपनेको इससे क्या।

पर्णाद-और क्या।

नल-आप यहां कहां ठहरेहैं ?।

पर्णाद-कहीं भी नहीं।

नल-भोजनादि कहां किए ?।

पर्णाद-सरोवर पर।

नल-अब आप इतना कष्ट न सहिए मेरे स्थानपर ठहरिए।

पर्णाद-नहीं मैं तो अब जाऊंगा।

नल-कहांको ?।

पर्णाद-यहांसे उत्तरको।

नल-क्यों।

पर्णाद-पर्यटनार्थ।

नल-यहां कैसे आएथे ?।

पर्णाद-यहांभी पर्यटनार्थ ही।

नल-धन्य हैं, आपका नामधेय ?।

पर्णाद-पर्णाद (मनमें) मेरे श्लोकोंका इनने उत्तर भी दिआहै इनका चित्त भी व्याकुल है इससे प्रतीत होताहै कि कदाचित् ये नल महाराज ही हों इससे अब यहां एक क्षण भी ठहरना उचित नहीं, यह

---

१ पर्णादके नामज्ञानार्थ नलका प्रथम ही प्रश्न इस हेतु नहीं लिखा कि नलको दमयंतीकथाके कारण नामज्ञानार्थ प्रश्न करना रससे अनुचित होता।

वृत्तांत शीघ्र ही श्रीमती दमयंतीको सुनाना चाहिए। आगे वे जैसा उचित समझेंगी करेंगी। आशा है कि कोई न कोई कपटयुक्तिसे इन्हें कुंडिनपुर बुलाकर इनका भेद लेंगी। (प्रकट) मैं अब जाताहूं।

नल–इतनी त्वरा क्यों करतेहैं कुछ काल यहां मेरे स्थानपर ठहरिए?।

पर्णाद–जी नहीं, कई दिन होगए यहां आए अब यहां जी नहीं लगता।

नल–जाना ही है तो मैं प्रणाम करताहूं।

पर्णाद–कल्याण हो। (जाताहै)

नल–क्या इसे मेरे खोजनेको प्राणप्यारीने ही तो नहीं भेजाहै। यह बहुत ही अच्छाहुआ कि प्यारी अपने मातापिताके निकट जापहुंची। अहो यह काल कैसा अच्छा प्यारी बातोंमें बीता।

इन बंतिया प्राणप्रियाकी कीनी।
श्रवण परत जिन हिय हुलसायो दुख खोयो रसभीनी।
सुनि सुनि मानस भरे न जिनसौं मधुर मनोहर ऐसी।
पावसतापतृषितजन पाई सुधावापिका जैसी॥ २१॥

कभी तो प्राणप्यारीका दर्शनामृत प्राप्त होगा ही।

(एक पुरुष आताहै)

पुरुष–जय जय।

नल–क्या है।

पुरुष–आपको महाराज स्मरण करते हैं।

नल–क्या काम है?।

पुरुष–कुछ अश्व आए हैं उनकी परीक्षाके लिए।

नल–तुम चलो मैं आताहूं।

पुरुष–महाराजकी आज्ञा है कि साथ लेकर आओ।

नल–अच्छा चलो भाई। (मनमें) निर्भाग्यजनोंको मनमाना रोना भी नहीं मिलता। (दोनों जातेहैं)

इति अनर्घनलनाटकका नवमांक समाप्त हुआ।

अथ

दशमांक

(कुंडिनपुरके एक उत्तम स्थानमें ऋतुपर्ण राजा सिंहासनपर बैठेहैं वार्ष्णेय खडाहै)

ऋतुपर्ण–वार्ष्णेय ! सुदेवने तो अपनेसे दमयंतीके द्वितीयस्वयंवरकी बात कहीथी, इसी आशापर अपने यहां आए यहां पर तो स्वयंवरका नाम भी सुनाई नहीं देता ।

वार्ष्णेय–श्रीमहाराज श्रीमतीदमयंती तो पतिव्रतानिकरकी शिरोमणि हैं उनने इंद्रादिदेवोंकी ओर भी दृष्टि नहीं दी वे द्वितीयस्वयंवरका नाम भी लेनेवाली नहीं हैं मैं जानताहूं कि श्रीमती दमयंतीने स्वप्नमें भी नलातिरिक्तपुरुषकी अभिलाषा न की होगी न करेंगी ही फिर द्वितीयस्वयंवरकी कौन कथा, आपसे उस ब्राह्मणने मिथ्या ही कहदिआहोगा ।

ऋतुपर्ण–उसके मिथ्या बोलनेका हेतु भी कुछ नहीं प्रतीत होता ।

वार्ष्णेय–और कुछ हेतु न होगा तो विक्षिप्त (बाउला) होगा, किंवा महाराजभीमके किसी शत्रुने उसे सिखाया होगा ।

ऋतुपर्ण–मुझसे भारी मूर्खता हुई जो मैं एक अपरिचितपुरुषके कहनेपर चलाआया, भीमराज अपने मनमें मेरे अचानक आनेकी अवश्य सोच करतेहोंगे । अच्छा जो हुआ सो हुआ तुमने इस बातको छिपाजाना कोई आनेका हेतु पूछे तो कहना कि महाराजनलकी विपत्ति तथा खोजानेका कष्ट सूचन करनेआएहैं, यही बात बाहुकको भी समझादेनी ।

वार्ष्णेय–जो आज्ञा ।

ऋतुपर्ण–वस्तुगत्या मुझे नलकी इस विपत्तिका बडा कष्ट है ।

वार्ष्णेय–नलकी विपत्तिका किसको कष्ट नहीं । मैं अभी नगरमें गयाथा तो सभ लोग महाराजनलकी बात पूछतेहैं । उनके कुमार भी मिलेथे मैंने प्रणाम करके अपना परिचय दिआ तो रोकर मुझसे लिपट गए और बार बार यही पूछें कि बताओ बाबा कहां हैं ? । मुझसे भी रहा नहीं गया मैं भी रोदिआ ।

ऋतुपर्ण–तुम उनके प्राचीन सूत हो न ! उस बालकको यहां क्यों नहीं लेआए ।

वार्ष्णेय–फिर मिलेंगे तो यहां आनेको कहूंगा, मैं ही तो उनको यहां छोडकर गयाहूं। श्रीमहाराज यदि आज्ञा दें तो मैं श्रीमहारानी दमयंतीको प्रणाम करने जानाचाहताहूं।

ऋतुपर्ण–अवश्य जाओ, और हमारी ओरसे भी उनकी इस विपत्ति तथा नलके न मिलनेका कष्ट सूचित करना, और कहना कि जहां कहो मैं खोज करूं।

वार्ष्णेय–जो आज्ञा।

ऋतुपर्ण–और बाहुकको भी देखलेना उसे कोई तरहका कष्ट न हो उसे बडा श्रम हुआहै। यह तो अश्वविद्यामें अतिशयित निपुण है बडे मानके योग्य है।

वार्ष्णेय–श्रीमहाराज मुझे तो यह आश्चर्य है कि इसने यह विद्या कहांसे सीखी, सिवाय महाराज नलके पृथ्वीपर ऐसा रथ चलाना तो दूसरा नहीं जानता।

ऋतुपर्ण–इसकी अश्वविद्यासे मैं भी चकित होगयाहूं। मुझे यह संदेह होताहै कि कहीं गुप्तवेषधारी यह नल ही तो नहीं।

वार्ष्णेय–मुझे भी यही संदेह होताहै। और भी बहुत लोगोंको यह संदेह है सुनाहै कि इस बातकी कुछ जांच भी होनेवाली है और अपने जिस चौकमें रथपरसे उतरेथे उसी चौकमें बाहुकको ठहरायागयाहै।

ऋतुपर्ण–तुमने भी बाहुकके आंतरिकभावका परिचय लेना।

वार्ष्णेय–जो आज्ञा मैं जाताहूं।

ऋतुपर्ण–अच्छा जाओ में भी विश्राम करनाचाहताहूं।

(दोनों जातेहैं)

॥ विष्कंभक समाप्त हुआ ॥

(महाराजभीमके राजभवनके आगेके चौकमें चिंताकुल श्यामवर्ण नल बैठेहैं)

नल–(मनमें) महाराज ऋतुपर्ण तो स्वयंवरकी बात सुनकर आएहैं यहां स्वयंवरका नाम भी नहीं यह क्या वार्ता है कुछ समझमें नहीं आता, क्या ऋतुपर्णसे किसीने मिथ्या ही स्वयंवरकी बात जा कही, अथवा स्वयंवरके व्याजसे अन्यकार्यकेलिए आएहैं, किंवा इसीओरसे कोई राजनीतिका प्रयोग किआगयाहै।

जिस भीमसुताने इंद्रादिदेवताओंकी ओर भी नहीं देखा वह द्वितीयस्वयंवरमें जाए यह तो संभावना भी नहीं होसकती। हाय हाय इस स्थानको देखनेसे हृदय विदीर्ण (टुकडे) हुआजाताहै, यह वही भवन है जिसमें मैने उस प्राणप्यारीका पाणिपीडन किआया। आज भी निर्भाग्यताका एक समय वर्तमान है जो यहांतक पहुंचनेपर भी उस प्यारीके मुखेंदुका दर्शनामृत प्राप्त न हुआ (अश्रु गिरतेहैं) यद्यपि वह प्यारी तो मुझे छिपकर भी देख सकतीहै क्या जाने देखती ही हो किंतु मैं तो उसे कोई प्रकारसे भी नहीं देखसकता। भीमसुते?–

किं मां पश्यसि हे प्रिये प्रथमतो मन्तुप्रवीणं पुन-
स्त्यागात्संप्रति तत्र भीष्मविपिने लज्जाऽवनम्राननम्।
दह्यन्नागविपद्विर्तेर्विनिमये दंशेन कृष्णं तना-
वन्यद्राजशताङ्गवाजिकविकादाम्नां धृतेर्दूषितम्॥ १॥

हाय कष्ट है कि इंद्रसेना इंद्रसेन भी खेलतेहुए इधर नहीं आए।

स्वान्तानन्दनिदानमत्र सदने दृष्टं न वत्साननं
वार्ता कापि कुतोपि नो कुशलिनी प्राणप्रियायाः श्रुता।
कालः स्वल्पतरः स्थितेरिह पुनस्तत्काननं सा पुरी,
दैवे रोषपरायणेपि लभते को नाम काम्यं जनः॥ २॥

(केशिनी आतीहै)

केशिनी–मनुष्येन्द्र आप सकुशल हैं?।

नल–तुम कौन हो और क्यों कुशल पूछतीहो?।

केशिनी–मैं राजपरिचारिका हूं राजाकी ओरसे कुशल पूछतीहूं।

नल–ठीक है।

---

१ किमिति, हे प्रिये मुझ प्रथमतः अपराधप्रवीणको तथा अब वनमें परित्यागसे लज्जितको दग्ध होते कर्कोटक नागकी रक्षाके पलटे उसके दंशसे काले हुएको और अन्य राजाके रथ हांकनेसे दूषितको क्यों छिपकर देखतीहो।

२ स्वांतेति, यहां आकर भी हृदयको आनंद देनेवाला पुत्रका मुख भी न देखा न प्राणप्यारीकी कोई कुशलवार्ता ही सुनी यहां ठहरनेका बहुत अल्पसा काल है फिर वही अयोध्या और अयोध्याका उपवन होगा। दैव ही जब रुष्ट हो तो कौन है जिसका मनोरथ पूर्ण हो॥

केशिनी–आप पधारे बडी कृपा की, किंतु आप किस हेतु यहां पधारे हें यह जानना चाहतीहूं।

नल–(मनमें) आगमनहेतुको यह मुझसे क्यों पूछतीहै प्रतीत होताहै इसमें कुछ भेद है। (प्रकट) भद्रे कल्ह प्रातः ही एक ब्राह्मणने महाराजऋतुपर्णसे कहा कि ‘ कल्ह दमयंतीका द्वितीयस्वयंवर है ’ यह सुनकर अयोध्यासे ऋतुपर्ण आएहैं।

केशिनी–आप कौन हैं।

नल–मैं ऋतुपर्णका सूत (रथ चलानेवाला) हूं।

केशिनी–यदि आप महाराजऋतुपर्णके भृत्य हैं तो उनका एक वचनांत नाम क्यों कहतेहो (लेतेहो)।

नल–श्रुत्वा स्वयंवरं भैम्या दूरतोत्र समागताः।
भद्रे मार्गश्रमेणैषा जायतेऽनवधानता ॥ ३ ॥

केशिनी–वह तृतीयपुरुष जो आपके साथ था वह कौन है ?।

नल–वह प्रथम तो नलका सूत था अब अयोध्याधिपतिका सूत है।

केशिनी–वह कुछ जानताहै कि महाराजनल कहां गए कहां हैं ?।

नल–नहीं।

केशिनी–उनका जब सूत बनचुका है तो क्यों नहीं जानता ?।

नल–(नेत्रोंमें जल भरकर) भद्रे यह तो नलकी संतानको यहा छोडकर अयोध्यामें नौकर रहगया फिर यह कैसे जानेगा।

केशिनी–यह नहीं जानता तो और कोइ जानताहै ?।

नल–नहीं।

केशिनी–क्यों ?।

नल–यों कि नल गूढभावसे भ्रमण करतेहैं उनका रूप भी बदल गयाहै और नल अपना कोईको परिचय भी नहीं देते कि हम नल हैं।

केशिनी–जब महाराजनलको कोई नहीं जानता तो आप यह सब उनका वृत्तांत कैसे जानतेहैं ?

---

३ श्रुत्वेति, हे भद्रे दमयंतीके स्वयंवरको सुनकर हम बहुत दूरसे आएहैं इस कारण मार्गश्रमसे ऐसी चूक होजातीहै ॥

नल–(मनमें) बडी चूक हुई (प्रकट) भद्रे मैं नलको नहीं जानता किंतु मार्ग चलते जनोंसे मैने यह वृत्तांत सुनाहै यदि मैं नलको जानता तो बता देनेमें मेरी क्या हानि थी।

केशिनी–अच्छा आपने यह अश्वविद्या कहांसे सीखी ?

नल–(मनमें) जानलिआ यह मेरा भेद जानना चाहतीहै इससे बडी सावधानतासे बात करनी चाहिए। (प्रकट) अपने गुरुसे।

केशिनी–इस विद्याको तो एक महाराजनल ही जानतेहैं।

नल–क्या विद्या भी कोईके घर बंधी है ?।

समायस्यति यो लोके प्राप्नोति च कृपां गुरोः।
स विद्यां विन्दतेऽवश्यं किं बद्धं किमपि क चित् ॥ ४ ॥

केशिनी–यहांसे अयोध्यामें जाकर एक ब्राह्मणने 'उत्सृज्य मां नाथवंती त्वयैव' इत्यादि श्लोक पढेथे उनका उत्तर आपने ही दिआथा ?।

नल–कौन उत्तर।

केशिनी–'संभग्नसौख्येन कुतोपि दैवात्' इत्यादि।

नल–(अश्रु भरकर) चाहे जिसने दिआहो किंतु उत्तर उचित ही दिआहै क्यों कि यदि भर्त्ता भाग्यविपर्यसे विपत्तिमें फँसजाए तो कुलांगनाओंको धैर्य ही करना उचित है।

केशिनी–आपके नेत्रोंमें वारंवार जल क्यों आताहै।

नल–उदारचरित महाराजनलकी वार्ता ही हृदयविदारिणी है।

विपत्सिन्धुनिमग्नस्य श्रुत्वा वार्तां महात्मनः।
कोस्ति लोके जनो यस्य मानसं न विशीर्यते ॥ ५ ॥

भद्रे अब तुम जाओ नलकी कथासे मेरा हृदय बहुत दुःखित होरहाहै।

केशिनी–बहुत अच्छा (जातीहै)।

---

४ समायस्यतीति, जो श्रम करताहै तथा गुरुकी कृपाको संपादन करताहै वह विद्याको प्राप्त होताहै विद्या कहीं बँधी नहीं ॥

५ विपदिति, विपत्समुद्रमें मग्न महात्मा नलकी वार्ताको सुनकर कौन है जिसका हृदय टुकडे टुकडे नहीं होगा। यहांपर निर्वहणसंधिका निर्णय नामक अंग है ॥

१। २ नाटक खेलनेवालोंको ध्यान रखना चाहिए कि इन श्लोकोंको पूर्ण रूपसे फिरसे पढें ये श्लोक नवमांकमें हैं ॥

नल-(मनमें) संवादतो दोर्मुखभाषितानां
तुरङ्गविद्यास्पदपाटवाद्वा ।
ज्ञातोऽस्मि किं केन चिदत्र यस्मात्
पुनः पुनः पृच्छति भावगर्भम् ॥ ६ ॥

मेरा यहां इस वेषसे ज्ञात होजाना अत्यंत लज्जाकी बात है, महाराज भीम क्या कहेंगे वनमें छोडी भीमसुतासे भी कैसे नेत्र मिलाऊंगा ?।

हृतराज्यं तनौ कृष्णं परसेवनदूषितम् ।
न कोप्यत्रावगच्छेन्मां यथा देव ? विधेहि तत् ॥ ७ ॥

रातमें सुनाहै कि पुष्कर आयाहुआहै यहां क्यों आयाहै । क्या हुआ अब तो ऋतुपर्णसे मैंने भी सख्याशास्त्र सीखलिआहै (दक्षिणभुजा फुरकतीहै) आज दक्षिणभुजा क्यों फुरकतीहै ? क्या मेरी विपत्तिका पर्यवसान समीप है ? अथवा-

कफवातादिभिः प्रायः प्रतीका विस्फुरन्ति वै ।
भविता दुष्टदिष्टस्य किमङ्गस्फुरणैः शुभम् ॥ ८ ॥

किं च- दुःखेन संभग्नमनोरथो जनः
संलक्ष्य किंचिच्छुभलक्षणं मुधा ।
नृत्यत्यनालोच्य लिपिं प्रजापते-
र्दृष्ट्वा कुरङ्गस्तु मरीचिकां यथा ॥ ९ ॥

केशिनी-(आकर) महाराज आपका श्रीनाम क्या है ?।

नल-बाहुक ।

---

६ संवादत इति, भुजा मुख और बोलीके सादृश्यसे किंवा अश्वविद्याकी चतुराईसे क्या मुझे यहां इन लोगोंने पहचान लिआहै जो यह बारबार साभिप्राय बातें पूछतीहै ॥

७ हृतेति; मेरा राज्य नष्ट होगयाहै शरीर काला पडगयाहै परसेवासे दूषितहूं इसहेतु हे भगवन् ऐसा करो जो मुझे यहां कोई पहचान न सके ॥

८ वातेति, वातपित्तादिदोषसे अंगस्फुरण हुआ ही करताहै मुझ भाग्यहीनका अंगस्फुरणसे यहां क्या शुभ होसकताहै ? ॥

९ दुःखेनेति, निरंतर दुःखभोगसे जिसके मनोरथ नष्ट होजातेहैं वह कर्मलिपिकीओर न देख कर ही शुभलक्षणसे इष्ट प्राप्तिकी आशासे नाच उठताहै । यथा मृग मृगतृष्णिकाको देखकर ॥

केशिनी–आप महाराजऋतुपर्णके कबसे भृत्य हैं ?।

नल–जबसे प्रारब्धने बनाया।

केशिनी–आपके इस वचनसे अनुमित होताहै कि प्रथम आप स्वयं प्रभु थे।

नल–भद्रे जगत्‌में अपने अपने घरका सभ कोई प्रभु होता ही है फिर अनुमितिकी क्या अपेक्षा है।

केशिनी–प्रथम आप कहां थे और किस दशामें थे।

नल–जहां भगवान् अन्न देताथा वहां था, जैसा दैव था वैसी दशा थी।

केशिनी–कृपाकर विशेषरूपसे कहिए ?।

नल–क्या तुम मेरा जीवनवृत्तांत पूछने आईहो ? जाओ जाकर स्वयंवरकी तयारी करो।

केशिनी–महाराजजी सावधानतासे बात कीजिए।

नल–चल चल।

केशिनी–बहुत अच्छा मैं जातीहूं आप रोष न कीजिए (जातीहै)।

नल–किं सा भीमसुता स्मरेण विवशा त्यक्त्वा स्वधर्मं पुन-
र्वक्रेन्दो रुचिभिः स्वयंवरगृहे प्रद्योतितुं काङ्क्षति।
किं स्वस्तस्य मम प्रवृत्तिमतये नीतिप्रयोगः कृतः
किं केनापि मुधैव राजसविधे तत्र प्रयुक्तं वचः ॥१० ॥

दैवकोपके कारण दुःख बढता ही जाताहै यदि स्वयंवरकी बात सत्य है तो भी महादुःख है इस बातके हृदयपर आते ही हृदय टुकडे टुकडे हुआजाताहै, यदि यह बात मिथ्या है मेरे ही आकर्षणकेलिए यह प्रयोग किआगयाहै तो इस भृत्यभावसे मेरा यहां प्रकट होना उचित नहीं, अहो बडा कष्ट उपस्थित हुआ अब क्या करूं ? अच्छा जो होगा देखाजाएगा।

---

१० किमिति, क्या भीमसुता कामकष्टसे स्वधर्मको त्यागकर फिर दूसरीबार अपने मुखचंद्रसे स्वयंवर गृहको प्रकाशित करना चाहतीहै ?। किंवा यह मेरीही खोजकेलिए नीतिका प्रयोग किआहै। किंवा किसीने मिथ्या ही ऋतुपर्णसे स्वयंवरकी बात कही है ॥

स्वसमीहाप्रयत्नाभ्यां किं क्वचिद्भवतीहितम् ।
विपाकः कर्मणां यादृक् तादृक् संजायते फलम् ॥ ११ ॥

(इंद्रसेन और इंद्रसेनाको साथलिए केशिनी आतीहै)

नल–(झपटकर इंद्रसेन और इंद्रसेनाको कंठ लगाकर पीछे हटकर मनमें) आहरे मन तेरा धैर्य तो न जाने कहां गया केशिनी क्या कहती होगी (प्रकट कष्टसे) अयि भद्रे तू क्यों यहां बार बार आतीहो ? ।

केशिनी–क्या मेरा आगमन आपको दुःखद है ? ।

नल–हां दुःखद भी है और यह राजभवन है मैं परदेसी सामान्य मनुष्य हूं तुम्हारे यहां विशेष आनेसे क्या जाने कोई क्या शंका करे । (नल संभाषण तो केशिनीसे करतेहैं और दृष्टि विशेषकर बचोंपर ही है)

केशिनी–मेरे आनेसे तो कोई भी शंका न करेगा किंतु आपकी इस चेष्टासे सभ कोई शंका करेगा ।

नल–किस चेष्टासे ? ।

केशिनी–आप नहीं जानते कि ये राजकुमार हैं ? राजकुमारोंको क्या कोई इसतरह झपटा करताहै ? ।

नल–(मनमें) अरे मूर्ख आतुर मन तैंने बुरा किआ (प्रकट)

चञ्चलं धैर्यरिक्तं मे मनः सृष्टं स्वयंभुवा ।
अतः सादृश्यदोषेण समतिक्रामति स्थितिम् ॥ १२ ॥

भद्रे जैसे अरविंदसादृश्यसे मधुप नायिकावदनपर जाताहै यथा नीरसादृश्यसे मृग मृगतृष्णाकी ओर भागताहै तथैव अपने बालकोंके सादृश्यसे मैंने इनका आलिंगन किआहै (अश्रु भरकर) क्षमा करना । ये बालक मेरे बालकोंके ऐसे सदृश हैं कि इनको देखकर मुझे यह भी स्मरण नहीं रहा कि यह पराया घर है । और कोई शंकाकी बात नहीं ।

केशिनी–यदि आपसे कोई इस बातका उत्तर मांगे ? ।

---

११ स्वेति, अपनी इच्छा और चेष्टासे क्या कहीं अपना ईहित सिद्ध होताहै ? । जैसा ही कर्मका विपाक उन्मुख होताहै वैसा ही फल होताहै ॥

१२ चञ्चलेति, हे भद्रे भगवान्ने मेरे हृदयको चंचल तथा धैर्यहीन बनायाहै इस हेतु और सादृश्यके दोषसे मर्यादाका लंघन होगया । यह अर्थ आगेके गद्यमें स्पष्ट है ॥

नल–उत्तर यही है कि तुम इनको मेरे पास क्यों लाई ।

केशिनी–मैं इन्हे आपके पास नहीं लाई ये अन्यत्र कहीं जारहेहैं ।

नल–अच्छा जो मुझसे उत्तर मांगेगा मैं उसे उत्तर देलूंगा । तुम यहांसे जाओ फिर यहां मत आना ।

केशिनी–अच्छा जातीहूं । (इंद्रसेन इंद्रसेनाको लेकर केशिनी जातीहै)

नल–(इंद्रसेन इंद्रसेनाकी ओर देखतेहुए मनमें) बेटा तुम क्यों जातेहो कुछ काल तो मेरे इन निर्भाग्य तप्त नेत्रोंको शीतल करो । अहो वे गृहके भीतर चलेगए ।

चिरप्रवासास्रवदभ्रमूर्ति-
भुजङ्गदंशेन च मेचकाभः ।
भुजिष्यभावार्हगृहीतवेशो
ज्ञातोऽहमाभ्यां किमु बालकाभ्याम् ॥ १३ ॥

अहो बडे कष्टका समय उपस्थित है बडा बुरा हुआ जो मैं यहां आया । प्रियजनसंसर्गसे हृदयका धैर्य क्षीण होताजाताहै । क्या यहांसे अभी भागजाऊं किंवा ठहरूं यह कुछ निश्चित नहीं स्थिर होता ।

मनो ममैकं वदनं प्रियायाः
समीहते द्रष्टुमिवाऽभिलाषि ।
वियोगदावानलदग्धमन्यत्
त्रपासरस्यां विनिमज्जतीव ॥ १४ ॥

यहां आनेपर भी यदि प्राणप्यारीका दर्शनामृत न प्राप्त हुआ तो भी भारी कष्टकी बात है अच्छा कोई तरह प्यारीका दर्शन एकवार मिलजाए तो यहांसे भागजाना ही उचित होगा ।

---

१३ चिरेति, चिरवियोगसे कृशतनु भुजंगदंशसे काला भी दासभावका वेश किए भी मैं क्या इन बालकोंने पहचानलिआहूं ? ॥

१४ मन इति, एक मन मेरा अभिलाषी प्यारीके मुखको देखना चाहताहै दूसरा मन वियोगाग्निसे दग्ध हुआ हुआ लज्जारूपी तालावमें मानो डूबता जाताहै । यहां दो मन लिखनेसे लोकोक्ति अलंकार है ॥

(मलिनवेशसे केशिनीके साथ दमयंती आतीहै)

दमयंती–(दूरसे नलको देखकर मनमें)

वक्त्रेन्दोः सुषमापि सैव निटिलं चन्द्रार्धबिम्बाकृति
बन्धोऽसौ चिकुरव्रजस्य स इव श्रुत्यन्तगे चक्षुषी ।
वक्षस्तद्विसृतं शिरोधिरपि सा चेतोपि भावास्पदं
बीजं किं स्फुटिकानुकारि विशदं रूपं न तल्लक्ष्यते?॥१५॥

नल–(दूरपर दमयंतीको देखकर मनमें) बडा कष्ट है जो–

ज्ञात्वा भुजिष्यामुखतश्चरित्रं
नलं समालक्ष्य च लक्षणैर्माम् ।
शशाङ्कलेखेव वियोगतन्वी
स्वयं समागच्छति भीमपुत्री ॥ १६ ॥

अये दुर्विनीत मन क्या अधीर होता है ? ।

कष्टं विभीष्मविपिने जनवर्त्महीने
एकाकिनी शयनचोरितदृक्प्रसारा ।
धृत्या यया तु विधुता दयिता त्वया या
दृष्ट्वाऽद्य तां हृदय ते क्व गता धृतिः सा ? ॥ १७ ॥

(युक्तिसे अश्रु पोंछकर) अरे हृदय तू तो नलका हृदय है फिर यह आकुलता कैसी ? यह समय तो धैर्यका है ।

पवेरपि दृढं यन्मे तनोत्याकुलतां मनः ।
अयोध्यामनुजेन्द्रस्य मन्ये तद्भृत्यभावतः ॥ १८ ॥

---

१५ वक्रेति, मुखचंद्रकी शोभा वही है मस्तकभी आधे चंद्रसा वही है केशबंध भी वैसा ही है नेत्र भी वैसे ही विशाल हैं छाती भी चौडी है गरदन भी वही है चित्त भी आकुल है किंतु वह गोरवर्ण कहां गया यह नहीं प्रतीत होता ॥

१६ ज्ञात्वेति, टहलिनके मुखसे मेरी चेष्टाओंको सुनकर तथा लक्षणोंसे मुझे पहचानकर यह चंद्रकलासी वियोगसे कृश भीमपुत्री स्वयं मेरे निकट चली आरहीहै ॥

१७ कष्टमिति, हाय बडा कष्ट है हे मन जिस धैर्यसे तैने इसको सोतीको उस निर्जनवनमें छोडा था आज इसे देखकर तेरा वह धैर्य कहां गया ? ॥

१८ पवेरपीति, वज्रसे भी दृढ मेरा मन जो इस समय अधीर होगयाहै पाया-जाताहै कि इस अधीरताका हेतु ऋतुपर्णका भृत्यभाव ही है ॥

(धैर्यकी चेष्टा करतेहैं) (हाथमें एक जीर्ण मलिनवस्त्र लिए दमयंती समीप आतीहै)

दमयंती–मनुजेंद्र आप सकुशल हैं ? ।

नल–(मनमें) बडा बुराहुआ अब क्या उत्तरदूं (प्रकट) और क्या ।

दमयंती–आपने उस क्षत्रियराजको कहीं देखा ? ।

नल–(मनमें) हाय इस समय पृथ्वी फट जाती तो अच्छा होता किस मुंहसे इसके साथ बात करूं । (प्रकट लज्जासे) किसको ? ।

दमयंती–जिस महाराजने मुझ अबला एकाकिनी पादप्रेष्या मुखचंद्रकी चकोरको उस विजनवनमें त्याग दिआ ।

नल–(मुख नीचे करकें अश्रु पोंछकर) किसने ? ।

दमयंती–जिसने इस वस्त्रको मेरे भाग्यके साथ फाडा है ।

नल–(मंदस्वरसे) ऐसा क्यों हुआ ।

दमयंती–मुझ हताशाकी इन जली अखिओंको निद्राने आ घेरा तदनंतर नहीं विदित कि धृष्टतासे मेरे सौभाग्यको चुराकर वह चंद्रवदन कहां चलागया ।

नल–आपके इन दुःखित वचनोंसे विदित होताहै कि कदाचित् आप श्रीदमयंती हों ।

दमयंती–हां इस निर्भाग्यनामकी मैं ही वाच्य हूं ।

नल–सुनाहै कि आपके स्वयंवरमें तो इंद्रादिदेव भी आएथे फिर उनको छोड एक तुच्छ क्षत्रिय नलको क्यों वरा ? ।

दमयंती–(रोषसे) मनुजेंद्र ऐसा अनार्यवचन मत बोलो, क्या देवगण उस राजाधिराजकी बराबरी करसकतेहैं ? ।

नल–क्यों ।

दमयंती–उनका वह रूप वह पराक्रम वह ऐश्वर्य वह विद्या वह हृदयालुता, किस किस गुणको गिनाऊं–

यः क्रूरः कलुषेष्वशेषसुकृतौ प्रीतः पुमर्थे कृती
क्रुद्धो द्वेषविधौ धनेषु विरतो रक्तश्च नारायणे।
लुब्धो ज्ञाननिधौ तुरङ्गमकलापाथोनिधिर्गीतवित्
स्निग्धो दीनजनेषु सेवकगणो सेवाकृतज्ञः परम् ॥ १९ ॥
कीर्त्या योऽनुकरोति चन्दिरकरान् धैर्येण धात्रीभृतं
गाम्भीर्येण पयोनिधिं सुरगुरुं विद्याविलासेन यः।
मार्तण्डं प्रखरप्रतापपटलैः शेषं हरेः सेवया
रूपेणाऽप्रतिमेन पुष्पविशिखं चन्द्रं प्रकृत्या च यः ॥२०॥

चंदहु छीजत रैन दिना जस रूप अनूपम मंजु निहारिकै।
रूपछटा उही देखी जबै तब काम अनंग बन्यौ मनु हारिकै॥
लोचन लाल विशाल बनै जलजात तजै जु तडागनि वारिकै।
लोक तिहों फिरि देखौ भलैं नहिं पाय सुजानसमान सँवारिकै॥२१॥

नल–जब कि वह आपको सोई पडीको बनमें छोडगया तब क्या प्रशंसाका गीत गातीहो ?

दमयंती–इसमें उनका कुछ दोष नहीं मेरी ही प्रारब्धका दोष है।

नल–न हो दोष किंतु जब उसका आपमें प्रेम ही नहीं तो गुणोंसे क्या बनेगा ?।

दमयंती–नहीं नहीं उनका मुझपर पूर्णप्रेम है।

---

१९ य इति, नलमहाराज–पापमें क्रूर हैं अर्थात् पापको स्पर्श नहीं करते पुण्यमें प्रसन्न हैं मोक्षमें कृतकृत्य हैं जो द्वेषपर ही क्रुद्ध हैं धनसे विरक्त तथा श्रीनारायणमें अनुरक्त हैं। ज्ञानरूपी धनमें लुब्ध हैं अश्वविद्याके समुद्र तथा गानशास्त्रज्ञ हैं दीनोंमें प्रेम रखनेवाले तथा सेवककी सेवाके कृतज्ञ हैं। ऐसे उत्तम गुणी हैं॥

२० कीर्त्येति, कीर्तिसे जो चंद्रकिरणोंका अनुकरण करतेहैं धैर्यसे पर्वतका गांभीर्यसे समुद्रका विद्यासे बृहस्पतिका प्रतापसे सूर्यका हरिसेवासे शेषका रूपसे कामका शीतलप्रकृति (स्वभाव) से चंद्रका अनुकरण (अनुहार) करते हैं। ऐसे नल उत्तम हैं॥

---

१ सँवारिकै इस पदका अन्वय देखनेके साथ है विवश होकर अंतमें रक्खाहै। जलजातपदका अर्थ कमल है।

नल–यदि ऐसा है तो उसके प्रेमका आपने यही प्रत्युपकार (बदला) अच्छा समझा जो द्वितीयवार स्वयंवरमें जानेका विचार किआहै ?।

दमयंती–(नेत्रमें जल भरकर कांपती हुई) यह सभ मिथ्या है ।

नल–आप मिथ्या बतातीहैं जगत्‌में ढंढोरा फिररहाहै कि दमयंतीका द्वितीयस्वयंवर होगा । (परिभाषणम्) ।

दमयंती–यह तो उन्हीकी प्राप्तिकेलिए नीतिप्रयोग किआहै ।

नल–आप नीतिप्रयोग बतातीहैं हमारे महाराज आपके द्वितीय-स्वयंवरको सुनकर ही अयोध्यासे आएहैं ।

दमयंती–आप अयोध्यासे कब चले ।

नल–कल्ह प्रातःकाल ।

दमयंती–आप कल्ह प्रातःकाल चलकर कल्ह ही सायंकालतक तीन प्रहरमें यहां कैसे आपहुंचे ?।

नल–रथसे ।

दमयंती–रथको कौन लाया ?।

नल–मैं ।

दमयंती–सत्य कहिए ?।

नल–इसमें संदेह ही क्या है ?।

दमयंती–संदेह यह है कि या तो आपको निषधाधिपति स्वयं यहां पहुंचागएहैं, अथवा आपने उनसे यह विद्या सीखी है, किंवा आप कपटवेषधारी निषधाधिपति हैं ।

नल–आपके ये संदेह व्यर्थ हैं (नेत्रसे जल टपटप गिरताहै उसे छिपातेहैं)

दमयंती–मेरा संदेह व्यर्थ नहीं, इस अतिशयिनी अश्वविद्याको निषधराजके विना दूसरा नहीं जानता । यदि आप निषधाधिपति हैं तो वह आपका गौरवर्ण कहां गया और क्यों आप अपने आपको छिपातेहैं, मुझ मंदभाग्यासे ऐसा कौन अपराध बनाहै जो आप ऐसे रूठकर निठुर बनगए । (नेत्रमें जल भरकर आतुरतासे)

दास करै अपराध जौ पुनि पुनि गूढ अपार ।
तौऊ प्रभु चित ना धरै निज प्रभुताइ निहार ॥ २२ ॥

---

१ इस मेरे दोहेमें किसी प्राचीनपद्यकी छाया पडतीहै इस दोषको पाठकगन क्षमा करें ।

नल-(रोतेहुए) प्रिये आपके इस प्रश्नका मैं पीछे उत्तर दूंगा प्रथम आप मेरे घोर अपराधको क्षमा कीजिए मैं बडा लज्जित हूं मुझसे तुम्हारे साथ नेत्र मिलानेका भी लज्जाके मारे साहस नहीं होता (दमयंतीकी ठोडीको हाथ लगाकर) प्राणप्रिये क्षमा करो, यद्यपि इस अपराधमें मेरा दोष नहीं यह सभ कलिका दोष है तथापि मैं क्षमा मांगताहूं ।

दमयंती-आपका वह रूप कहां गया ।

नल-यह श्यामलता नागदंशके कारणसे है ।

(नल ध्यान करतेहैं और दिव्यवेशसे कर्कोटक नाग प्रकट होताहै)

नाग-राजन् आपने मुझे एक विपत्तिसे बचायाथा, आप अपने उस स्वाभाविक अप्रतिम दिव्यरूपसे विपत्तिकालको न निबाहसकते इस हेतु मैंने निजदंशसे आपका रूप हराथा, अब आप तनिक इस भींतकी ओटमें आइए फिर आपका वही रूप होजाएगा । (दोनो जातेहै)

केशिनी-(दमयंतीसे) श्रीमति आपको बधाई, बडा मंगल हुआ । आजकी रात्रि सुप्रभात हुई ।

विधि अनुकूल जु होइहै भाग भलै दरसात । (आनंदः)
जिम प्रभातके होतही कमल ललित विकसात ॥ २३ ॥

दमयंती-तुम यह वृत्तांत मातासे और तातसे कहो और इंद्रसेन इंद्रसेनाको साथ लेआओ, जाओ ।

केशिनी-जो आज्ञा (मनमें) आज तो महारानीसे भारी पारितोषिक (इनाम) पाऊंगी (जातीहै) ।

(उत्तम राजवेशसे गौरवर्ण होकर नल आतेहैं नलदमयंती मिलकर रोतेहैं)

नल-प्रिये आपने जो कहा कि ' तेरी प्राप्तिकेलिए ही द्वितीयस्वयंवरका नाम लिआहै मेरे हृदयपर पापवासना नहीं ' इसका मुझे कैसे विश्वास हो ? । (परिभाषणम्) ।

दमयंती-(कांपतीहुई नलके पैरोंपर गिरके) आर्यपुत्र मैं आपके इस चरणकमलकी शपथ करतीहूं ।

नल-आप चेदिराजके गृह भी तो रहीं ।

---

१ नाटकमें सभके सन्मुख झट गौर होना कठिन है इससे भीतकी ओटमें जाना लिखाहै जो वहां जाकर मुखादि झट धोकर नल गौर होजाएं क्याही उतरजाए ।

दमयंती–(हाथ जोडकर) आर्यपुत्र मैं श्रीनारायणके चरणपंकजकी शपथ करतीहूं कि आजतक मैंने दूषित मनसे परपुरुषका चिंतन भी नहीं किआ अन्यथा यह पृथ्वी फट जाए जो मैं उसमें समाजाऊं। मैं अपने मनकी शुद्धिको कैसे दिखाऊं भगवान् ही इसमें साक्षी है।

(आकाशवाणी होतीहै)

नल त्यज समाशङ्कामेनां विविधरूपिणीम्।
दमयन्तीं विजानीहि विशुद्धां त्वत्परायणाम् ॥ २४ ॥
यथा तवानया पत्न्या रक्षितो धर्म आत्मनः।
साक्षिणोत्र वयं देवा, ह्येनां सान्त्वय दुःखिताम् ॥ २५ ॥

नल–(आकाशकीओर) जो आज्ञा। (नल और दमयंती बैठतेहैं) (समयः)।

केशिनी–(आकर प्रणाम करके) श्रीमहाराज देखिए हमारी श्रीमती दमयंतीकी देवतालोग भी साक्षिता देतेहैं। (परे हटतीहै)

(नलके प्राप्त होनेके हर्षकी तोप चलतीहै और नौबत बजतीहै)

नल–प्रिये मेरे इस मिथ्याशंकाके अपराधको भी क्षमा करो, तुम्हारीसी सत्यव्रता कौन होगी जिसकी देवता भी साक्षिता देतीहैं ॥

दमयंती–आर्यपुत्र मुझे लज्जित होनाचाहिए उलटा आप क्यों लज्जित होतेहैं।

नल–(आंखें झुकाए) प्राणप्रिये–

वियोगदावानलतापदभ्रं
विपत्त्रियामाहितिहीनकान्तिम्।
द्रष्टुं न शक्तोस्ति विलोचनाभ्यां
त्रप्तो नलोयं मुखपङ्कजं ते ॥ २६ ॥

---

२४ नलेति, हे नल इस द्वितीयस्वयंवरकी शंकाको छोडकर दमयंतीको अपनी परमानुरागिणी तथा शुद्ध समझो ॥

२५ यथेति, हे नल तेरी इस पत्नीने जैसे संकटमें अपने पातिव्रत्यधर्मकी रक्षा कीहै उसके हम साक्षी हैं। तुम सभ शंका छोडकर इसका सांत्वन (दिलासा) करो ॥ इन दोनो श्लोकोंमें उपगूहन नामक अंग है " तद्भवेदुपगूहनं यत्स्यादद्भुतसंप्राप्तिः " इति ॥

२६ वियोगेति, वियोगाग्निके तापसे कृश तथा विपत्तिरूप रात्रिकी वृद्धिसे हीनकांति (हितिरिति हि वृद्धौ धातुः) तेरे मुखकमलको यह लज्जित नल नेत्रोंसे देख नहीं सकता ॥

दमयंती—आर्यपुत्र—

मम्मैव हेतोस्तव राज्यहानि-
स्तथान्यदेशेषु विपत्तिभोगः ।
प्रियेति मां वक्षि तथापि यत्त्वं
मन्ये त्वदीया हृदयालुतैषा ॥ २७ ॥

नल—प्राणमूर्ते मत्सौभाग्यैकलते—

निद्राक्रान्तविलोचनापि विपिने भीष्मे त्वमेकाकिनी
प्राणेभ्योपि गरीयसी मतिमती राजोपचारोचिता ।
चक्षुःप्रीतिकरा विधोरिव कला धर्मैकमूर्तिः परा
वैयात्येन यथा मयासि विधुता को नाम तद्वत् त्यजेत्॥२८॥

दमयंती—आर्यपुत्र मैने जो द्यूतके समय आपको कठोर वचन कहे उन्हेभी क्षमा करनाचाहिए न जाने आप मेरे उन कठोर वचनोंसे ही रूठ गएहों ।

नल—अयि सुंदरि—

मद्धिताय त्वया प्रोक्तं वचनं नीतिसङ्गतम् ।
श्रुतं मया न मन्देन मयि दोषोत्र न त्वयि ॥ २९ ॥

और— प्रेमपूर्णनयनेक्षितनॄणां
प्रातिकूल्यकृदपीरितवाणी ।
भाति हंसकलकूजितहृद्या,
किं न चारु गरलं हरकण्ठे ॥ ३० ॥

---

२७ ममैवेति, मेरेही कारण आपका राज्य गया और आपने विपत्ति भोगी फिर जो आप मुझे प्रिया कहतेहैं यह आपकी केवल कृपा है ॥

२८ निद्रेति, हे प्रिये जैसे मैने तुझ सोती पडीको प्राणोंसे भी प्यारी बुद्धिमती तथा राजोपभोगयोग्याको नेत्रको आनंद देनेवाली चंद्रकलासी धर्मकी मूर्तिको उस निर्जनवनमें धृष्टतासे छोडादिया इस तरहसे कौन निर्दयी है जो छोडसके ॥

२९ मद्धितायेति, आपने तो जो कहाथा वह सब मेरे ही हितकेलिए कहाथा मैने उसे नहीं सुना यह मेरा दोष है आपका दोष नहीं ॥

३० प्रेमेति, जिनको प्रेमकी दृष्टिसे देखाजाताहै उनके कहे कटु भी वचन हंसके कूजितसे प्यारे लगतेहैं यथा वस्तुगत्या विष बुरा भी है तथापि महादेवजीके कंठको प्राप्त होकर सुंदर लगताहै ॥

(इंद्रसेन और इंद्रसेना भागकर आकर नलको प्रणाम करतेहैं और नल इन्हे कंठ लगातेहैं)

इंद्रसेना–बाबा आप कहां थे ? ।

नल–बेटा मैं कहीं काम गयाथा ।

इंद्रसेना–यहां तो सभलोग तुमको समरण करके रोतेरहे ।

नल–तुमने रोका नहीं ? !

दमयंती–(इंद्रसेनासे) चुप ।

नल–(इंद्रसेनसे) बेटा कुछ पढतेहो ? ।

इंद्रसेन–हां, व्याकरणसूत्र पढताहूं ।

इंद्रसेना–बाबा हम भी पढतेहैं ।

नल–हां अच्छा ।(भीम और भीमपत्नी आतेहैं नलादि सभ अभ्युत्थान देतेहैं)

इंद्रसेना–(भीमसे) दादा बाबा आगए ।

नल–(मुख नीचा करके) मैं प्रणाम करताहूं ।

भीम–यह अस्थानमें लज्जा कैसी (नलका आलिंगन करतेहैं)

(भीम नलके पास बैठतेहैं दमयंती माताके निकट बैठतीहै)

नल–इससे बढकर और कौन लज्जाका स्थान होगा ।

भीम–मैं तो जानताथा कि आप इस घरको अपना समझतेहैं किंतु बडे उपालंभका स्थान है कि आप इस घरको अपना न समझा जो अयोध्यामें जाकर रहे ।

नल–मैं तो स्वयं ही लज्जासमुद्रमें डूबरहाहूं फिर आप क्यों लज्जित करतेहैं ।

अविद्या भ्रामयत्येषा कोविदानपि पूरुषान् ।
किं पुनर्मादृशान् मूढान् दैवकोपपराहतान् ॥ ३१ ॥

भीमपत्नी–चंद्र जो हुआ सो हुआ अब भी आप आगए यह भगवान्‌की वडी कृपा है, हम तो आज आनंदसे फूले अंगमें नहीं समाते ।

भीम–आप शरीरसे सकुशल तो रहे ? ।

---

३१ अविद्येति, इस अज्ञानसे बडे बुद्धिमान् भी चूक जातेहैं फिर मुझसे मूढकी क्या कथा ॥

नल–आपकी कृपासे तथा भगवदनुग्रहसे।

(ऋतुपर्ण आतेहैं दमयंती ओर भीमपत्नी जातीहैं)

भीम–आइए आइए (सभ उठतेहैं)।

ऋतुपर्ण–विराजिए (सभ बैठतेहैं)।

भीम–आपका आगमन ऐसा शुभ हुआ कि हमको निषधाधिपति मिलगए।

ऋतुपर्ण–इस बातका तो मुझे भी इतना हर्ष हुआहै कि मैं उसे किसी प्रकारसे भी व्यक्त नहीं करसकता, किंतु मुझे इस बातका बडा कष्ट है कि (नलसे) वह घर आपका है फिर आप ऐसे गुप्त होकर क्यों रहे।

भीम–जब इस घरको भी इनने अपना न समझा तो औरको अपना क्या समझनाथा।

ऋतुपर्ण–अच्छा, मुझसे जो ज्ञाताज्ञात अपराध हुए हों उन्हें क्षमा करना।

नल–आप ऐसा क्या कहतेहैं, मैंने इस विपत्तिमें आपके घर बहुत सुख पायाहै।

ऋतुपर्ण–अब आप उस घरको अपना समझो।

नल–हां हां इसमें भी कुछ संदेह है।

ऋतुपर्ण–हां हां नहीं मैं आपसे विशेष प्रीति चाहताहूं।

नल–मैं तो प्रथमसे ही आपको मित्र समझताहूं उसपर भी आपने जो मुझे संख्याशास्त्र बतायाहै इससे मेरे हृदयपर आपका स्नेह और भी अधिक आरूढ होगयाहै।

(दो भृत्योंके साथ पुष्कर आताहै)

भीम–आइए जी महाराज पुष्करसिंहजी। (मनमें) जीमें तो आताहै अधर्मीको तोपसे उडवादूं।

नल–(पुष्करसे) भैया अब मेरे पास क्या है जिसके लिये आप यहां आए।

पुष्कर–अभी एक वस्तु है।

नल–अच्छा तो द्यूत होय।

पुष्कर–होय, किंतु उसी छै आठके दावपर।

नल–हां हां कुछ दाव लगाओ ?।

पुष्कर–क्या कहते लाज भी नहीं आती।

नल–क्यों।

पुष्कर–यों कि किसकी जीत है ?।

नल–अच्छा तो मैं यह अंगूठी लगाताहूं।

पुष्कर–(कौडी गेरकर, एवं आगे भी कौडी गेरकर समझना) यह पांच।

नल–(मनमें) अबकी बेर इसे जिताकर दूसरीबेर समझूंगा यह क्या खेलताहै (प्रकट) यह तीन।

पुष्कर–यह चार। लाइए लाइए।

नल–लीजिए (अंगूठी देतेहैं)।

ऋतुपर्ण–(नलसे) आप यह क्या खेलतेहैं ? सावधानतासे खेलिए।

नल–पुष्करजी इस विद्यामें असीम निपुण हैं।

पुष्कर–भैया बातें पीछे करना।

नल–बहुत अच्छा, यह लो दूसरी अंगूठी लगाताहूं।

पुष्कर–तेरह।

नल–यह दो, अंगूठी लाइए।

पुष्कर–यह लो।

नल–अब आप कुछ दाव लगाओ।

पुष्कर–मैं अपने साथकी समग्र सामग्रीको दावपर लगाताहूं।

ऋतुपर्ण–क्या पुष्करजी इसी उत्साहपर द्यूत खेलने बैठेहैं ?।

पुष्कर–क्यों।

ऋतुपर्ण–आप राजा हैं, आधा राज्य तो लगाओ।

---

१ यहांपर भी षष्ठांकके तुल्य सोलह कौडीका ही खेल समझना। और छैका नलका दाव है आठका पुष्करका दाव है। दो छै दस किंवा चौदह कौडी जब चित गिरेंगी तो नल जीतेंगे। चार आठ बारह किंवा सोलह कौडी जब चित गिरेंगी तो पुष्कर जीतेगा।

पुष्कर–आप तो आधा कहतेहैं, मैं तो समग्र ही राज्य दावपर लगानेको उद्यत हूं किंतु यदि ये हारे तो क्या देंगे।

भीम–विदर्भको देंगे।

ऋतुपर्ण–अवधको देंगे।

पुष्कर–अच्छा तो जो बदा है उसे तो प्रथम जीतने दो।

नल–(कौडी गेरकर) यह तीन।

पुष्कर–तीन काणे. ये लो सात।

नल–ये दस। अब और कुछ बदिए।

पुष्कर–मैं तो अबके समग्र राज्य दावपर लगाताहूं आप भी कोई राज्य लगाइए।

ऋतुपर्ण–हां इधरसे मैने अपना राज्य लगाया।

पुष्कर–(मनमें) अहाहा अबके जीत जाऊं तो अवधेश भी कहाऊं।

नल–ये सात।

पुष्कर–ये नौ।

नल–ये पँदरह।

पुष्कर–ये तेरह।

नल–ये चौदह। अब कुछ और शेष है?।

पुष्कर–अब तो प्राणमात्र शेष हैं।

(आकाशमें)

भूपालानां मुकुटमणिभिश्चुम्बितौ यस्य पादौ
यस्य श्लोको विबुधसमितौ गीयते मेनकाद्यैः।
शुद्धं चेतः कलयति सदा श्रीहरेर्नाम यस्य
राज्यं प्राप्याऽद्य स विजयते वैरसेनिर्नलोऽसौ ॥ ३२ ॥

भीम–(नलसे) वत्स ये नभस्तलचारी गंधर्वजन आपका मंगल गातेहैं।

---

३२ भूपालानामिति, जिसका चरण राजमुकुटोंसे वंदित है जिसके यशको देवसभाओंमें अप्सरा गातीहैं जिसका शुद्ध मन सदा श्रीनारायणका स्मरण करताहै वह वीरसेनके पुत्र नलमहाराज राज्यको प्राप्त होकर जयको प्राप्त हुएहैं। यहां कृति और प्रथन दो अंग हैं॥

नल–(पुष्करसे) अब आप क्या कहतेहैं ।

पुष्कर–त्वं मे राजन् पिता साक्षान्माता दमयन्ती तथा ।
रक्ष वा हर वा प्राणान् प्रमाणं त्वं हि केवलम् ॥ ३३ ॥

(कर जोर प्रणाम करके)

त्वया सह तथा राजन् पुत्रदारादिभिस्तव ।
यन्मया कलितं शाठ्यं तदागः क्षम्यतां मम ॥ ३४ ॥

नल–(पुष्करसे) यद्यपि तू दंडके योग्य है तथापि इसमें तेरा कुछ दोष नहीं किंतु यह सभ कलिका दोष है जिसने तेरी और मेरी बुद्धिको भ्रष्ट करदिआ । मैं तुझे अब भी उसी स्नेहकी दृष्टिसे देखताहूं और जो कुछ प्रथम तेरा अधिकार था उसे फिर मैं तुझे देताहूं । (पुष्कर प्रणाम करताहै)

ऋतुपर्ण–(नलसे) आपके अनर्घोदारचरित्रकी क्या बात है ।

पुष्कर–कृतापराधे दण्डयेपि नरे शरणमागते ।
दृष्टिं सानुग्रहामेव क्षिपन्ति प्रभवः सदा ॥ ३५ ॥

(इंद्र आतेहैं)

भीम–अहो भगवान् शतक्रतु आए । (सभ उठके खडेहोतेहैं)

सभलोग–(प्रणाम करके) जय जय ।

इंद्र–आज तो निषधाधिपतिकी जय बोलनीचाहिए ।

नल–पूज्यलोग इसीतरह शिक्षा दिआकरतेहैं । (सभ बैठतेहैं)

इंद्र–(नलसे) राजन् आप जबसे विपत्तिमें पडेहैं तबसे हमलोग शोकाक्रांत थे आज आपकी विपत्ति दूर होनेसे हमलोगोंको बहुत हर्ष हुआहै और देवलोकमें घर घर आपका मंगल गायाजाताहै ।

---

३३ त्वमिति, हे राजन् आप ही मेरे पिता हैं दमयंती ही मेरी माताहै अब चाहे आप मेरी रक्षा करो चाहे वध करो इस बारेमें आपही प्रभु हैं ॥

३४ त्वयेति, हे राजन् आपके साथ तथा आपके पुत्र कलत्रके साथ जो मैंने शठता कीहै उसे क्षमा करो ॥

३५ कृतेति, अपराधी दंडयोग्य भी जो शरण आजाताहै उसपर प्रभु लोक कृपादृष्टि ही किआकरतेहैं ॥

---

१ अर्थात् अब मैं तुझे क्या दंड दूं यह बताओ ।

ऋतुपर्ण–ऐसे ही है।

इंद्र–आज मैं राज्यतिलक देताहूं (नलके मस्तकपर तिलक करतेहैं भीम-कंठसे मुक्तामाल उतारकर नलपरसे न्यौछावर करतेहैं)

ऋतुपर्ण–मैं यह खड्ग भेट देताहूं (नलको खड्ग देतेहैं)

पुष्कर–महाराजकी जय हो (नलको भेट देताहै)

वार्ष्णेय–(आकर प्रणाम करके) श्रीमहाराजकी जय हो। (नलको भेट देताहै और स्वर्णदंड हाथमें लेकर खडाहोताहै)।

(नेपथ्यमें)

महीधरकुचस्थलीं जलधिकिङ्किणीभूषितां
सरोजनयनां यशस्सितनिवीतसंछादिताम्।
प्रियां वसुमतीं पुनर्निखिलदोषहीनामयं
वहन् जयति धर्मविन्नृपवरो ह्यऽनर्घो नलः॥ ३६॥

ऋतुपर्ण–वाह वाह (सभलोग हर्षकी ताली बजातेहैं। आकाशसे पुष्पवृष्टि होतीहै)

इंद्र–(भीमसे) अब आप निषधेन्द्रको निषधमें कल्ह ही भेजदीजिए समग्र निषधमंडल इनके दर्शनामृतपानकेलिए आतुर होरहाहै।

भीम–कल्ह ही भला कैसे भेजदूं कुछ दिन तो इनके समागमका हम लोगोंको भी आनन्द प्राप्त होनाचाहिए।

इन्द्र–नहीं अब तो भेज ही दो फिर कभी बुलाकर आपलोग आनन्द लेना।

भीम–यदि ऐसी ही आपकी आज्ञा है तो परसोंको प्रातःकाल भेजदूंगा।

इन्द्र–अस्तु. परसो प्रातः ही अवश्य भेजदेना।

---

३६ महीति, जिसके पर्वत ही कुच हैं जिसकी समुद्र ही किंकिणी है सरोज ही नेत्र हैं ऐसी स्वकीर्तिरूपी चद्दरसे ढँकी हुई निर्दोष पृथ्वीको पाकर। तथा पर्वतसे हैं कुच जिसके कमलसे हैं नयन जिसके यशसे सफेद दुपट्टेको ओढनेवाली प्रियाको पाकर बडे धर्मात्मा तथा अनर्घ (बेकीमत) नलमहाराज जयको प्राप्त हैं। यहां श्लेषालंकार है। भाषण नामका अंग है॥

भीम–जो आज्ञा । (द्वारकी ओर देख) द्वारपर कौन है ? ।

कंचुकी–(आकर) आज्ञा ? ।

भीम–नगरमें कहदो कि परसो प्रातःकाल ही महाराजनल निषधको पधारेंगे उस समय सभलोग अपने अपने द्वारपर जलकलशादि मंगल पदार्थ लेकर खडेहों और आज सभलोग घर घर उत्सव मनाएं ।

कंचुकी–जो आज्ञा (जाताहै)

इंद्र–आज तो देवलोकमें भी उत्सव होरहाहै ।

नल–ये सभ आपकी कृपाके फल हैं ।

भीम–इसमें क्या संदेह है ।

(नेपथ्यमें)

सकलमहिपपूज्यश्चक्रवर्ती नलोऽयं
रविसमुदयकाले पत्स्यते राज्यभूमिम् ।
नगरनरगणस्तद् द्वारदेशे तदा स्वे
कुसुमकलशलाजाः श्रेयसे संतनोतु ॥ ३७ ॥

(कई एक अप्सरा आकर नाच करतीहैं)

अप्सरालोग–(नाचके पीछे सवैया गातीहैं)

ध्रुव पाय अनादर तात किओ दुखि देवनदेव यथा हरस्यौ ।
गजराज अपार बँध्यौ विपदा हरि आपन धाय यथा दरस्यौ ॥
दुख बारहिं बार पर्‍यो नृहरी धरि रूप प्रह्लाद यथा परस्यौ ।
नलराज महा नृपती विपदा हरि दीनदयाल तथा सरस्यौ॥३८॥

सभलोग–वाह वाह, वाह वाह । (भीम सब अप्सराओंके कंठमें एक एक उत्तम मुक्तामाला पहिरातेहैं)

---

३७ सकलेति, सकल राजाओंसे पूज्य चक्रवर्ती नलमहाराज (परसो) सूर्योदयके समय अपने निषधराज्यको पधारेंगे इस हेतु उस समय नगरके लोग मंगलकेलिए अपने अपने द्वारपर पुष्प जल कलश तथा धानकी खील सजाकर रक्खें ॥

---

१ दुख बारहि बार पर्‍यौ इसका प्रल्हाद पदके साथ अन्वय है । " प्रन्हादीनाम् " इस सूत्रसे प्र तथा ल्हासे पूर्व अक्षरको गुरुत्व नहीं हुआ इससे छंदोभंग नहीं जानना । चतुर्थपादमें हरिपदका हरके यह भी अर्थ है यथा विपदा हरके सरस्यौ ।

इंद्र–(अप्सराओंसे) आज रातमें इस सवैयेको हमें फिर गाकर सुनाना।

सभअप्सरा–जो आज्ञा।

इंद्र–(नलसे) राजन् अब मैं जानाचाहताहूं मेरे योग्य कुछ और काम हो तो कहिए। (काऽयसंहारः)।

नल–आपकी कृपासे किसी पदार्थकी कमी होती तो कहता, हां आपकी कृपा बनीरहे, और–

धर्मः पादचतुष्टयेन वसुधाचक्रे स्थितः स्यात्सदा
श्रीनारायणभक्तिभावितमनाः सर्वो जनः शोभताम्।
द्वेषाऽहङ्कृतिमुक्तसौख्यविभवैर्युक्ता प्रजा मोदतां
प्राप्नोतु प्रतिवासरं सुमनसां हर्षप्रदं दर्शनम्॥ ३९॥

इंद्र–एवमस्तु। (इंद्र इंद्रसेनको प्यार देतेहुए जातेहैं। और सभलोग इंद्रको छोडनेकेलिए जातेहैं)

इति अनर्घनलनाटकका दशमांक समाप्त हुआ।

नलचरित्रनाटक पढौ चलौ धर्मकी रीति।
नलदमयंती प्रेमसम हरिचरणन कर प्रीति॥ ४०॥

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः॥

॥ इति पंजाबी पंडित सुदर्शनाचार्यशास्त्रिप्रणीत अनर्घनलचरित्र महानाटक समाप्त हुआ॥

---

३९ धर्म इति, धर्म अपने चारों पादोंसे सदा पृथ्वीपर स्थिर रहे, श्रीनारायणके भक्तलोग सब शोभायमान हों, द्वेष तथा अहंकारसे रहित सुखसे युक्त प्रजा प्रसन्न हो, और प्रतिदिन महात्मापुरुषोंका हर्षप्रद दर्शन प्राप्त होतारहे। यहां प्रशस्ति नामक अंग है॥

इति पंचनदीयपंडितसुदर्शनाचार्यप्रणीता अनर्घनलीयश्लोकार्थ-सुदर्शनीटीका समाप्त हुई॥ श्रीहरये नमः॥

॥ श्रीः ॥

अथ

शिवाष्टपदी

भज विषमविलोचनवेशम् ।
चन्द्रकिरणसमशुभ्रसुदर्शनशैलनितम्बनिवेशम् ॥ ध्रु ॥
निटिलविलोचनलोचनतः कृतभस्मशरीररतीशम् ।
हिमनिधिसानुसमाधिसमश्रितचक्रधरं धरणीशम् ॥ १ ॥
यामवतीपतिपूर्वकलापरिकलितविशालललाटम् ।
हैमवतीपरिरम्भपवित्रितचित्रितवत्सकवाटम् ॥ २ ॥
व्यालवलयकमनीयकरम्बितभूषितहस्तसरोजम् ।
शैलसुतावदनेन्दुविलोचनचञ्चलहृदयमनोजम् ॥ ३ ॥
विष्णुपदीपरिभोगपरिष्कृततुङ्गकपर्दकतल्पम् ।
गानकलाकुतुकेन नवीकृतताण्डवकल्पमनल्पम् ॥ ४ ॥
भक्तजननमरणादिमहास्रवमोचनकौशलवेषम् ।
त्रिभुवनमण्डलमण्डनपण्डितवन्दितपादविशेषम् ॥ ५ ॥
विष्णुमतीयतृतीयविचक्षणवल्लभवादनिदानम् ।
चाटुवचनचातुर्य्यनिकृन्तितगिरिजामानसमानम् ॥ ६ ॥
संहृतसागरमथनविनिस्सृतदारुणदारदशोकम् ।
मन्मथविशिखभुजङ्गविषाहतिसंहृतिसमवितलोकम् ॥ ७ ॥
गीतमिदं हरहर्षकरं किल सुखयतु पुरारिपुदासम् ।
अष्टपदी निपुणाय पिनाकी वितरतु निजपदवासम् ॥ ८ ॥

इति

पञ्चनदीयपण्डितसुदर्शनाचार्यशास्त्री

श्रीः

निजजीवनवृत्तांत

पाठकवर इस समय मेरे तीन कनिष्ठ भ्राता हैं और एक ज्येष्ठ भग्नी है इससे पूर्व दो तीन बहन भाई मेरे मर भी चुके हैं। मेरे श्रीपिताजीका श्रीवंशीधराचार्य नाम था उनके पिताका श्रीराधाकृष्णाचार्य और पितामहका श्रीरामप्रतापाचार्य नाम था, इनके नामसेही प्रतापका संबंध नहीं था किंतु पंजाब देशमें इनका भारी प्रताप था पंजाबके राजा महाराजा तथा विद्वान् और साधु महात्मा सभी इनको बहुत कुछ मानतेथे पटियालेके राजा नरेंद्रसिंहकी इनमें अतिशयित श्रद्धा थी।

मेरे पिता पंजाब जिला लुधियानेके जगराओं शहरमें रहतेथे संवत १९२६ आश्विनकृष्ण षष्ठीकी अपर रात्रिमें जगराओंमें मेरा जन्म हुआ उस समय पिताकी केवल २६ वर्षकी ही अवस्था थी और ब्राह्मण वैष्णव होनेके कारण मेरे जन्मका उत्सव मनानेकी कुछ भी अपेक्षा नथी तथापि मातापिताने भारी उत्सव मनाया तथा अपनी शक्तिकी अपेक्षा बहुत अधिक धन बांटा। पंचमवर्षपर्यंत मेरा बहुत लाड रहा फिर धीरे धीरे अष्टमवर्षपर्यंत घटता घटता निश्शेष होगया। पंचमवर्षमें चूडाकर्म और अष्टमवर्षमें उपनयन हुआ अब शिक्षा आरंभ होगई। जरा जरासी बातपर खूब ही मार पडती थी। एक दिन एक भिक्षुक आया वह आटा (चून) लेता था माताने मुझे भिक्षा देनेको कहा मैंने बालशाठ्यसे नीचे दाना रख ऊपर आटा रख उसकी झोलीमें डाल दिआ उसके आटेमें दाना मिलजानेसे उसने मातासे कहदिआ माताने उसका आटा छनवाके फिरसे भिक्षा दिलादी उसके जानेसे माता मेरी छातीपर छुरी लेकर चढबैठी और यही कहा कि तैंने भिक्षुकके साथ दगा किया फिरभी करेगा इससे आज तेरा गला काटडालतीहूं, बडी कठिनसे मजूरिन तथा भग्नीने मुझको छुडाया। ऐसी वारदातें बहुतवार हुईं। मैं मातापिताकी उन शिक्षाओंको बडा उपकार समझताहूं उनसे मेरे बहुतसे कांटे झडगए पिताने एकबार मुझे अनवसरमें हँस देनेपर भी पीटा था। बाल्यावस्थामें जैसी कुछ मुझे मातापितासे ताडना प्राप्त हुई भगवत् करे वैसी सबको प्राप्त हो किंतु

देखनेमें आताहै कि अब वैसी ताडना तथा शिक्षा प्राप्त नहीं होती, मेरे कनिष्ठ भ्राताओंको भी वह प्राप्त न हुई। माता मुझे संतोष और दया करनेकी भी बडी शिक्षा देतीथी। मेरी माताके सदृश संतोष और दया करनेवालीं स्त्रीं बहुत अल्प हैं।

संवत् १९३७ के आरंभसे ही पिताने मुझे अपने साथ रखना आरंभ किआ प्रथम मुझे अपने साथ अमृतसर लेगए फिर मार्गमासमें श्रीवृंदावन लेगए वहां उनने अपने आचार्यपुत्र श्रीमान् स्वामिश्री १०८ श्रीनिवासाचार्यजीमहाराजसे मुझको श्रीरामानुजसंप्रदायकी दीक्षा दिलाई क्योंकि असीमकालसे लेकर हमारे घरमें श्रीरामानुजसंप्रदाय ही चलीआतीहै और पूर्वपुरुषोंसे लेकर स्वयं शिष्य करनेकी भी मर्यादा चली आतीहै इससमय भी मेरे पिताके बहुतसे शिष्य वर्तमान है तथा मेरेभी।

संवत् १९३८ लगते ही पिता घरको चले आए और मुझे श्रीसंप्रदायानुयायी शौच आचार व्यवहारकी खूब शिक्षा दीगई मैंभी अल्पकालमें ही यथाशक्ति उसमें निपुण होगया। संवत् १९३९ में पिताने मेरा विवाह करदिआ। १९४० में मैं वृंदावनको चलागया मेरे पिताको वहांके सी आई ई राजा सेठ लक्ष्मणदासजीने बडे आदरसे बुलायाथा इससे २ मास पीछे पिता भी आगए उनने पुत्रप्राप्तिकेलिए पितासे अनुष्ठान करायाथा।

दो चार जीव ऐसे पिताके मुँह लगेथे कि मुझसे उनसे पटी नहीं इससे उन लोगोंने पिताको मेरीओरसे सिखाना पढाना आरंभ किआ जिससे पिताकी कृपामें अंतर पडने लगगया। वृंदावनमें पहुंचनेके समय भेदसे मेरे और पिताके निवासस्थानका भी भेद था इस समय पिताके यहां एक बार ब्राह्मण भोजन था पिताने मुझे भोजनकेलिए भी नहीं कहा और भोजनकी कोई वस्तु भी नहीं भेजी मुझे भी पिताकी इस निठुराईसे कुछ खेद हुआ इससे मैं भी उस दिन पिताके मकानपर नहीं गया। यह रंज बराबर सं० १९४९ तक बढताही गया। मैंने बहुत चाहा भी कि पिताकी कृपा प्राप्त हो परंतु सभ यत्न व्यर्थ गया सं० ४० से ४९ तक कई बार पिता वृंदावन गए कई बार नाभे गए शेष काल घर भी रहे और मैं भी पिताके साथ ही था किंतु अनबनसे ही। मुझे चारों दिशाओंमें अंधकार ही प्रतीत होताथा क्योंकि पिताके विना मेरेलिए

और कोई अन्नका भी आश्रय नहीं था पिता मुझे कुछ पढाते अवश्य थे किंतु अपनी सेवा इतनी कडी कराते थे कि पढनेपर श्रमको समय प्राप्त नहीं होताथा पिताने मुझे इतनी उपेक्षा दिखाई कि सं० ४२ के बाद वस्त्रकी भी बडी तंगी होगई। और ४९ में मुझे ४० दिनतक ज्वर आतारहा किंतु पिताने बाततक न पूछी औषध और विश्रामको समय देना तो दूर रहा। इस निठुराईसे भीतरो भीतर पिताकी भी निंदा हुई। किंतु मेरे गोचर जितना काम था मैं उस सभको उस ज्वरमें भी नित्यं प्रति पूरा करताथा। ४० दिन पीछे मैं अच्छा भी होगया। पिताका इतना पानी भरा है कि अबतक हाथोंमें अट्टन वर्तमान हैं। अब मेरीओ- रसे पिताका हृदय इतना बिगडगया कि कोई वस्तुको इधरसे उधर रखनेमें भी अनेक संदेह करनेलगे मूसे बिलैयाके खा जानेसे उस खाद्यकी चोरी भी मेरे माथे मढने लगे यहांतक कि उनके रक्खे मोद- कोंको मूसोंने नोचलिआ पिताको उस नोचनेका मुझपर भ्रम ऐसा पक्का हुआ कि दो पुरुषोंके संमुख वह मोदक मेरे माथेपर ही मारा जिससे मेरे कछ चोट भी लगी और लज्जाकी तो क्या लिखूं यही जीपर आया कि पृथ्वी फट जाए तो उसमें समा जाऊं। पिताके इन अत्या- चारोंसे चित्त बडा दुखी होगया। मथुराके सेठ लक्ष्मणदासजी वृंदाव- नके पंडित सुदर्शनाचार्यशास्त्रीजी नाभेके बाबा वासुदेवदासजी इन तीन महापुरुषोंसे पिताका प्रथम असीम प्रेम था फिर स्वयं पिताने निज बेपरवाहीसे उस प्रेमको बिगाड डाला और उस प्रेमके बिगड जानेमें मुझे ही हेतु समझलिआ किंतु मेरा इसमें रत्ती भी अपराध नहीं था प्रत्युत ऐसे बहुतसे उपाय किए जिससे इन लोगोंका प्रेम न बिगडे उनका कुछ फल भी हुआ किंतु पिताकी भारी उपेक्षासे पूर्णफल न हुआ।

इधर वैमनस्य बहुत बढगयाथा। पिताकी ओरसे बडा दुःख भोगना पडताथा तथापि अन्न वस्त्रका कोई आश्रय न होनेसे सभ सहताथा। संवत् १९४९ के माघमें एक दिन पिताके मुंहलगा एक नौकर पिताको भडका रहाथा मैंने उस नौकरको कुछ डांटा किंतु मेरा डांटना पिताको सह्य न हुआ पिताने मुझे बहुत गालिएं दी और बहुतसे शाप दिए मैंने पिताके उस समग्र भाषणके उत्तरमें इतना ही कहा कि ‘ यदि मैंने जानबूझकर आपका कुछ बिगाड किआ हो तो मुझे चौदह नहीं अट्ठा-

इस रुष्ट हों और मेरे हाथसे यदि कोई वस्त्रभूषणादि आपका खोगया हो वा टूटगया हो तो आप कहिए मैं अपना तनु बेचकर भी उसका पलटा दूंगा और आपका घर मौजूद है आप सम्हाल लेना मैं जुम्मेवार नहीं और आपने अब मुझपर विश्वास नहीं करना मैं बहुत शीघ्र आपके घरसे निकल जाऊंगा ' मेरा यह उत्तर सुन पिताका कोप शांत होगया और पिताको घरके सम्हालनेकी भारी चिंता उत्पन्न होगई इस हेतु पिताने बहुत यत्न किआ कि मैं बाहिर न जाऊं किंतु मैंने न मानी, मैंने हृदयपर दृढसंकल्प करालिआथा कि भिक्षा मांगनी अच्छी पिताके घर अब रहना उचित नहीं सो मैं फाल्गुण लगते ही घरसे चलपडा उस समय माता पिता बहुत रोए और जैसे जैसे पिताकी निठुराई बढती जातीथी माताकी कृपा भी उतनी ही बढती जातीथी।

मैं घरसे निकलकर हरिद्वार होकर जयपुर पहुंचा इधर पिताके चित्त-पर चलनेके समय जो मृदुता थी वह नष्ट होगई कोप वैसे ही फिर आजमा किंतु पूर्वकी अपेक्षा बढा नहीं। मुझे उस समय गानेबजाने-वालोंसे मिलनेकी बडी रुचि थी सो मैं जयपुरमें श्रीतानसेनवंशावतंस मीयां श्रीअमृतसेनजीसाहेबके मकानपर गया उनका सितार सुनकर मैं मुग्ध होगया मैंने उनसे सितार सीखनेका दृढसंकल्प करके उनसे कहा मेरी प्रार्थना मानी नहीं किंतु ऐसा मुझे समझाया कि जिससे मेरा वह संकल्प टूट जाय किंतु टूटा नहीं एक दिन उनके एक भ्राताने मुझे उद्देश्य करके समयकी तथा सीखनेवालोंकी निंदा कि मैंने कहा ' यदि लायक पुरुषके द्वारपर कोई नालायक भिक्षुक आता है तो घरवाला भिक्षुककी नालायकीकीओर देख जबाब नहीं देता किंतु अपनी लाय-कीकीओर देख भिक्षा देता ही है ' यह सुन वे चुप होगए मैं उनके पीछे पडा ही रहा। इतनेमें काशीवासी राजा भरतपुरकी ज्येष्ठ कन्याका मेरे द्वारा संबंध हुआ था इससे मुझे काशी आना पडा काशीसे मैं फिर जयपुर गया बडी कठिनसे पांच मास पीछे पीछे फिरनेसे श्रीअमृ-तसेनजीने मुझे सं० १९४६ के श्रावणमें शागिरद बनाया फिर उनने मेरे साथ कोई बातका कपट नहीं किआ मेरी अनुकूलतासे उनकी मुझपर असीम कृपा होगई। कुछ दिनके बाद मैंने वहां पंडित श्रीसुंद-रजीओझासे पढना भी आरंभ करादिआ मैंने काव्य कोश सिद्धांतकौमुदी

काव्यप्रकाश काव्यादर्श तथा काव्यप्रदीप ये ग्रंथ यथाक्रम उनसे पढे। और अमृतसेनजीसे सितार भी सीखता रहा। पिता मुझे स्वयं भी बहुत ही अल्प खर्च भेजतेथे कि ४६ से ५० तक पांच वर्षमें सभ मिलाकर मुझे चौसठ रुपए भेजेथे और दूसरेको भी खर्च या कर्ज भेजने नहीं देतेथे इस कारण मुझे धनकी इतनी तंगी उठानी पडी कि मासमें कई बेर फाके करने पडतेथे दो दो चार चार फाकोंकी तो अब संख्याका भी स्मरण नहीं रहा एक बार ऐसा भी समय आया कि नौ दिन मुझे अन्न प्राप्त नहीं हुआ केवल जल पीकर मैंने ९ दिन बिताए। एक जाडाभर वस्त्रकी भी इतनी तंगी भोगी कि मेरे पास दो चटाई थीं उनमेंसे एकको मैं नीचे बिछाताथा एकको शीतसे त्राणकेलिए ऊपर ओढताथा पाठकवर वह समग्र जाडा एक चटाई ओढकर बिताया और क्या लिखूं। मैंने उस समय अपनी शक्त्यनुसार भारी विपत्ति भोगी किंतु आजतक किसीसे यह हाल नहीं कहा यहांपर मिथ्या लिखना उचित न समझ विवश लिखना पडा। और पिताकी निठुराईसे चित्त इतना दुखी था कि सभ उक्तविपत्ति तो सह ली किंतु पिताको कुछ नहीं लिखा। और विपत्तिसे असीम दुःखी होनेपर भी मैंने अपने विद्याऽभ्यासमें तनिक भी त्रुटि नहीं की किंतु निरंतर अभ्यास करता ही रहा क्यों कि विपत्कालकी सेवासे सरस्वती देवी बडी प्रसन्न होतीहैं।

पिताको विश्वास था कि सुदर्शन झख मारकर हमारा ही फिर आश्रय लेगा किंतु मैं फिर पिताके यहां रहनेको नहीं गया इससे पिताका वह अभिमान टूटगया और कोप भी कुछ कुछ शांत होने लगा ५० के संवत्तक कोप सर्वात्मना शांत होगया। इधर मीयांश्रीअमृतसेनजी मुझे बडे स्नेह तथा श्रमसे सितार सिखातेरहे वाद्य बजानेवाले लोग गैर आदमीको जोड नहीं सिखाते किंतु श्रीअमृतसेनजीने मुझे जोड भी सिखाया मैं उनकी उस उदारता तथा कृपाका सात जन्ममें भी प्रत्युपकार पूरा नहीं करसकता। उनके शिष्य तथा मातुलपौत्र हफीजखांजीने भी मुझे सितार सीखनेमें बडी सहायता दी। हम लोगोंके दौर्भाग्यसे सं १९५० पौषकृष्ण अष्टमीको प्रातः ही श्रीअमृतसेनजी सदाकेलिए इस लोकसे बिदा होगये मानों संगीतका सूर्य अस्त होगया यद्यपि उनकी अवस्था उस समय ७९ वर्षकी थी तथापि लोगोंने बडा शोक

मनाया। मैं उनकी मृत्युसे उदास होकर घर गया वहां रोगग्रस्त होगया कुछ कालमें अच्छा होकर और कुछ गृहस्थके कामोंको समेट कर श्रीअमृतसेनजीके पुत्र मीयां निहालसेनजीको मिलने जयपुर गया वहांसे अपने पिता तथा परममित्र राजासेठ लक्ष्मणदासजीको मिलने वृंदावन गया वहांसे पढनेकेलिए काशीको चला आया।

पाठकवर उक्त विपत्तिका खेद चार वर्ष मैंने निरंतर भोगा उसके अनंतर एक परमश्रीमान् मेरा मित्र मुझे खोजकर जयपुरमें मिला वह मेरी उस दशाको देख बडा दुखी हुआ और विपत्तिवृत्तांत न लिखनेका बडा उपालंभदिआ। उसने जयपुरसे चलते समय एक हजारका नोट मुझे दिआ और आगेको खर्च देनेका करार किया। मैने उस रुपएसे सभ ऋण चुकदा किआ। आगेको जो उक्त महापुरुषसे खर्चको मिलता रहा उससे मैं अपना काम चलातारहा और उस पुरुषने छात्रावस्थाकी योग्यतासे बहुत अधिक मुझे खर्च दिआ याने पांच छैसौसे कम किसी वर्ष नहीं दिआ और बडे आदरके साथ विना मांगे देतारहा। किंतु वह सब रुपया मुझसे खर्च होजाताथा इसीतरह उस पुरुषने मुझे छै वर्षतक खर्च दिआ जिससे मैंने बडे सुखसे विद्याभ्यास किआ। उसके पलटेमें मैं यही आशीर्वाद देताहूं कि भगवान् उसके पुत्रपौत्रोंकी सभतरहसे वृद्धि करे। छै वर्षके अनंतर वह स्वयं बडी धनकी तंगीमें फँसगया इससे उसने खर्च भेजना बंदकरदिआ किंतु जवाब नहीं दिआ यह लिखा कि किसी समय सभ इकट्ठा ही देदूंगा तदनन्तर रोगग्रस्त होकर कुछ ही दिनमें वह भी इस लोकसे चलदिआ उसकी पतिव्रता पत्नीके साथ मेरी विद्या भी मानो उस दिन विधवा होगई। यदि इस समय जीता रहता तो इस समय उससे मुझे बहुत धन तथा मानप्रतिष्ठा प्राप्त होनेकी आशा थी क्यों कि उसने मुझे बहुत कुछ कहा हुआया। मैं भी आजतक उसके विना और किसी धनवान्के द्वारपर नहीं गया और न जानेकी इच्छा ही है किंतु आगेकी कुछ मालूम नहीं यदि वह जीता रहता तो आगेको भी कभी किसीके द्वारपर जानेका समय न आता।

मैं संवत् १९५१ के मार्गमें काशी पहुंचकर महामहोपाध्याय सीआई ई श्रीमान् विद्यानिधि श्रीगंगाधरशास्त्रीजीमहाराजसे पढने लगा प्रथम अलंकारसर्वस्व ध्वन्यालोक चित्रमीमांसा तथा रसगंगाधर ये ग्रंथ

पढे। फिर सांख्य और योगके ग्रंथ पढे फिर अद्वैत वेदांत तथा पूर्वमीमांसाका अध्ययन किया न्यायके दर्शन भागकाभी अध्ययन किआ कुछ विशिष्टाद्वैत तथा शब्दखंडका भी अध्ययन किआ साहित्य और अद्वैतवेदांतका अध्ययनप्रचारापेक्षया मैंने बहुत अधिक अध्ययन किआ किंतु सभ उक्त श्रीगुरुप्रवरोंसे ही। इतना अध्ययन करते करते १९६३ का संवत् बीतगया। और इस कालमें मैंने स्वयं भी कई ग्रंथ बनाए यथा संस्कृतमें तो श्रीरंगदेशिकशतक[1] संस्कृतभाषा[2] अद्वैतचंद्रिका[3] विशिष्टाद्वैताधिकरणमाला,[4] भाषामें स्त्रीचर्या,[5] भगवद्गीतासतसई[6] आल्वारचरितामृत[7] अष्टादशरहस्यभाषा,[8] संस्कृत तथा भाषा दोनोंमें यह अनर्घनलनाटक,[9] संस्कृतके कुछ उपयोगी पद्योंका संग्रह करके उसका नाम नीतिरत्नमाला[10] नियतकरके उसकी भाषामें टीका लिखी ये सभ ग्रंथ छप भी चुके हैं। इन ग्रंथोंके कारण लोकसे मुझे बहुत कुछ मान भी प्राप्त हुआ। और रघुनाथचंपू एक कोश एक व्याकरण ये तीन ग्रंथ मैंने भाषाके लिखने आरंभ किए किंतु अभीतक अधूरे पडेहैं। और सिद्धांतकौमुदीकी भाषाटीका[11] तथा भगवद्गीतापर विशिष्टाद्वैतकी रीतिसे अद्वैतमतखंडनपुरस्सर तत्वार्थसुदर्शनी[12] नामकी भाषाटीका लिखी जिसका और लोगोंने भगवद्गीताभाषाभाष्य यह भी नाम रखदिआ यह बंबईके वेंकटेश्वर प्रेसमें छपी है। इन सभसे पीछे शास्त्रदीपिकाप्रकाश[13] नामकी शास्त्रदीपिकाके तर्कपादकी संस्कृतमें सविस्तर टीका लिखी यह काशीके विद्याविलासप्रेसमें छपीहै। इस ग्रंथके लिखनेपर मुझे भारी श्रम उठाना पडा। इस समय हृदयपर यह बडा चाव है कि मैं अपने अधूरे भाषाव्याकरणको कभी समाप्त करूं। और भी कई ग्रंथ बनानेकी बडी अभिलाषा है।

---

१ श्रीरंगदेशिकशतक मैंने अपने परमाचार्योंका स्तोत्ररूप बनाया है। २ संस्कृतभाषामें 'आदिकालमें भारतकी भाषा संस्कृत थी' यह प्रतिपादन किआहै। ३ अद्वैतचंद्रिका अद्वैतवेदांतानुसार प्रमाण तथा प्रमेयका ग्रंथ है इतना प्रमेयसंग्रह और किसी एक ग्रंथमें नहीं मिलेगा। ४ विशिष्टाद्वैताधिकरणमाला श्रीभाष्यका सारभूत है। ५ स्त्रीचर्या स्त्रिओंके उपयोगी है। ६ भगवद्गीतासतसईमें भगवद्गीताके प्रत्येक श्लोकका एक एक दोहेमें अनुवाद है। ७ आल्वारचरितामृतमें श्रीसंप्रदायके १२ आचार्य भक्तोंका चरित्र है। ८ अष्टादशरहस्यभाषा श्रीरामानुजाचार्यप्रणीत अष्टादश रहस्यका अनुवाद है। १० नीतिरत्नमाला धर्म और नीति प्रतिपादक श्लोकोंका संग्रह है।

इधर काशीमें आनेके अनंतर मैं तीन चार बेर पितासे मिला। सं
१९५७के कार्तिकमें मेरी माताकी मृत्यु होगई केवल डेढमास मैं माताक
कुछक सेवा करसका। मार्गमास समाप्त होते पितासे मिलकर मैं पि
अध्ययनकेलिए काशी आगया। सं० १९५८ के श्रावणमें पिताकी
अमृतसरमें मृत्यु होगई उस समय भी मैं वहां था पिताकी मृत्युके
दिन पीछे मेरे छोटे भाइओंने मुझे पैत्रिकदायसे कोरा जबाब देदि
उसके प्रमाणकेलिए एक कागज लिखाहुआ मुझे दिखाया जिस
लिखाथा कि " हमारे ज्येष्ठपुत्र सुदर्शनका हमारी किसी वस्तुपर
कुछ हक्क नहीं " मैं इस वज्रपातको संतोषसे इतना सहलिआ कि मै
भाइओंसे यह भी न पूछा कि यह क्या हुआ किंवा क्यों हुआ। य
उत्तरमें कहा बहुत ठीक है। उसी समय दुःखी होकर मैंने हृदय
अपने पैत्रिकदायको त्याग दिआ और ऐसा त्यागा कि आजतक उध
दृष्टि भी कभी नहीं दी। उक्त अन्यायसे मेरे पिता तथा भ्राताओं
निंदा भी हुई और मेरे संतोषसे मुझे इतना यश प्राप्त हुआ कि लाख
रुपया खर्च करनेसे भी जो प्राप्त होना कठिन है एक बार सभ पंजाब
यह चर्चा फैल गई तथा मध्यप्रदेशके भी कई नगरोंमें। मैं भ्राताओं
जबाब देनेसे अपनी पत्नीको साथ ले सूखे हाथन घरसे निकलपडा
निकलते ही नगरमें त्राहि त्राहि मचगई दोनों भैनें बडी रोई पीटीं उ
समय जो पुरुष मुझसे मिला वह रोदिआ उस समय बडा करुण बी
गया। किंतु मैंने पैत्रिकदायको तृणके तुल्य त्यागदिआ। भ्राताओं
इस अन्यायसे रुष्ट होकर पिताके बहुतसे शिष्यलोग मेरे पक्षमें होगए
पिताने जो अंतसमय असीम निठुराई दरसाई वह भी एक जीव
सिखानेसे, उसने मेरी ओरसे पिताको इतना सिखादिआ कि
अंत्यसमय जीवितपिताके दर्शनतक न करनेपाया, इधर पिताको मे
आंखका बडा लिहाज था सिखानेवाला जानता था कि यदि सुदर्
इनके संमुख आगया तो मेरी मंथरानीति समग्र नष्ट होजायगी ये सर्व
सुदर्शनको सम्हाल जाएंगे यह सोच सिखानेवालेजीवने मेरा पित
निकट पहुंचना ही बंद करादिआ। और मैंने भाइओंको यथाशक्ति ब
कुछ सहायता दीथी तथापि उसीके सिखानेसे तथा धनलोभमें पड
भाइओंने मुझे पैत्रिकदायसे जबाव दिआ परंतु कुछ कालबाद भाइओं
पछताना ही पडा और पिताका घर भी नष्ट भ्रष्टसा ही होगया।

बहुतसे लोगोंने भाइओंके साथ मुकद्दमा लडनेका मुझसे आग्रह किआ किंतु मैंने एक न मानी संतोष करना ही उचित समझा और यद्यपि इदालतमें जानेसे मुझे मेरा पैत्रिकदाय अवश्य मिल जाता तथापि अनुचित श्रम उठाना पडता और जो मट्टी खराब होती सो जुदी। नाभेके बावा वासुदेवदासजीने सभ हाल जानकर यही कहा कि "आपके इस संतोषसे मैं बडा प्रसन्न हुआ आपने बहुत ही उचित किआ जो पैत्रिकदाय त्याग दिआ ऐसे निरादरकारिओंसे न लेना ही उचित है।" और यद्यपि मेरे भाइओंने मेरे साथ कम नहीं की और मेरा उनका कोई प्रकारका व्यवहार भी रहा नहीं तथापि मैं उनको प्रेमकी ही दृष्टिसे देखताहूं और यही चाहताहूं कि श्रीनारायण उनको सदा आनंद प्रसन्न रक्खे। भाइओंने जो मुझे दायते जवाब देदिआ उस बातको लोकमें उचित ठहरानेकेलिए भाइओंने मुझपर बहुतसे झूठे दोष लगाने आरंभ किए किंतु देशके लोग उनकी दोषारोपकी बातोंका मुंह तोड उत्तर देतरहे क्योंकि लोग मेरे आचार व्यवहारसे भली भांति परिचित थे और भाइओंके अनुचित लोभको भी समझ गएथे। मैं भी काशीमें बैठा उन दोषारोपोंको सुनता था किंतु उन झूठी बातोंका उत्तर देना उचित नहीं समझा। और देशके लोग स्वयं उन झूठी बातोंका उत्तर देतेथे। उस समय परिचिताऽपरिचित सर्वसाधारण जीवमात्रने जैसा कुछ मेरा पक्ष पकडा तथा प्रीति जताई उतनी मुझे आशा न थी।

महाशय उस मेरे मित्र महापुरुषने मुझे छैही वर्ष खर्च दिआथा और मैंने उससे खर्च मिलना बंद होनेपर भी अध्ययनको बंद नहीं किआ किंतु ऋण लेकर उससे खर्च चलाकर अध्ययन चलाया और मातृमृत्यु-कार्यपर डेढ हजार रुपया नकद खर्च उठाया उसमेंसे एक हजार पिताकी तरफसे मिलाथा शेष पांच सौ ऋण लेकर मैंने अपनी ओरसे मातृसेवा समझ खर्च किआथा। इत्यादि खर्चोंके कारण जिस समय भाइओंके जबाब देनेसे मैं सूखे हाथ घरसे निकला उस समय दो हजार रुपया मेरे सिरपर ऋण था उसकी मुझे बडी चिंता लगी किंतु उसी समय पिताके शिष्यभूत दो घरोंने मिलकर तीन हजार रुपया मेरे भेट किआ मैंने भी उसमेंसे समग्र ऋण चुकदा करादिआ और काशी

आकर शेष धनमेंसे कुछमें कुछ दिन अपना काम चलाया कु
विशिष्टाद्वैताधिकरणमाला और अद्वैतचंद्रिका ये दो स्वनिर्मित
ग्रंथ छपवाए। और अध्ययनका आरंभ किआ उसके अनंतर
पर्यंत शिष्यलोगोंसे उचित धन प्राप्त होतारहा इसके अनंतर शि
धनप्रदानके कारण अभिमान दिखाने लगे और मानमर्यादा
बिगाडने लगे इससे मैंने शिष्यलोगोंसे भी धन लेना बंद क
क्यों कि तुच्छ धनकेलिए मैंने उनकी खुशामद करनी और
मानमर्यादाको अल्प करालेना उचित नहीं समझा। यदि मैंने
मद ही करनी होती तो मथुराके राजा लक्ष्मणदासजीसे बहुत कु
कुमा लेता। मेरे स्वभावमें बहुतसे दोष हैं यथा गुरुलोगोंके सिव
कोईकी खुशामद न करनी और कोईसे अपमान भी न सहना इत
और मैं अपनी ओरसे ऐसी चेष्टा यथाशक्ति नहीं ही करता
किसीके साथ वैमनस्य उत्पन्न हो यदि दैवात् वैमनस्य उत्पन्न ह
तो उस दूसरेके वैमनस्य छोडे विना मैं भी वैमनस्य नहीं छोड
इतना अधिकतर ध्यान रखताहूं कि जहांतक बने कोईके अनिष्टमें
नहीं होता यदि दूसरा वैमनस्यको त्याग दे तो मैं भी तुरत
देताहूं मैं कोईका द्वेषी नहीं द्वेषसे बहुत डरताहूं वैमनस्योत्पत्ति
भयसे दूसरेके साथ वार्तालापमें यदि मैं किसी बातपर दूसरेका
देखताहूं तो झट अपने पक्षको शिथिल करदेताहूं जो वैमनस्य उ
हो। और व्यावहारिक बातमें मिथ्या बोलनेसे भी बचताहूं
कोई मुझे मध्यस्थ बनाता है तो स्पष्ट दोनोंके गुण दोषोंको कह
उस समय पक्ष नहीं करता मेरी श्रद्धा श्रीरामानुजसंप्रदायमें ह
मैं विपत्तिको उपकारिणी तथा भूषण समझताहूं दूषण नहीं। प्र
कालमें नलादि बडे बडे चक्रवर्त्तिओंने भारी विपत्ति भोगी है
मादृशनिर्भाग्य जीवोंकी कौन कथा। ग्रंथ लिखनेकी चाट मुझे
मित्रने लगा दी इसे मैं अपने वर्तमानसमयकेलिए कुछ अच्छ
समझता इससे विद्याभ्यासमें भी कुछक क्षति हुई तथापि सभ मे
मैंने अठारह वर्ष विद्याभ्यासमें बिताए हैं। यदि कोई मेरा वास
दोष दिखाता है तो यद्यपि उससे पश्चात्ताप बडा होता है
दोषको स्वीकार करलेताहूं हठ नहीं करता क्योंकि व्यर्थ हठक
फल नहीं निकलता।

शय मैंने जो यह अपना जीवनवृत्त लिखाहै इसको कुछ भी
न थी किंतु लोगोंकी देखादेखी लिखदिआहै क्षमा करना और
मैंने यहां लिखाहै वह बडे संक्षपसे लिखाहै यदि पूर्णरीतिसे
तो सौ पचास पेजसे कम न होता सविस्तर लिखता तो दो
होजाता किंतु मैं इतने संक्षेपको भी विस्तर ही समझताहूं क्यों
गत्या देखा जाय तो मेरे जीवनवृत्तमेंसे यदि वक्तव्य श्रोतव्य
तीहैं तो दो ही वार्ता होसकतीहैं-एक तो-मैंने अपनी शक्त्यनु-
क भारी विपत्तिके समय भी विद्याभ्यासमें न्यूनता नहीं की
त्यंत अपरिचित गुरुसे दो अक्षर संपादनकिए तथा विजातीय
द्याको भी सीखा । द्वितीय-भ्राताओंके पैत्रिकदायसे जवाब
ने सर्वांगसुंदर संतोष किआ पैत्रिकदाय त्यागनेमें भगवदनुग्रहसे
रह भी ब्राह्मणवैष्णव मर्यादासे भ्रष्ट नहीं हुआ, बस । आगे कैसे
यह कुछ प्रतीत नहीं । वस्तुगत्या जिनका जीवनवृत्त कुछ अलौ-
उनीका पढने तथा लिखनेयोग्य होताहै ना कि मेरेसे साधा-
का ।

संवत् १९६४ पंजाबीपं० सुदर्शनाचार्यशास्त्री काशी ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

श्रीः

पंजाबी सुदर्शनाचार्यशास्त्रिप्रणीतमुद्रितग्रन्थोंकी सूची

मूल्य.	ग्रन्थनाम.	ग्रन्थप्राप्तिस्थान.
२॥ रु०	भगवद्गीताभाषाभाष्य	वेंकटेश्वरप्रेस बंबई. लक्ष्मीवेंकटेश्वरप्रेस. कल्याण-बंबई.
४ आ०	श्रीआल्वारचरितामृत	
४ आ०	अष्टादशरहस्यभाषा	
४ आ०	नीतिरत्नमाला	
२ आ०	स्त्रीचर्या	
१० रु०	शास्त्रदीपिकाप्रकाशः	बाबू हरिदासगुप्त चौखम्भासंस्कृतसीरिज बनारस सिटी.
१ रु०	विशिष्टाद्वैताधिकरणमाला	
८ आ०	अद्वैतचंद्रिका	
४ आ०	संस्कृतभाषा	
२ आ०	श्रीरङ्गदेशिकशतकम्	
४ आ०	भगवद्गीतासतसई	

बृहत्संहिता भाषाटीका ।

यह श्रीवराहमिहिराचार्यकृत ज्योतिषका प्रामाणिक ग्रन्थ है. इसको लोकोपकारार्थ प० बलदेवप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकासहित छापके तैयार किया है इसमें पहले शास्त्रोपनयन, संवत्सरसूत्र, सूर्य, चन्द्र, राहु, मंगल, बुध, शुक्र, शनि और केतु इन ग्रहोंका चार (भ्रमण), अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्मयोग, नक्षत्रोंका व्यूह, ग्रहभक्ति, ग्रहविमर्दन, ग्रहशशियोग, ग्रहवर्षफल, गृहशृङ्गाटक, मेघोंका गर्भ, गर्भधारण, वर्षण, रोहिणी, स्वाती, आषाढी और भाद्रपदयोग, क्षणवृष्टि, कुसुमलता, सन्ध्या, दिग्दाह, भूमिका कांपना, उल्का और परिवेषके लक्षण, इन्द्रायुध, गन्धर्वनगर, प्रतिसूर्य, निर्घात, सस्यकाण्ड, द्रव्यकाण्ड, अर्घ्यकाण्ड, इंद्रध्वज, नीराजन, खञ्जनलक्षण, उत्पात, मयूरचित्रक, पुष्याभिषेक, पट्टप्रमाण, असिलक्षण, वास्तुलक्षण, उदगार्गल आराम, देवालयलक्षण, वज्रलेप, प्रतिमालक्षण, वनप्रवेश, देवता और देवालयोंकी प्रतिष्ठा, गौ, कुत्ते, कछुए, बकरे, पुरुष, पंचमहापुरुष, स्त्री, वस्त्रच्छेद, चामरदंड और भद्रका लक्षण, स्त्रीप्रशंसा, सुभगकरण, कान्दर्पिक अनुलेपन, स्त्री और पुरुषसंयोग, शय्यालक्षण, वज्रपरीक्षा, मौक्तिकलक्षण, पद्मरागलक्षण, मरकतलक्षण, दीपलक्षण, दन्तधावन, शाकुनमिश्रण, अन्तरचक्र, शिवाविरुत, कुक्कुटचेष्टित, मृगचरित, अश्वचरित, हस्तिचारित, वायसविद्या, उत्तरशाकुन, पाकनक्षत्रगुण, तिथि और करणगुण, नक्षत्रजातक, ग्रहोंका गोचरफल और नक्षत्र–पुरुषव्रत, ये सब विषय इसमें कहे गये हैं. इस ग्रन्थमें एक शत अध्याय हैं, जो परिपाटीके क्रमसे लिखे हैं सब अध्यायोंमें क्रमसे सर्व (प्रायः समेत) एक चौथाई कम चार हजार श्लोक लिखे हैं. वातचक्र रजोलक्षण आदि इस प्रकार छः अध्याय जो अनुक्रमणिकाके हैं सो उपरोक्त हिसाबमें नहीं लगाये हैं. इसकी एक २ कापी अवश्य विद्वानोंको पास रखना चाहिये. ग्लेज, की० ४ रु० रफ ३॥ रु०.